भारत के आदिवासी

डॉ. कामिनी जैन

© Copyright 2022

All rights are reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form by any means; electronic or mechanical including photocopy, recording, or any information storage or retrieval system; without the prior written consent of its author.

The opinions /contents expressed in this book are solely of the author and do not represent the opinions / standings / thoughts of Shashwat Publication. No responsibility or liability is assumed by the publisher for any injury, damage or financial loss sustained to a person or property by the use of any information in this book, personal or otherwise, directly or indirectly. While every effort has been made to ensure reliability and accuracy of the information within, all liability, negligence or otherwise, by any use , misuse or abuse of the operation of any method, strategy, instruction or idea contained in the material herein is the sole responsibility of the reader. Any copyright not held by the publisher are owned by their respective authors. All information in this book is generalized and presented only for the informational purpose "as it is" without warranty or guarantee of any kind.

All trademarks and brands referred to in this book are only for illustrative purpose are the property of their respective owners and not affiliated with this publication in any way. The trademarks being used without permission don't authorize their association or sponsorship with this book.

ISBN: XXXXXXXXXX

Price: xxx

Publishing Year 2022

दो शब्द.....

इस पुस्तक लेखन का उद्देश्य शोधार्थियों एवं विद्यार्थियों को विशेष रूप से समाज विज्ञान के विद्यार्थियों को आदिवासी संस्कृति से परिचित कराना है। यह पुस्तक ना केवल स्नातक स्नातकोत्तर कक्षाओं के लिए ही वरन् उन विद्यार्थियों के लिए भी उपयोगी होगी जो अनुसंधान कार्य करना चाहते हैं इस पुस्तक में यह प्रयास किया गया है, कि आदिवासी समाज के संबंध में सरल और व्यवस्थित जानकारी दी जा सके साथ ही शोध के लिए आवश्यक सभी पहलुओं का संक्षिप्त सरल एवं व्यवस्थित उल्लेख हो। व्यक्ति जो आदिवासी समाज एवं संस्कृति, शासकीय या अशासकीय संस्थानों से जुड़े हुए हो उन्हें भी यह पुस्तक उपयुक्त होगी।

आदिवासी समाज के सभी महत्वपूर्ण पहलुओं का समावेश इस पुस्तक में किया गया है आशा है कि शोधार्थियों एवं वि।ार्थियों के लिए यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी। समाज में प्रत्येक व्यक्ति को सहयोग की आवश्यकता होती है। मानव को कदम–कदम पर सहयोग एवं दिशा निर्देश की आवश्यकता होती है, मुझे भी इस पुस्तक को पूर्ण करने में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रुप से सहयोग की आवश्यकता पड़ी। आज जब यह पुस्तक पूर्ण हो गई है तो पीछे मुड़ कर देखने पर पाते हैं अतीत में उभरते चेहरे जिनके सहयोग की नींव पर इसे खडा किया गया है। आभार व्यक्त करना बहुत ही कठिन कार्य है क्योंकि जो पाया है वह आभार मानकर लौटाया नहीं जा सकता सर्वप्रथम मैं परमपिता परमात्मा को अनंत

धन्यवाद देती हूं जिनके आशीर्वाद एवं अनुकंपा से ही इस पुस्तक को पूर्ण कर सकी।

मैं डॉ. राजीव वर्मा प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष अर्थशास्त्र अध्ययन शाला अटल बिहारी वाजपेई विश्वविद्यालय भोपाल का आभार प्रकट करती हूं जिन्होंने मुझे इस पुस्तक लेखन हेतु प्रोत्साहित किया।

मैं श्री मनोज कुमार सिसोदिया कंप्यूटर प्रोग्रामर शासकीय गृह विज्ञान स्नातकोत्तर अग्रणी महाविद्यालय नर्मदापुरम का हृदय से आभार प्रकट करती हूं जिन्होंने मेरे पुस्तक लेखन में हर कदम पर सहयोग दिया।

मैं अपनी बिटिया मीठी की भी आभारी हूं जिनका सहयोग और स्नेह सतत मुझे लिखने को प्रेरित करता है। मैं अपनी मित्र मंडली डॉ श्रीकांत दुबे, डॉ अरूण सिकरवार, डॉ रश्मि श्रीवास्तव, डॉ. संध्या मुरे, डॉ.एस.के. तिवारी की भी आभारी हूँ, जिन्होंने इस कार्य को पूर्ण करने में प्रेरित एवं प्रोत्साहित किया है।

मैं उन लेखकों के प्रति भी आभार व्यक्त करती हूं जिनकी पुस्तकों के अंश पुस्तक को लिखने में मार्गदर्शक बने। इस पुस्तक को रोचक एवं उपयोगी लिए सभी यथासंभव प्रयास किया गया है फिर भी कुछ कमियां रह जाना स्वाभाविक है। इसमें पाठकों द्वारा दिए गए सुझाव एवं आलोचनाओं का हृदय से स्वागत है।

अंत में अपने प्रकाशक कृष्णा रिसर्च ऑर्गेनाइजेशन दिल्ली की भी आभारी हूँ जिन्होंने अल्प समय में इस संस्करण को प्रकाशित करने में तत्परता दिखाई और मेरे लेखन पर विश्वास किया।

डॉ. श्रीमती कामिनी जैन

भूमिका

आदिवासी समाज और संस्कृति के प्रति हमारे तथाकथित सुसंस्कृत समाज का रवैया क्या है? वो चाहे सैलानी पत्रकार लेखक हों या समाजशास्त्री, आम तौर पर सबकी एक ही मिलीजुली कोशिश इस बात को खोज निकलने की रही है कि आदिवासियों में अदभुत और विलक्षण क्या है? उनके जीवन और व्यवहार में आश्चर्य और तमाशे के लायक चीजों की तलाश और हमसे बेमेल और पराए पहलुओं को इकहरे तरीके से रोशन करने लोगों का ध्यान आकर्षित करने और मनोरंजन के लिए ही लोग आदिवासी समाज और सुसंस्कृति की ओर जाते रहे हैं। नतीजा हमारे सामने है। उनके यौन जीवन और रीति– रीवाजों के बारे में गुदगुदाने वाले सनसनीखेज ब्योरे तो खूब मिलते हैं, पर उनके पारिवारिक जीवन की मानवीय व्यथा नहीं। उनके अलौकिक विश्वास, जादू – टोने और विलक्षण अनूष्ठानों का आँखों देख हाल तो मिलता है, उनकी जिंदगी के हाड़तोड़ संघर्ष की बहुरूपी और प्रमाणिक तस्वीर नहीं। वे आज भी आदमी की अलग नस्ल के रूप में अजूबा की तरह पेश किए जाते हैं। विचित्र वेशभूषा में आदिम और जंगली आदमी की मानिंद। आदिवासी समाज के कुछ सामाजिक मूल्य होते हैं, कुछ अभिव्यक्त करने के साथ–साथ, एक प्रतीकात्मक क्रिया का, यद्यपि हमेशा नहीं, यह एक सहायक पक्ष है। अब जिसे हम व्यवहारिक कहते है, कार्यो को करने की आम– बुद्धि तकनीक, तथा धार्मिक अनुष्ठान या उन्हें करने की जादू– धार्मिक विधि के बीच मुख्य अंतर बुनियादी तौर पर जो कार्य किया जाता है जन जीवन की आधारशिला उनकी परम्पराएं हैं। समाज – संस्कृति का नियमन भी वहीं से होता है।

अनुशासन और मानवयी संबंध उस की छत्रछाया में पुष्पित – पल्लवित होते हैं। झारखंड क्षेत्र की जनजातियों के विशेष संदर्भ में अध्ययन की सुविधा के लिए, इन्हें निम्नांकित शीर्षकों में विभाजित किया जा सकता है।

प्रस्तावना

भारत वर्ष की संस्कृति व सभ्यता अपने आप में अनूठी है । यहॉ सदियों से अनेक जातियॉ निवास कर रही हैं । वर्तमान में जनजाति शब्द और समाज बहुमूल्य इतिहास का साक्षी है । हमारी संस्कृति की झलक आज भी प्रायः इनमें ही मिलती है । यहॉ स्मरणीय तथ्य यह है कि जनजातियां काल से भारत में निवास करते हैं ।

ये लोग पहाड़ी व घने जंगलों में निवास करते हैं । जनजाति परिवारों का समूह है जिसकी अपनी एक भाषा, संस्कृति, रीति रिवाज व मान्यतायें हैं। गोत्र एवं अंतर्विवाह की विशिष्टता है । ये एक सुनिश्चित भूभाग में रहते हैं । इनका स्वतंत्र सुरक्षात्मक संगठन होता है, जिसमें मुखिया सर्वोच्च होता है।

इन लोगों को अनेक नामों से जाना जाता है जैसे – वनवासी, पहाड़ी, आदिवासी, आदिम जाति, जनजाति, वन्य जाति एवं अनुसूचित जनजाति आदि । इन सभी संबोधनों में आदिवासी शब्द अधिक प्रचलित है, यद्यपि अनुसूचित जनजाति संवैधानिक संबोधन है । भारत की जनजातियों का संदर्भ रामायण तथा महाभारतकाल में भी मिलता है । उस समय इन लोगों को जन कहकर पुकारा जाता था। वे लोग अन्यान्य प्रकार के देवताओं की पूजा करते थे तथा उनकी शारीरिक आकृति भी सामान्य से भिन्न प्रकार की थी।

पहाड़ियों के दुर्गम क्षेत्रों में आज भी कई मानव समुदाय हैं, जो हजारों वर्षों से शेष विश्व की सभ्यता से दूर अपनी सामाजिक व सांस्कृतिक चेतना की पहचान बनाये हुए है । ये मानव समुदाय वनो, मरूस्थलों, ऊँचे पर्वतों और दुरूह पठारों के उन अंचलों में रहते हैं, जिसे आधुनिक तथा सभ्य समाज की अर्थदृष्टि अनुत्पादक मानती है । इसका अपना अनुल्लेखित इतिहास भी है, जिसका मात्र अंतिम पृष्ठ ही शेष रह गया है, उसमें यह लिखा है कि न जाने किस समय यह समूह छोटे–छोटे समूहों में बंट गया है । उसमें एक–दूसरे की पहचान व रिश्तों की डोरी या तो टूट चुकी है या उलझ चुकी है ।

परिचय

जनजातियों की सांस्कृतिक परम्परा और समाज – संस्कृति पर विचार की एक दिशा यहाँ से भी विचारणीय मानी जा सकती है। मानव विज्ञानियों और समाजशास्त्र के अ ोताओं ने विभिन्न जनजातीय समुदायों का सर्वेक्षण मूलक व्यापक अध्ययन प्रस्तुत किया है और उसके आधार पर विभिन्न जनजातीयों के विषय में सूचनाओं के विशद कोष हमें सुलभ है। पुनः इस अकूत शोध– सामग्री के आधार पर विभिन्न जनजातीय समूहों और समाजों के बारे में निष्कर्ष मूलक समानताओं का निर्देश भी किया जा सकता है। लेकिन ऐसे अध्ययन का संकट तब खड़ा हो जाता है जब हम ज्ञान को ज्ञान के लिए नहीं मानकर उसकी सामाजिक संगति की तलाश खोजना शुरू करते हैं। ये सारी सूचनाएं हमें एक अनचिन्हीं– अनजानी दुनिया से हमारा साक्षात्कार कराती हैं, किन्तु इस ज्ञान का संयोजन भारतीय समाज में उनके सामंजस्यपूर्ण समायोजन के लिए किस प्रकार किया जाए, यह प्रश्न अन्य दुसरे सवालों से अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है। यहाँ समाज – चिंतन की हमारी –सृष्टि और उसके कोण की वास्तविक परीक्षा भी शुरू हो जाती है। ठीक यहीं से सूचनाओं का विश्लेष्ण – विवेचना चुनौती बनकर खड़े हो जाते हैं।

किसी भी समाज का अतीत बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। तो भी शुद्ध अतीतजीवी होने की भी कोई तार्किकता नहीं हो सकती है। जनजातियों के संदर्भ में विचार करें तो यह सवाल और नुकीला हो जाता है कि क्या उन्हें आदिम मानव– सभ्यता के पुरात्तात्विक

पुरावशेष के रूप में पुरातन जीवन– स्थिति में ही अलग थलग छोड़ दिया जाए या विज्ञान और तकनीकी प्रगति की आधुनिक व्यवस्था में समायोजित होने का अवसर भी दिया जाए? सवाल तो यह भी उतना है महत्त्वपूर्ण है कि क्या उनके विकास के नाम उन्हें आधुनिक जटिल राज्य तंत्र और समाज – व्यवस्था के सामने टूटकर विखरने के लिए छोड़ दिया जाए या उन्हें नए परिवेश में सहज गतिशील होने के लिए पर्याप्त अवसर दिया जाए?

आज जब औ।ोगिक विकास के लिए खनिज सम्पदा और जंगल–पहाड़ के इलाके राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था के लिए अनिवार्यतः उपयोगी माने जा रहे हैं और ये सारी सहूलियतें इन्हीं आदिवासी अंचलों में सुलभ हैं तो क्या क्षेत्रीय या राष्ट्रीय हितों के लिए 10 प्रतिशत आदिवासियों को विस्थापित कर उनकी अपनी जीवन शैली, समाज– संरचना, सांस्कृतिक मूल्यों में बलात वंचित कर किया जाए? यानी आज यह सर्वोपरी आवश्यकता दिख रही है कि विकास की मौजूदा अवधारणा की एक बार फिर समीक्षा की जाए और नई आधुनिक व्यवस्था में जनजातीय समूहों के मानवीय अधिकारों की समुचित अभिरक्षा की जाए। तभी जनजातिय संस्कृ ति या उसकी परंपरा के विषय में हमारी चिंता को एक वास्तविक आधार सुलभ होगा।

"आदिवासियों के आख्यान उनके मिथक, उनकी परम्पराएँ आज इसलिए महत्वपूर्ण नहीं हैं कि वे बीते युगों की कहानी कहती हैं, बल्कि उनकी अपनी संस्थाओं और संस्कृति के एतिहासिक तर्क और बौद्धिक प्रसंगिकता के लिहाज से भी महत्त्वपूर्ण हैं। उनकी कलात्मक अभिव्यक्तियाँ, सौन्दर्यात्मक चेष्टाएँ और अनुष्ठानिक क्रियायें हमारी – आपकी कला– संस्कृति की तरह आराम के

क्षणों को भरने वाली चीजों नहीं हैं, उनकी पूरी जिन्दगी से उनका एक क्रियाशील, प्रयोजनशील और पारस्परिक रिश्ता है, इसीलिए उनकी संस्कृति एक ऐसी अन्विति के रूप में आकार ग्रहण करती है जिनमें उनके जीवन और यथार्थ की पुनार्चना होती हैं"।

अनुक्रमणिका

- आदिवासी 1
- आदिवासी विकास एवं प्रशासन 8
- भारत के आदिवासी 30
- आदिवासी जनसंख्या 45
- आदिवासी गोत्र 55
- आदिवासियों की विवाह पद्धतियां 65
- आदिवासी परंपराएँ 78
- जनजातीय समाज में परम्परागत चिकित्सा 113
- धार्मिक विधियाँ 121
- आदिवासी झण्डा 129
- आदिवासी राजा 130
- आदिवासी साहित्य की उपलब्धता 132
- आदिवासी दिवस 150
- आदिवासी चिन्ह एवं प्रतीक 152
- आदिवासियों का पोषण स्तर 157
- राज्य छात्रवृत्ति 161
- महिला स्वास्थ्य योजना 171
- आदिवासी विद्रोह 223

- आदिवासी सेनानियों की वीर गाथा 230
- आदिवासी लोक कला अकादमी 236
- आदिवासियों के अधिकारों का संरक्षण और प्रवर्तन के लिए विधिक सेवाऐं योजना 241
- आदिवासी क्षेत्र में प्रचलित खा। पदार्थो से निर्मित नवीन व्यंजन विधियां 275
- भील शब्दावली 293

आदिवासी

जनजाति या आदिवासी देश के प्राचीनतम् वंशजों में से है जिनके जीवन और संस्कृति की सबसे प्रमुख विशेषताऐं हैं– आर्थिक और सामाजिक पिछडापन, धार्मिक अंधविश्वास, जीवन की सरलता और आनंद, स्वतंत्रता, निर्भयता, के विशेष रीति रिवाजों एवं रहन–सहन की पद्वतियॉ भी विभिन्नता का आयाम अपने में समेटे हुये हैं।

आदिवासी जनजाति स्वयं के स्वास्थ्य, पोषण एवं व्यक्तिगत स्वच्छता के प्रति जागरूक नहीं है। अतः उनके स्वास्थ्य के प्रति ध्यान देना अति आवश्यक है। गरीबी, अज्ञानता, अशिक्षा, अभाव सामाजिक कुरीतियां, आय का असमान वितरण, आय का न्यून स्तर, आज भी परिवार में वि।मान है। इनकी अर्थव्यवस्था निम्न कगार पर हैं जिससे इनका जीवन स्तर, पोषण स्तर, स्वास्थ्य स्तर आदि निम्न रहा है। आज भी अभिभावक, बच्चों के विकास

की सबसे तीव्र अवस्था में पौषणिक स्वास्थ्य की ओर जागरूक नहीं है या सचेत नहीं है। ये अपने बच्चों के स्वास्थ्य व पोषण स्तर के महत्व को नहीं समझते । ''जनजाति के संदर्भ में विद्वानों द्वारा व्यक्ति विचारों को केन्द्रित करते हुए कह सकते है कि जिनकी सामान्यता एक निश्चित बोली या भाषा एक हो।

स्वतंत्रता के बाद से ही आदिवासी विकास शासन का प्राथमिक दायित्व रहा है मध्यप्रदेश के 45 जिलों में जो जनजातियॉ रहती है उनकी संख्या 46 बतायी जाती है। गोंड और उनकी उपजातियाँ मिलाकर प्रदेश की सबसे बडी जनजाति है दूसरी प्रमुख जनजाति भीलों और उनकी उपजातियों जैसे– **भिलाला, बरेला, परलिया,** आदि की कुल जनसंख्या 16.18 लाख प्रदेश में रहती है। बैगा 1.19 लाख, भारिया–भूरिया 147 लाख और हलवा–हलवी 1.73 लाख कवंर कनकार 2.07 लाख और धानका–अनपढ 3.70 लाख तथा सहरिया 2.05 लाख प्रदेश की अन्य महत्वपूर्ण जनजातियॉ है गोंड प्रदेश के अधिकांश जिलों में फैले हुए है लेकिन काफी जनजातियों विशेष का फैलाव प्रदेश में व्यापक न होकर कतिपय क्षेत्र में विशेष में ही है एक इलाके में रहने वाली जनजातियों की संस्कृति और सामाजिक स्थिति दूसरे इलाकों में रहने वाली जनजातियों से सर्वथा भिन्न है ।

चार्ल्स पिनिक के अनुसार – ''एक जनजाति के क्षेत्र में भाषा, संस्कृति, समरूपता तथा एकसूत्र में बंधने वाला सामाजिक संगठन आता है। यह सामाजिक उपसमूहों जैसे गोत्रों या गांवो को सम्मिलत कर सकता है।''

डी.एन.मजूमदार ''एक जनजाति परिवारों या परिवारों के समूह का एक संग्रह है जिसका एक सामान्य नाम होता है जिसके सदस्य एक निश्चित भूभाग पर निवास करते हैं। तथा सामान्य भाषा

बोलते हैं विवाह व्यवसाय तथा व्यापार के विषय में कुछ निषेधों का पालन करते हैं और एक निश्चित तथा उपयोगी परस्पर व्यवस्था का विकास करते हैं।''

हॉबल के अनुसार ''एक जनजाति एक सामाजिक समूह है जो एक विशेष भाषा बोलता है तथा एक विशेष संस्कृति रखता है जो उन्हें दूसरे जनजाति समूहों से पृथक करती है। यह अनिवार्य रूप से राजनीतिक संगठन नहीं है।

गिलिन एवं गिलिन के अनुसार ''जनजाति किसी भी ऐसे अशिक्षित स्थानीय समूह को कहा जाता है जो एक सामान्य भू–भाग पर निवास करता है। एक सामान्य भाषा बोलता है तथा एक सामान्य सांस्कृतिक व्यवहार करता है।''

1.11.1 जनजातियों की प्रमुख विशेषताएं

1. जनजाति अनेक परिवारों या परिवारों के समूहों का एक संकलन होता है।
2. प्रत्येक जनजाति को अपनी एक सामान्य भाषा होती है।
3. प्रत्येक जनजाति का एक विशिष्ट नाम होता है।
4. जनजाति को एक अन्य विशेषता यह है कि यह एक निश्चित भू–भाग के आधार पर सामुदायिक भावना भी बड़ जाती है।
5. एक जनजाति का प्रायः एक अन्तर्विवाही समूह होता है। प्रारम्भ में सभी जनजातियां अपनी ही जनजाति के विवाह करती थी। परंतु आधुनिक युग में यातायात के साधनों की उन्नति के साथ प्रत्येक जनजाति का पड़ोसी जनजातियों से सम्पर्क बढ़ गया है जिसके फलस्वरूप अने जनजातियां

अपने जनजातीय समूह से बाहर भी विवाह संबंध स्थापित कर लेती है।

6. एक जनजाति के सदस्यों में पारस्परिक आदान प्रदान के कुछ सामान्य नियम और निषेध होते हैं जिनको की प्रत्येक सदस्य को मानना पड़ता है और जिनके आधार पर इनके व्यवहार नियंत्रित होते हैं।

7. एक जनजाति की एक सामान्य संस्कृति होती है और बाहर के समूहों के विरूद्ध इसके सदस्यों में एकता की भावन भी होती है।

8. जनजाति की एक अंतिम निवेशता यह है कि प्रत्येक जनजाति का एक राजनीतिक संगठन होता है। जनजाति की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताएं ये हैं कि उनमें से अधिकांश पृथक भूभागों में रहते है उनकी आजीविका के प्रमुख स्त्रोत कृषि और वन उत्पादनों को एकत्रित करना है वे लाभ के लिए खेती नहीं करते वह अभी भी वस्तु विनियम पर निर्भर रहते हैं।

भारत की कुल जनजातीय जनसंख्या में से करीब 23 प्रतिशत इसी प्रदेश में रहते है। कहा जा सकता है कि देश के कुल जनजातीय लोगों में से हर पांचवा व्यक्ति म.प्र. का निवासी है, क्योंकि यही वह प्रदेश है जहां सबसे अधिक संख्या में जनजाति लोग रहते हैं।

म0प्र0

वर्ष	कुल जनसंख्या	जनजातिय जनसंख्या	प्रतिशत

1961	32312000	6678410	20.63
1971	41634119	8387403	0.14
1981	52178844	11987031	22.973
1991	66181170	15399034	23.27
2001	60348023	12233474	24

1.11.2 आदिवासियों में शिक्षा की समस्या

अज्ञान, शोषण, गरीबी और पिछड़ेपन का सबसे प्रमुख कारण है आदिवासियों का अशिक्षित होना जो प्रशिक्षित है उन्नति के विभिन्न अवसरों का लाभ भी नहीं उठा पाते है। यह स्थ्याति आदिवासियों के संदर्भ में विशेष रूप से देखी जा सकती है वे पिछड़े शोषित और गरीब इसी कारण है कि उन तक शिक्षा की रोश्नी नहीं पहुंच पाई है और वे अशिक्षा के अंधकार में भटकते हुए सामान्य समाज से अलग थलग पड़ गए इसका एक दुष्परिणाम यह हुआ कि स्वतंत्रता के पश्चात विकास के जा अवसयर समाज को मिले उसका पूरा लाभ आदिवासी नहीं उठा पाए हालांकि यह लाभ उन तक पहुचाने के मामले में शासन ने अपनी तरफ से कोई कसर बाकी नहीं छोड़ी।

मध्य प्रदेश में शासन की कोशिश है कि कोई भी आदिवासी बालक बालिका गरीबी के कारण शिक्षा प्राप्त कने से वंचित न रहे आदिवासी बच्चों की लिए शिक्षा निशुल्क है आदिम जाति कल्याण विभाग द्वारा कक्षा 3 से 11 तक के बच्चों को शिक्षा विभाग के बुक बैंक योजना से निःशुल्क पाठ्य–पुस्तक दी जाती है बालिकाओं को स्कूली ड्रेस भी निःशुल्क प्रदान की जाती है। 6 से 14 वर्ष आयु समूह के बच्चों को शालाओं में निःशुल्क दोपहर के

भोजन की सुविधा भी दी जा रही है। जिनका लाभ प्रदेश के 7,00,000 आदिवासी बच्चों को मिल रहा है।

आदिवासी क्षेत्रों में आदिम जाति कल्याण द्वारा प्राथमिक से लेकर उच्चतर माध्यमिक स्तर तक की शालाओं का संचालन किया जा रहा है। आदिवासी बच्चें शिक्षा के क्षेत्र में सामान्य बच्चों के स्तर पर आ सके इसके लिये आदिम जाति कल्याण विभाग ने विगत 4–5 वर्षों में विशिष्ट शिक्षण की व्यवस्था करने के लिए कदम उठाये है आदिवसी क्षेत्रों में शालाएं खोलने के लिए राज्य शासन द्वारा एक सुविचारित एव उदार नीति लागू की गई है।

सुदूर आदिवासी क्षेत्रों में इन छात्र छात्राओं के लिए पूर्व माध्यमिक मैट्रिकोत्तर छात्रावास संचालित किये जाते है। छात्रावास में रहने वाले छात्र छात्राओं के लिए प्राथमिक आवश्यकताओं की वस्तु प्रदान की जाती है। जैसे कंबल, जर्सियां तथा सामान्य ज्ञान की और अन्य पत्रिकाएँ भी उपलब्ध करवाई जाती है।

मध्य प्रदेश सरकार के आदिम जाति कल्याण विभाग द्वारा प्रदेश के 14 ऐसे विकास खण्ड है जहॉ पर 5 प्रतिशत से कम साक्षरता है तथा 88 ऐसे विकास खण्ड है जहां पर महिला साक्षरता प्रतिशत कम है की पहचान कर ली गई है। इन विकास खण्डों में साक्षरता में वृद्धि करने के लियें 2 नई योजनाएं 1986–87 से प्रारंभ की गयी है 88 विकास खण्डों में साक्षरता वृद्धि के लियें प्राथमिक शाला स्तरीय छात्रवृत्ति 198–87 से प्रारंभ की गई है।

1.11.3 म0प्र0 में आदिवासियों की आर्थिक एवं सामाजिक समस्याएं

सन् 2001 की जनगणना के अनुसार देश में लगभग 9 करोड़ से अधिक जनजातिय लोगों की संख्या थी जो कुल आबादी का 8.8

प्रतिशत थी जनजातीय आबादी देश के लगभग सभी हिस्सों में मौजूद है लेकिन आधी से अधिक यानि 55 प्रतिशत जनजातिय आबादी चार राज्यों मप्र. उड़ीसा, बिहार एवं राजस्थान में केन्द्रित है दूसरी और हरियाणा, जम्मू काश्मीर, पंजाब, चंडीगढ़ और दिल्ली में जनजातीय आबादी नही है। म.प्र. में जनजातियों की जनसंख्या 1.54 लाख है जो प्रदेश की कुल जनसंख्या का 23.27 प्रतिशत है तथा भारत की कुल जनजातियों की जनसंख्या का 17.11 प्रतिशत मध्यप्रदेश में निवास करता है। प्रदेश के कुल भौगोलिक क्षेत्र 4.43 लाख किमी का 40.63 प्रतिशत क्षेत्र आदिवासी है अर्थात 1.80 लाख वर्ग किमी है।[1]

भारत की जनजातियों की समस्या परिवार के लिए दो समय भरपेट भोजन की तन ढ़कने के लिए वस्त्रों की ओर सिर छुपाने के लिए घर की वह आज भी ऐसे दूरस्थ पहाड़ी और वन प्रातारों में रहते है। जहॉ पहुंच सुगम नही है यही नही उनकी जंगल और जमीन घट जाने से जनजातीय लोगों और अधिक निर्धन, परश्रित ओर मजबूर बनते जा रहे है साथ ही जनजातीय लोगों का शोषण भी बढ़ रहा है अबोध अशिक्षित होने के कारण अपने पक्ष में बनाये गए कानून को भी नही समझ पाते है। वर्तमान में हमे जनजातियों के तीन मिलते है। प्रथम वे जनजातीय लोग है उन्नत बीज, खाद, नवीन तकनीक का प्रयोग करते हुए वैज्ञानिक कृषि करते है इनका शहरी अर्थव्यवस्था में प्रवेश हो चुका है अधिकांश पढ़े लिखे जनजातीय परिवार इस आर्थिक स्तर का प्रतिनिधित्व करते है।

1

आदिवासी विकास एवं प्रशासन

आदिवासी विकास वर्तमान संदर्भ में बहुत ही महत्वपूर्ण एवं संवेदनशील विषय है। ब्रिटिश शासन में इसका महत्व कुछ भी नही था। स्वतंत्रता के पश्चात लोक कल्याण्कारी राज्य अवधारणा के साथ आदिवासी क्षेत्रों के समग्र विकास का महत्व बहुत बढ़ गया संसदीय शासन प्रणाली में जनप्रतिनिधि उसके क्षेत्र का पूर्ण विकास चाहता हे संवैधानिक आधार पर भी आदिवासी विकास को प्राथमिकता दी गई है।

मूलतः प्रशासन की निष्ठापूर्ण पहल एंवं सक्रिय भूमिका ही इस शोषित वर्ग की प्राचीनतम पिछड़ी स्थिति को बदल सकती है। लक्ष्य प्राप्ति के लिए अंतिम या ठोस रूप से प्रमुख मार्ग अभी तक तय नही हेा पाया है। नित नए प्रयोग हो रहे है आदिवासियों के समग्र विकास के लिए प्रशासन की भूमिका सकारात्मक होना आवश्यक है।

विश्व जनसंख्या स्थिति रिपोर्ट 2001 के अनुसार आज विश्व के निर्धनतम देशों के सामने दोहरी चुनौती है। अविरत जनसंख्या वृद्धि तथा जन एवं भोजन का गंभीर संभावित संकट वर्तमान में विश्व जनसंख्या 610 करोड़ तक पहुच गई है जिसमें भारत की जनसंख्या लगभग 102.7 करोड़ है जबकि भारत का भौगोलिक क्षेत्रफल विश्व के कुल क्षेत्रफल का 2.4 प्रतिशत है। अर्थात भारत विश्व की 16.72 प्रतिशत जनसंख्या का प्रतिनिधित्व कर रहा है।

तो म.प्र. भारत की कुल जनसंख्या का लगभग 0.59 प्रतिशत जनसंख्या का प्रतिनिधित्व कर रहा है।[2]

अर्थ एवं परिभाषा

'अनुसूचित जनजातियाँ' पद सबसे पहले भारत के संविधान में प्रकट हुआ। अनुच्छेद 366 (25) ने अनुसूचित जनजातियों को "ऐसी आदिवासी जाति या आदिवासी समुदाय या इन आदिवासी जातियों और आदिवासी समुदायों का भाग या उनके समूह के रूप में, जिन्हें इस संविधान के उद्देश्यों के लिए अनुच्छेद 342 में अनुसूचित जनजातियाँ माना गया है" परिभाषित किया है। अनुच्छेद 366 (25), जिसे नीचे उद्धृत किया गया है, अनुसूचित जनजातियों के विशिष्टिकरण के मामले में पालन की जाने वाली प्रक्रिया को निर्दिष्ट करता है। राष्ट्रपति, किसी भी राज्य या केंद्रशासित प्रदेश के विषय में, और जहाँ वह राज्य है, राज्यपाल से सलाह के बाद सार्वजनिक अधिसूचना द्वारा, आदिवासी जाति या आदिवासी समुदायों या आदिवासी जातियों या आदिवासी समुदायों के भागों या समूहों को निर्दिष्ट कर सकते हैं, जो इस संविधान के उद्देश्यों के लिए, उस राज्य या केंद्रशासित प्रदेश, जैसा भी मामला हो, के संबंध में अनुसूचित जनजातियाँ माने जाएंगे।

संसद कानून के द्वारा धारा (1) में निर्दिष्ट अनुसूचित जनजातियों की सूची में किसी भी आदिवासी जाति या आदिवासी समुदाय या किसी भी आदिवासी जाति या आदिवासी समुदाय के भाग या समूह को शामिल कर या उसमें से निकाल सकती है, लेकिन जैसा कि पहले कहा गया है, इन्हें छोड़कर, कथित धारा के

2

अधीन जारी किसी भी सूचना को किसी भी तदनुपरांत सूचना द्वारा परिवर्तित नहीं किया जाएगा।

इस प्रकार, किसी विशेष राज्य केंद्रशासित प्रदेश के संबंध में अनुसूचित जनजातियों का पहला विशिष्टिकरण संबंधित राज्य सरकारों की सलाह के बाद, राष्ट्रपति के अधिसूचित आदेश द्वारा किया जाता है। ये आदेश तदनुपरांत केवल संसद की कार्रवाई द्वारा ही संशोधित किए जा सकते हैं। उपरोक्त अनुच्छेद अनुसूचित जनजातियों का सूचीकरण अखिल भारतीय आधार पर न करके राज्यों केंद्रशासित प्रदेशों के अनुसार करने का प्रावधान भी करता है।

किसी समुदाय के अनुसूचित जनजाति के रूप में विशिष्टिकरण के लिए पालन किए गए मापदंड हैं, आदिम लक्षणों के संकेत, विशिष्ट संस्कृति, भौगोलिक विलगाव, बृहत्तर समुदाय से संपर्क में संकोच, और पिछड़ापन। ये मापदंड संविधान में लिखे नहीं गए हैं लेकिन भली प्रकार से स्थापित हो चुके हैं। यह 1931 की जनगणना में समाविष्ट परिभाषाओं, प्रथम पिछड़े वर्गों के आयोग 1955, अनुसूचित जातिध अनुसूचित जनजाति की सूचियों (लोकुर समिति), 1965 के संशोधन पर सलाहकार समिति (कालेलकर) और अनुसूचित जातियों पर संसद की संयुक्त समिति और अनुसूचित जनजाति आदेश (संशोधन) विधेयक 1967 (चंदा समिति), 1969 की रिपोर्टों को शामिल करता है।

भारत के संविधान के अनुच्छेद 342 की धारा (1) द्वारा दी गई शक्तियों का प्रयोग करते हुए, राष्ट्रपति ने, संबंधित राज्य सरकारों से सलाह के बाद, अभी तक राज्य और केंद्रशासित प्रदेशों के संबंध में अनुसूचित जनजातियों का विशिष्टिकरण करते हुए 9 आदेश जारी किए हैं। इनमें से, आठ वर्तमान में अपने मूल या

संशोधित रूप में अमल में हैं। एक आदेश नामतः संविधान (गोवा, दामन एवं दियू) अनुसूचित जनजातियाँ आदेश 1968 गोवा, दमन एवं दियू के 1987 में पुनर्गठन के कारण अब अप्रचलित हो चुका है। गोवा, दमन एवं दियू पुनर्गठन अधिनियम 1987 (1987 का 18) के अधीन गोवा की अनुसूचित जनजातियों की सूची को संविधान (अनुसूचित जनजातियाँ) आदेश, 1950 की अनुसूची के भाग ग्प और संविधान (अनुसूचित जन जातियाँ) (केंद्रशासित प्रदेश) आदेश, 1951 की अनुसूची के दमन एवं दियू में स्थानांतरित कर दिया गया है।

'अनुसूचित जनजातियाँ' पद सबसे पहले भारत के संविधान में प्रकट हुआ। अनुच्छेद 366 (25) ने अनुसूचित जनजातियों को "ऐसी आदिवासी जाति या आदिवासी समुदाय या इन आदिवासी जातियों और आदिवासी समुदायों का भाग या उनके समूह के रूप में, जिन्हें इस संविधान के उद्देश्यों के लिए अनुच्छेद 342 में अनुसूचित जनजातियाँ माना गया है" परिभाषित किया है। अनुच्छेद 366 (25), जिसे नीचे उद्धृत किया गया है, अनुसूचित जनजातियों के विशिष्टिकरण के मामले में पालन की जाने वाली प्रक्रिया को निर्दिष्ट करता है।

आदिवासी निवास क्षेत्र – संथाल, मुंडा, माहली,उरांव, हो, भूमिज, खड़िया, बिरहोर, जुआंग, खोंड, सवरा, गोंड, भील, बैगा, कोरकू, कमार आदि इस भाग के प्रमुख आदिवासी हैं। पश्चिमी क्षेत्र में भील, मीणा, ठाकूर, कटकरी, टोकरे कोली,कोली महादेव,मन्नेवार, गोंड, कोलाम, हलबा, पावरा (महाराष्ट्र)आदि प्रमुख आदिवासी जनजातिया निवास करते हैं। उत्तर पूर्वीय क्षेत्र के अंतर्गत हिमालय अंचल के अतिरिक्त तिस्ता उपत्यका और ब्रह्मपुत्र की यमुना–प।ा–शाखा के पूर्वी भाग का पहाड़ी प्रदेश आता है। इस

भाग के आदिवासी समूहों में गुरूंग, लिंबू, लेपचा, आका, डाफला, अबोर, मिरी, मिशमी, सिंगपी, मिकिर, राम, कवारी, गारो, खासी, नाग, कुकी, लुशाई, चकमा आदि उल्लेखनीय हैं।

मध्यक्षेत्र का विस्तार उत्तर–प्रदेश के मिर्जापुर जिले के दक्षिणी ओर राजमहल पर्वतमाला के पश्चिमी भाग से लेकर दक्षिण की गोदावरी नदी तक है। संथाल, मुंडा, माहली,उरांव, हो, भूमिज, खड़िया, बिरहोर, जुआंग, खोंड, सवरा, गोंड, भील, बैगा, कोरकू, कमार आदि इस भाग के प्रमुख आदिवासी हैं।

पश्चिमी क्षेत्र में भील, मीणा, ठाकूर, कटकरी,टोकरे कोली,कोली महादेव,मन्नेवार,गोंड,कोलाम,हलबा,पावरा (महाराष्ट्र)आदि प्रमुख आदिवासी जनजातिया निवास करते हैं। मध्य पश्चिम राजस्थान से होकर दक्षिण में सह्याद्रि तक का पश्चिमी प्रदेश इस क्षेत्र में आता है। गोदावरी के दक्षिण से कन्याकुमारी तक दक्षिणी क्षेत्र का विस्तार है। इस भाग में जो आदिवासी समूह रहते हैं उनमें चेंचू, कोंडा, रेड्डी, राजगोंड, कोया, कोलाम, कोटा, कुरूंबा, बडागा, टोडा, काडर, मलायन, मुशुवन, उराली, कनिक्कर आदि उल्लेखनीय हैं।

नृतत्ववेत्ताओं ने इन समूहों में से अनेक का विशद शारीरिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अध्ययन किया है। इस अध्ययन के आधार पर भौतिक संस्कृति तथा जीवनयापन के साधन सामाजिक संगठन, धर्म, बाह्य संस्कृति, प्रभाव आदि की –दृष्टि से आदिवासी भारत के विभिन्न वर्गीकरण करने के अनेक वैज्ञानिक प्रयत्न किए गए हैं। इस परिचयात्मक रूपरेखा में इन सब प्रयत्नों का उल्लेख तक संभव नहीं है। आदिवासी संस्कृतियों की जटिल विभिन्नताओं का वर्णन करने के लिए भी यहाँ पर्याप्त स्थान नहीं है। राठवा,भिल,तडवी,गरासिया,वसावा,बावचा,चौधरी, दुंगरा

भील,पटेलिया ये सब आदिवासी (गुजरात) में रहते है। ओर वे प्रकृति की पूजा करते है। गुजरात के सोनगढ़ व्यरा, बारडोली सूरत,राजपिपला, छोटा उदेपुर,दाहोद, डांग ये जिलों में आदिवासी पाए जाते है।

आदिवासियों की परिभाषा – ''ट्राइल'' शब्द की परिभाषाऍं तो अनेक हैं, किन्तु यह शब्द ''इंडिजिनस'' शब्द का भी पर्याय हो चला है, तब से इस शब्द के ''अकादमीय'' और अंतर्राष्ट्रीय अर्थ में बहुत फर्क आ गया है । यद्यपि संयुक्त राष्ट्र संघ ने 'इंडिजिनस' संदर्भ वाले 'टाइब' शब्द की कोई भी मानक परिभाषा नहीं स्वीकार की है, फिर भी उसे इंटरनेशनल लेबर आरगेनाइजेशन की परिभाषाऐं सीमित अर्थों में मान्य है, जो निम्न हैं –

गिलिन और **गिलिन** की परिभाषा के अनुसार, ''स्थानीय जाति समूहों का एक ऐसा समुदाय जनजाति कहलाता है जो एक सामान्य क्षेत्र में निवास करता है तथा जिसकी एक सामान्य संस्कृति है।''

आर.एन. मुकर्जी के अनुसार, ''उस मानव समूह को जनजाति कहा जाता है, जिसके सदस्य आम अभिरूचि, प्रदेश, भाषा, सामाजिक नियम तथा आर्थिक वेशों से बंधे होते हैं ।

जार्ज पीटर माडकि के अनुसार, ''यह एक सामाजिक समूह है, जिसकी एक अलग भाषा होती है तथा भिन्न संस्कृति व एक स्वतंत्र राजनैतिक संगठन होता है ।

हावल के अनुसार, ''जाति एक सामाजिक समूह है जो एक विशेष भाषा बोलती है तथा जिसकी अपनी विशिष्ट संस्कृति है जो इन्हें

जनजाति समूहों से अलग करती है। यह अनिवार्य रूप से राजनैतिक संगठन नहीं है।''

रेमण्ड फर्थ के अनुसार, ''जनजाति एक ही सांस्कृतिक श्रृंखला का मानव समूह है जो साधारण एक ही भूखण्ड पर रहता है, एक भाषा भाषी है तथा एक ही प्रकार की परम्पराओं एवं संस्कारों का पालन करता है और एक ही सरकार के प्रति उत्तरदायी होता है।''

इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया के अनुसार, ''जनजाति ऐसे परिवारों का संकलन है जिसका एक सामान्य नाम है, सामान्य भाषा है तथा जो सामान्य भूभाग में बने हुए है तथा ये प्रायः अर्न्तविवाही नहीं होते । पहले इनमें ऐसी प्रथा पाई जाती है ।

जनजातियों का वर्गीकरण – विशाल भारत में फैली हुई सभी जनजातियों को किसी भी आधार पर एक श्रेणी में नहीं रखा जा सकता, इसलिए इनका वर्गीकरण किया गया :–

भौगोलिक वर्गीकरण – डॉ. बी.एस. गुहा ने भारत की संपूर्ण जनजातियों को भौगोलिक निवास के आधार पर तीन भागों में विभक्त किया है :–

(अ) उत्तर तथा उत्तर–पूर्वी क्षेत्र :– इस क्षेत्र का विस्तार कश्मीर, पूर्वी पंजाब, हिमाचल प्रदेश, उत्तरी उत्तर प्रदेश और असम के पहाड़ी भाग तक है । लेह, शिमला और लुशाई पर्वत का क्षेत्र भी इसके अंतर्गत आता है । यह संपूर्ण क्षेत्र सीमावर्ती होने के कारण राजनीतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है । इस क्षेत्र की प्रमुख जनजातियॉ राजनीतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है । इस क्षेत्र की प्रमुख जनजातियों में भोटिया, घारू, लेपचा, नगा, गारो,

खासी, डाफला, कूकी, अबोट, मिकिर, लुशाई, गुज्जर, चकमा, गुरंग आदि हैं ।

मध्यवर्ती क्षेत्र – इस क्षेत्र का विस्तार उत्तर में गंगा के मैदान से लेकर दक्षिण के कृष्णा नदी तक है । इसमें विंध्याचल व सतपुड़ा के पहाड़ों की पट्टी भी सम्मिलित है। इसमें पश्चिम बंगाल, बिहार, झारखण्ड, दक्षिणी उत्तर प्रदेश, दक्षिणी राजस्थान, छत्तीसगढ़, मध्यप्रदेश, उड़ीसा और महाराष्ट्र के उत्तरी भाग में निवास करने वाली जनजातियॉ आती हैं । इस क्षेत्र की प्रमुख जनजातियॉ संथाल, मुंडा, उराव, खारिया, बिरहोड, गोड, बैंगा, भील, कोली, मीणा आदि हैं ।

दक्षिणी क्षेत्र – यह क्षेत्र कृष्णा नदी के दक्षिण में है । इसमें मैसूर, ट्रावनकोट, कोच्चि, हैदराबाद, आन्ध्र और तमिलनाडू आदि क्षेत्र आते हैं । इस क्षेत्र की जनजातियों में नीलगिरि के टोड, कोटा, पनियन, कदार, हैदराबाद के चेचू, कुरूम्बा, और उराली आदि प्रमुख हैं । इस क्षेत्र में अण्डमान और निकोबार द्वीप समूहों की जनजातियों जैसे जारता, निकोबार, सेहीनेली, ओग तथा शोपन, आदि को भी सम्मिलित किया गया है।

जनजाति की विशेषताएँ

सामान्य संस्कृति :– जनजाति की सामान्य संस्कृति होती है, जिसके अनुसार उनके रीति रिवाज, प्रथा, कानून, नियम, मूल्य एवं लोकाचारों आदि की सामान्यता पाई जाती है। जनजाति शरीर सज्जा, नशा तथा हृदय के प्रेमी होते हैं।

आवास :– सामान्यता सभी जनजाति सम्यक जनसंख्या से दूर निवास करती है। वे जंगलों, पहाड़ों और घाटियों में निवास करते हैं।

भाषा :– जनजाति की अपनी बोली होती है, जिसके माध्यम से वे अपने विचारों का स्पष्टीकरण करते हैं। अधिकांश जनजाति 'गौड़ी' भाषा का प्रयोग करते है।

अर्थव्यवस्था :– जनजाति शिकार, फल–फूल इकट्ठा करने वाले पशुपालक, स्थानान्तरित कृषक, व्यवस्थित कृषक होते है। प्रौ ोगिकरण विकास, आधुनिक आवागमन और संचार साधनों के परिणामस्वरूप जनजाति कारखानों और उ ोगों में कार्य कर रही है। उनको शासकीय नौकरियों में भी उचित प्रतिनिधित्व मिल रहा है।

राजनैतिक संगठन :– प्रत्येक जनजाति का एक निश्चित राजनैतिक संगठन होता है। समाज का कोई प्रमुख अथवा वृद्ध व्यक्ति उनका मुखिया होता है, जिसकी आज्ञा का पालन करना सभी का कर्त्तव्य होता है।

धर्म :– जनजाति का उनके धर्म में विश्वास है। एक जनजाति में धर्म के स्वरूप और उसकी प्रकृति में दूसरों से भिन्नता है। भूत–प्रेतों का जनजातियों के जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है।

खान–पान :– जनजाति के खानपान का आधार माँस होता है। इसके साथ ही वे जंगली उत्पादनों फल, जड़, पत्तियाँ और फूल ग्रहण करते हैं। वे अन्न का भी भोजन के रूप में प्रयोग करते हैं, किन्तु ये अन्न मोटे किस्म के होते हैं।

आधुनिक संचार :– आधुनिक संचार के परिणामस्वरूप जनजाति का क्षेत्रीय जीवन विस्तृत होता जा रहा है और वे अन्य जनजातियों तथा अजनजातिय जनसंख्या के सम्पर्क में आती जा रही हैं।

जनजाति की समस्या

आवास समस्या :– जनजाति के मकान प्रायः घास–फूस, लकड़ी और मिट्टी के बने होते हैं। स्वास्थ्य की दृष्टि से ये मकान अत्यंत हानिकारक होते हैं। मकानों में खिड़कियों का अभाव पाया जाता है। मकानों में समुचित रूप से हवा और रोशनी का अभाव होता है।

खा। सामग्री की समस्या :– खा। सामग्री जनजातियों की प्रमुख समस्या है। इस दृष्टि से वे आज भी आखेट और पशुपालन अवस्था में रहते है। जंगली फलों, फूलों, जड़ों, छालों और पत्तियों का प्रयोग खा। सामग्री के रूप में करते हैं। जंगली जानवरों का शिकार करके भी अपने जीवन का निर्वाह करते हैं।

स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्या :– जनजाति को पर्याप्त तथा पौष्टिक भोजन नहीं मिल पाता है। इसके साथ ही वे ऐसे वातावरण में रहते हैं, जिनमें अनेक प्रकार की बीमारियों का जन्म होता है। इन बीमारियों में त्वचा, संबंधी, कुपोषण, संक्रमण आदि प्रमुख हैं।

जनजाति परम्परात्मक चिकित्सा पद्धति में विश्वास रखते हैं तथा आधुनिक चिकित्सा पद्धति को उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं।

शिक्षा सम्बन्धी समस्या :– अशिक्षा अनेक प्रकार की समस्याओं को जन्म देती है। जनजाति अपने समूह को व्यवहारिक शिक्षा प्रदान करते हैं। इस शिक्षा का उद्देश्य होता है, समुदाय की सामाजिक सांस्कृतिक एकता बनाये रखना।

ऋणगस्ता की समस्या :– जनजाति अज्ञान, निर्धन और भोले होते हैं। इनके सरल स्वभाव का लाभ अनेक व्यापारी साहूकार तथा अन्य ऋण के बोझ चालक व्यक्ति उठाते हैं। प्रायः परिवार ऋण से दबा हुआ है। इनमें से अधिकांश ऋण पुश्तैनी होते है और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तानान्तरित होते रहते है।

औद्योगिक श्रमिकों की समस्याएँ :– नगरीकरण और औ ोगिकीकरण का परिणाम यह हुआ है कि सभ्यता से दूर रहने वाली जनजाति को लालच देकर औ ोगिक कार्यों में लगाया जाता है, किंतु इन श्रमिकों को न तो पर्याप्त वेतन दिया जाता है और न ही रहने की सुविधा दी जाती हैं।

जनजाति साक्षरता जनजाति साक्षरता कार्यक्रमों और योजनाओं के बावजूद भी आदिवासी में साक्षरता बहुत कम है। जनजाति के पिछड़ेपन का एक महत्वपूर्ण कारण एवं सूचक अल्प साक्षरता है। इसका आभार इसी से मिल जाता है कि राज्य की कुल जनजाति जनसंख्या में से सन् 1991 तक केवल 16.88 प्रतिशत ही साक्षर कहे जा सके, शेष 83.12 प्रतिशत अब भी निरक्षर हैं। यह साक्षरता का औसत देश के आदिवासी साक्षरता के औसत (16.35 प्रतिशत) से काफी कम है। राज्य में कुल 36.46 प्रतिशत लोग साक्षर हैं। सन् 1991 की जनगणना में साक्षरता की गणना करते समय जनसंख्या में से 0 से 6 वर्ष तक की जनसंख्या को घटाकर शेष में से साक्षरों का प्रतिशत निकाला गया है। जनजातीय पुरूषों में 32.16 प्रतिशत और महिलाओं में 10.73 प्रतिशत साक्षर हैं। यह अनुपात राज्य के कुल पुरूषों (58.42 प्रतिशत) महिलाओं में (28.85 प्रतिशत) साक्षरता से बहुत कम है। यद्यपि विकास और साक्षरता का घनिष्ट सामाजिक आर्थिक संरचना के लिए शिक्षा अनिवार्य है। शिक्षा के अभाव में न केवल वह अपने अधिकारों और कर्त्तव्यों से अनभिज्ञ रहकर एक अच्छा नागरिक नहीं बन पाता, बल्कि विकास की प्रक्रिया में भागीदार नहीं हो पाता।

आदिवासी अर्थ, परिभाषा, विशेषताएं – ''जनजाति के संदर्भ में विद्वानों द्वारा व्यक्ति विचारों को केन्द्रित करते हुए कह सकते है

कि जिनकी सामान्यता एक निश्चित बोली या भाषा एक समान रहन सहन व वेष भूषा एक समान वैवाहिक पद्धति एक समान धार्मिक संस्कार तथा एक जैसे संस्कृति को आत्मसात किये एक सामाजिक संगठन के रूप में पायी जाती है। अतः स्पष्ट है कि ''जनजाति वह सामाजिक समूह है जो वन्य या दुर्गम स्थानों में रहते हुए सामाजिक तथा सांस्कृतिक पक्षों में समानता प्रदर्शित करते हुए सामान्यतः परम्परागत संस्कृति के अनुसार जीवन यापन करता है।

गौंड :– गौंड जनजाति के विकास एवं उत्पत्ति के विषय में अनेक मिथ्य कथायें एवं किवंदतियां भी प्रचलित हैं। जिनसे ज्ञात होता है कि इनका प्रादुर्भाव महादेव जी और पार्वती जी की कृपा से हुआ है।

एक गौंडी कथा में गंगा जी को महादेवजी की पुत्री कहा गया है जिन्हें गौंड 'गंगाइन' देवी कहते है। महोदवी जी व गौरा देवी ने अपनी पुत्री गंगाइन का विवाह दौगुन देव से किया जब 'गंगाइन' विदा हुई तो महादेव जी ने उनके साथ दो गण भेजे जिन्हें पृथ्वी का भ्रमण करने में सहयोग दिया। यही गण इन आदिवासियों के पुरखे माने जाते हैं।

सामान्य जीवन :– मध्यप्रदेश के आधे से अधिक भाग में आदिवासी निवास करते हैं, इनमें गौंड जाति सबसे अधिक है। राज्य के उत्तरीय भाग को छोड़कर बैतूल, होशंगाबाद, बालाघाट, छिंदवाड़ा, शहडोल, मंडला, सागर, दमोह, में गौड़ प्रमुख जनजातियां है। मंडला जिला गौंड़वाना राज्य था मध्यप्रदेश में जितनी जनजातियां रहती हैं, उनकी कुल जनसंख्या में आधे से

अधिक गौंड जाति की है। गौंड सबसे अधिक प्रभाव शाली जानजाति है, गौंड प्रकृति की गोद में किसी पहाड़ी पर या नदी के किनारे रहना पसंद करते है गौडों के अधिकांश गांव सड़क के दूर जंगलों में बसे हेाते हैं। गौंड प्रकृति प्रेमी होते है, प्राकृतिक जीवन उनका आदर्श जीवन है, यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता कि मध्यप्रदेश क्षेत्र में गौंड कहां से आकर बसे हैं।

भोजन :– गौंड ज्यादातर मांसाहारी भी होते हैं मासांहारी खाद्य पदार्थ में केकड़ा, झीगुंर, तोता, बकरा, मुर्गा अन्य जानवर आदि को खाना पसंद करते है। ये इन खाद्य पदार्थो को भूनकर या पानी में पकाकर नमक डालकर चावल या अन्य किसी खाद पदार्थ के साथ खाना पसंद करते हैं।

पारिवारिक जीवन :– हमारे देश में पुरूष प्रधान परिवार प्रचलित है। इसी परिधि में ये गौंड जनजाति भी आती है, परिवार का पूर्ण उत्तरदायित्व परिवार के सबसे बुर्जुग व्यक्ति पर रहता है। भले ही वह कोई काम न करता हो अर्थात आर्थोपार्जन न करता हो किन्तु भारतीय संस्कृति के अनुसार पारिवारिक प्रमुख होने के नाते परिवार में उसे पूरी प्रतिष्ठा मिलती है। बिरादरी, रिश्तेदारी आदि का प्रमुख कार्य भी वही संभालता है यदि गांव का मुखिया बनने का अवसर उसे मिला तब तो उसका उत्तर दायित्व बढ़ जाता है। अनेक समस्याओं को सुलझाना उसकी सूझ–बूझ पर निर्भर करता है उसके द्वारा पूर्णतः न्याय किया जाता है।

सामाजिक जीवन :– मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज के साथ उसकी सन्निकता, आत्मियता, सदभावना सदैव रही है और रहेगी इस परीपेक्ष में गौंड आदिवासीयों की अपनी अदभुद गरीमा है कि जिस क्षेत्र में भी यह रहते मिलजुलकर रहना इन्हें बेहद प्रिय है। अतः जंगल, पहाड़ जहां भी यह निवास करते हैं

सामूहिक घर बनाकर रहते है। अर्थात यदि बड़ा गांव है जिसमें अनेक जातियां रहती है तो उसमें भी उनका टोला एक ही जगह होगा। इसमें उन्हें यह सुविधा होती है कि दिनभर अपने जीविकोपार्जन के कार्य से जब घर लौटते है तो अपने पारिवारिक आनंद का लाभ अपनी जाति, विराद्री से मिलकर उठाते है। एक दूसरे की आवश्यकता की पूर्ति भी सामूहिक निवास से हो जाती है।

आवास – गौंड आदिवासी प्रायः कच्चे मकान अथवा अच्छी साफ सुथरी झोपड़ी में रहना पसंद करते हैं। अपनी क्षमता के अनुसार ये जंगल की लकड़ी, बांस, पुआल, खपरेल, सरपत आदि का उपयोग कर छोटा किन्तु साफ सुथरा आवास बनाकर रहते हैं। मिट्टी की दीवार बनाते समय उसमें मजबूती देने के लिए कोदो का पैरा या भूसा बनाकर खूब रौंदते हैं। जब मिट्टी अच्छी तरह मिलकर दीवार बनाने के काबिल हो जाती है तब नारियल अगरबत्ती आदि से पूजा पाठ अपनी क्षेत्रीय परम्परा के अनुसार करके नीचे को कंकड़ पत्थर से मजबूती देकर मिट्टी दीवार उठाते हैं। जब दीवार तैयार हो जाती है तो लकड़ी बांस, सरपत, पुअर आदि से छाजने की व्यवस्था करते हैं व मिट्टे कबेलू का उपयोग भी करते हैं। गौंड आदिवासी अपने घरों को गाय भैंसो के गोबर से लीप पोतकर साफ सुथरा रखते हैं। यह अपने घरो की मिट्टी की दीवारों पर चित्रकारी करना, दरवाजे के दोनो और गेरू और गोबर से शुभकारी आकृतियां बनाते हैं व शुभकारी चित्र भी निर्मित करते हैं।

रसोई के बर्तन :–घरेलू कार्य में उपयोग होने वाली वस्तुओं के नाम पर गौंड आदिवासी परिवारों में मिट्टी के बर्तन, बांस की टोकरी, मछली पकड़ने का जाल, पक्षी फसाने के लिए फांसे,

छोटी मोटी चीजे पाई जाती है। हसिया, खनता, कुदाली, मुरा, धूरी, कोटा, ढुकना, पिटला, बिडली, चुटकी, छालरी, झुरा, सब्बल, टंगिया, कोहली, छपरी आदि का उपयोग करते है।

कोरकू – कोरकू जनजाति की उत्पत्ति के संबंध में कोई निश्चित मत नहीं है। नृतत्वेत्ता इस जाति को मुण्डा अथवा केलिरियन आदिम जाति परिवार का मानते है। इसकी उत्पत्ति के संबंध में कुछ अवधारणायें पाई गई है।

किसी समय विदर्भ देश में कोरम नाम का राजा राज्य करता था। जब वह सन्यास लेने राज्य और घर परिवार छोड़कर जंगल में चला गया तब वहीं एक आदिवासी कोल युवती राजा पर मोहित हो गयी। उस युवती ने राजा से प्रणय याचना की तब राजा ने काफी सोच विचार कर उसे पत्नि रूप में स्वीकार किया। उनसे संतान प्राप्त हुई वह कोरम या कोरकू कहलाये।

आर्थिक जीवन :– कोरकू जनजाति की अर्थव्यवस्था कृषि एवं लघु वनोपज पर आधारित है, उनमें से लगभग 80 प्रतिशत लोग कृषि कार्य करते हैं एवं खेतीहर बड़े किसान नगण्य है। अधिकांश कोरकू परिवार कृषि मजदूरी भी करते हैं, इस जनजाति की आय प्राप्ति का प्रमुख साधन कृषि, मजदूरी एवं वनोपज है। इनकी कृषि भूमि असंचित तथा पहाड़ियों की ढलानों में होती है। कोरकू आदिवासी सामान्यतः खरीफ की फसल ही पैदा करते है जिनमें निम्न फसलें है ज्वार, बाजरा, मक्का, कोदो, कुटकी आदि साथ ही साथ लघु वनोउपज जैसे तेन्दू पत्ता, लाख, महुआ, जलाऊँ लकड़ी एकत्रित करते है खेती कार्य भी किया जाता है। कोरकू जनजाति के परिवार गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन कर रहे हैं। जंगलो से प्राप्त अन्य उपयोगी साधन, अन्य उपयोगी खा।

पदार्थ ठेकेदारो को बाजार में बेच देते है और स्वयं के लिए महुआ बचा लेते है।

भोजन :– कोरकू मुख्यतः कोदो, कुटकी, चावल, मक्का, ज्वार, उड़द, मूंग, बरवटी की दाल, मौसमी सब्जी, कंदमूल, भाजी पसंद करते है ये गेहूं की फुंगेरी खाना आत्याधिक पसंद करते हैं। गेहूं या गेहूं की टूटन को रात भर फुलाकर सुबह पकाते है नमक मिर्च का प्रयोग कर इसे स्वाद के साथ खाना पसंद करते हैं। मांसाहार में मुर्गी, बकरा, खरगोश, पक्षियां, मछली, केकड़ा आदि लेते हैं। यह मांसाहारी खा। पदार्थ को अग्नि में पकाकर या कई बार बिना पकाये ही खाना पसंद करते हैं। कोरकू सामान्यतः अन्न (जैसे कोदो, कुटकी, गेंहूँ, चावल) को पीसकर उसे भात की तरह बनाकर तथा मौसमी सब्जियों एवं कंद मूल को उसके साथ खाया करते हैं। ये जनजाति अपने आहार के साथ दूध व छाछ भी लेना पसंद करते हैं। ये सामान्यतः किसी भी पके हुए अन्न को गाढ़े घोल के रूप में बनाकर लेना पसंद करते हैं।

पारिवारिक जीवन :– भारत देश एक पुरूष प्रधान देश है यह परंपरागत चला आ रहा है इसी परिधि में ये कोरकू जनजाति भी आती है परिवार का पूर्ण उत्तरदायित्व परिवार के मुखिया पर होता है भले ही वह कोई काम न करता हो अर्थात आर्थोपार्जन न करता हो अथवा न करता हो किन्तु भारतीय संस्कृति के अनुसार परिवार का मुखिया होने के करण पूरी प्रतिष्ठा व सम्मान मिलता है। समाज, विरादरी, रिश्तेदारी आदि का प्रमुख कार्य भी वही संभालता है।

सामाजिक जीवन :– कोरकू आदिवासियों की समाज व्यवस्था भी अदभुद होती है अर्थात इनका सामाजिक जीवन बहुत महत्वपूर्ण होता है इनमें अपने सदस्यों व विभिन्न काम करने वाले लोगों में

आंतरिक संबधं और अंतर निर्भरता रहती है इस इस तरह की सामाजिक सोच रखने वालो में सभी जनो की दायित्व पूर्ण और सम्मान जनक स्थान होता है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है समाज के साथ उसकी सन्निकता, आत्मियता, अंतर संबंध होता है जो कि आर्थिक सामाजिक रूप से भी महतवपूर्ण है रही है आदिवासियों के सामाजिक आचरण में गौत्र बड़ी भूमिका निभाते हैं इनके सीधे सरल समाज में परिवार जन और रिश्तेदारो को काफी महत्पूर्ण जगह मिली इस परिपेक्ष में कोरकू आदिवासियों की अपनी अदभुद गरीमा है कि जिस क्षेत्र में भी यह अपना जीवन यापन करते है मिल जुलकर रहना इन्हें बेहद पसंद होता है अतः जंगल, पहाड़ जहां भी यह निवास करते है सामूहिक घर बनाकर रहते है। दिनभर अपने जीविकोपार्जन के कार्य से जब घर लोटते है तो अपने परिवार के सदस्यों के साथ मिलकर नृत्य गांन करते हैं व आनंद उठाते है। जाति, विरादरी से मिलकर, एक दूसरे की आवश्यकता की पूर्ति भी सामूहिक निवास से हो जाती है।

आवास :– कोरकू जनजाति के आवास सामान्यतः ग्राम की सड़को के किनारे, पहाड़ो पर दो तीन कमरे व घर के सामने आंगन पीछे निस्तार के लिए बड़ी आंगन के बाद छपरी या बैठक होती है। बीच का कमरा सोने के लिए, आनाज रखने के लिए होता है व अंतिम कमरा रसोई हेतु जानवरो को बाधने हेतु पशु पक्षी पालन हेतु घर के बगल में या बाड़ी में रखा जाता है इस कार्य हेतु बड़ी जगह की आवश्यकता होती है। कमरो की दीवारे बांस या जंगली झाड़ियों की टटिया को बनाकर गोबर मिट्टी से छाबकर, तैयार की जाती है घर की छत के लिए खपरेल या घास पूस का उपयोग किया जाता है नीचे का फर्श जो मिट्टी से छबा हुआ होता है इसे गोबर से लीपकर पुताई करके सजाया जाता है।

रसोई के बर्तन :– घरेलू कार्य में उपयोग होने वाली वस्तुओं के नाम पर आदिवास परिवारों में मिट्टी के बर्तन बांस की टोकरी, मछली पकड़ने का जाल, पक्षी फसाने के लिए फांसे छोटी मोटी चीजे पाई जाती है हंसिया, सब्बल, टंगिया, कोहली, छपरी आदि भी पाये जाते है।

आदिवासियों का रहन सहन – यहीं पर स्वामी से सवाल किया गया था कि आदिवासी समाज के लोग सरना धर्म से आते हैं या सनातन धर्म से ? इस पर स्वामी जी ने कहा कि आदिवासियों का रहन–सहन – पूजा पाठ बहुत कुछ सनातन धर्म से मिलता जुलता है. उनके पूर्वज भी सनातन धर्म से थे. उन्होंने कहा कि जो लोग इसे नहीं मानते हैं उनका आज नहीं तो कल दूसरे धर्म में विलय हो जाएगा

आदिवासी लोग –यहां हर जनजाति की अपनी बोली, अपने त्योहार, रहन–सहन, खान–पान और पहनने–ओढने के तरीके हैं। बस्तर के आदिवासी आज भी बड़ी संख्या में घने जंगलों में रहते हैं और बाहरी लोगों से मिलना जुलना पसंद नहीं करते ताकि उनकी संस्कृति अपने मूलरूप में बची रहे। अबूझमाड़ इसी का एक उदाहरण है जहां का जीवन आज भी बाहरी लोगों के लिए पहेली है।

आदिवासियों के भगवान – क्रांति सूर्य, महामानव, जननायक, जल–जंगल–जमीन के रक्षक धरती आबा, बिरसा मुंडा को भारतीय आदिवासी समुदाय अपना भगवान मानते है।

आदिवासियों का इतिहास – आदिवासी शब्द दो शब्दों 'आदि' और 'वासी' से मिल कर बना है और इसका अर्थ मूल निवासी होता है। भारत की जनसंख्या का 8.6ः (10 करोड़) जितना एक बड़ा हिस्सा आदिवासियों का है। पुरातन लेखों में आदिवासियों

को अत्विका कहा गया है (संस्कृत ग्रंथों में)। महात्मा गांधी ने आदिवासियों को गिरिजन (पहाड़ पर रहने वाले लोग) कह कर पुकारा है।

आदिवासी खानपान –आदिवासियों के खान–पान में मुख्य रुप से जंगल,जमीन से मिलने वाले खा। पदार्थ शामिल होते हैं. आदिवासी उबले हुए भोजन जैसे चावल, दालें, जड़ी–बूटियाँ या 'साग' और मांस खाते हैं और कुछ अवसरों पर पशु या पक्षी के मांस को आग में भूनते हैं. आदिवासी खाने में इस्तेमाल होने वाली सामग्री स्वाद के साथ–साथ पोषण का भी बड़ा स्रोत है.।

आदिवासी लोगों के जीवन यापन के मुख्य साधन –आदिवासियों तथा वनों के निकट रहने वाले समुदायों को वनों से अग्रलिखित चीजें प्राप्त होती हैं– आवास, आश्रय और छाया घरेलू उपकरणों के लिए कच्चा माल भौतिक संस्कृति की अन्य वस्तुएँ जैसे राल (रेजिन), गोंद, रंग सामग्री आदिय औजार बनाने, बाड़ लगाने और मकान बनाने के लिए लकड़ी ईंधन, जड़–बूटी, पशुओं के लिए चारा तथा चारागाह

क्रमांक आदेश का नाम अधिसूचना की तिथि उन राज्यों केंद्रशासित प्रदेशों के नाम जिनके लिए लागू

1. संविधान (अनुसूचित जनजातियाँ) आदेश 1950 (C-O-22) 6–9–1950 आंध्र प्रदेश, अरूणाचल प्रदेश, असम, बिहार, गुजरात, गोवा, हिमाचल प्रदेश, कर्नाटक, केरल, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, उड़ीसा, राजस्थान,तमिलनाडु, त्रिपुरा और पश्चिम बंगाल।
2. संविधान (अनुसूचित जनजातियाँ) (केंदशासित प्रदेश) आदेश 1951 (C-O-33) 20–9–1951 दमन एवं दियू, लक्षद्वीप

3. संविधान (अंडमान और निकोबार द्वीपसमूह) अनुसूचित जनजातियाँ आदेश, 1959 (C-O-58) 31–3–1959 अंडमान और निकोबार द्वीपसमूह

4. संविधान (दादरा एवं नगर हवेली) अनुसूचित जनजातियाँ आदेश, 1962 (C-O-65) 30–6–1962 दादरा एवं नगर हवेली

5. संविधान (उत्तर प्रदेश) अनुसूचित जनजातियाँ आदेश, 1967 (C-O-78) 24–6–1967 उत्तर प्रदेश

6. संविधान (नागालैंड) अनुसूचित जनजातियाँ आदेश, 1970 (C-O-88) 23–7–1970 नागालैंड

7. संविधान (सिक्किम) अनुसूचित जनजातियाँ आदेश, 1978 (C-O-111) 22–6–1978 सिक्किम

8. संविधान (जम्मू और कश्मीर) अनुसूचित जनजातियाँ आदेश, 1989 (C-O-142) 7–10–1989 जम्मू और कश्मीर

हरियाणा, पंजाब, चंडीगढ़, दिल्ली राज्यों और पॉडिचेरी केंद्रशासित प्रदेशों के संबंध में किसी भी समुदाय को अनुसूचित जनजाति के रूप में निर्दिष्ट नहीं किया गया है। अनुसूचित जनजातियों की केंद्रशासित प्रदेशों के अनुसार सूची परिशिष्ट–५ पर और अनुसूचित जनजातियों की वर्णानुक्रमक सूची परिशिष्ट–५५ पर है।

अनुसूचित जनजाति प्रमाणपत्र को जारी करने के लिए – पालन की जाने वाली बातें

1. **सामान्यः** जहाँ कोई व्यक्ति जन्म से अनुसूचित जनजाति का होने का दावा करता है, यह सत्यापित किया जाना चाहिए।

कि व्यक्ति और उसके माता–पिता वास्तव में दावा किए गए समुदाय के हैं

कि वह समुदाय संबंधित राज्य के विषय में अनुसूचित जनजातियों को सूचित करने वाले राष्ट्रपति के आदेश में शामिल है।

कि वह व्यक्ति उस राज्य और राज्य में उस क्षेत्र से है जिसके संबंध में समुदाय को अनुसूचित किया गया है।

वह किसी भी धर्म को मान सकता है।

कि उसे उसके मामले में लागू राष्ट्रपति के आदेश की अधिसूचना की तिथि को स्थायी निवासी होना चाहिए।

वह व्यक्ति जो राष्ट्रपति के आदेश की अधिसूचना के समय अपने स्थायी निवास–स्थान से अस्थायी रूप से दूर हो, उदाहरण के लिए, आजीविका कमाने या शिक्षाप्राप्ति आदि के लिए, भी अनुसूचित जनजाति माना जा सकता है, यदि उसकी जनजाति को उसके राज्यध्केंद्रशासित प्रदेश के संबंध में उस क्रम में निर्दिष्ट किया गया है। लेकिन उसे उसके अस्थायी निवास–स्थान की जगह के संबंध में इस रूप में नहीं माना जा सकता है, चाहे तथ्यानुसार उसकी जनजाति का नाम किसी भी राष्ट्रपति आदेश में उस क्षेत्र के संबंध में क्यौं न अनुसूचित किया गया हो।

संबंधित राष्ट्रपतीय आदेश की अधिसूचना की तिथि के बाद जन्मे व्यक्तियों के मामले में, अनुसूचित जनजाति की हैसियत पाने के उद्देश्य के लिए निवास का स्थान, उस राष्ट्रपतीय आदेश

की अधिसूचना के समय उनके माता–पिता का स्थायी निवास–स्थान है, जिसके अधीन वे ऐसी जनजाति से होने का दावा करते हैं।

2. **प्रवास करने पर अनुसूचित जनजाति दावे –** जहाँ कोई व्यक्ति राज्य के उस भाग से, जिसके संबंध में उसका समुदाय अनुसूचित है, उसी राज्य के किसी दूसरे भाग में प्रवास करता है जिसके संबंध में समुदाय अनुसूचित नहीं है, वह उस राज्य के संबंध में अनुसूचित जनजाति का सदस्य माना जाता रहेगा। जहाँ कोई व्यक्ति एक राज्य से दूसरे राज्य को प्रवास करता है, वह अनुसूचित जनजाति का होने का दावा कर सकता है, लेकिन केवल उस राज्य के संबंध में ही जहां से वह मूल रूप से है और उस राज्य के संबंध में नहीं जहां पर उसने प्रवास किया है।

3. **विवाहों के माध्यम से अनुसूचित जनजाति दावे –** मार्गदर्शक सिद्धांत यह है कि कोई भी व्यक्ति जो जन्म से अनुसूचित जनजाति का नहीं था, केवल इसलिए अनुसूचित जनजाति का सदस्य नहीं माना जाएगा कि उसने अनुसूचित जनजाति के किसी व्यक्ति से विवाह किया है।

इसी प्रकार, कोई व्यक्ति जो एक अनुसूचित जनजाति का सदस्य है, विवाह के बाद भी उस अनुसूचित जनजाति का सदस्य बना रहेगा, भले ही उसने किसी ऐसे व्यक्ति से विवाह किया हो जो किसी अनुसूचित जनजाति का सदस्य नहीं है।

4. अनुसूचित जनजाति प्रमाणपत्रों का जारी होना अनुसूचित जनजातियों के प्रत्यार्थियों को उनके दावे के समर्थन में निर्दिष्ट अधिकारियों में से किसी के द्वारा निर्दिष्ट फार्म में

(परिशिष्ट–प्प्) अनुसूचित जनजाति प्रमाणपत्र जारी किए जा सकते हैं।

5. बिना उचित सत्यापन के अनुसूचित जनजाति प्रमाणपत्र जारी करने वाले अधिकारियों के लिए दंड

6. अन्य राज्यों केंद्रशासित प्रदेशों से प्रवासियों को अनुसूचित जनजाति प्रमाणपत्र जारी करने के लिए प्रक्रिया का उदारीकरण

अनुसूचित जनजातियों के लोगों को, जिन्होंने एक राज्य से दूसरे राज्य को रोजगार, शिक्षा आदि के उद्देश्य से प्रवास किया है, उस राज्य से आदिवासी प्रमाणपत्र प्राप्त करने में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है, जहाँ से उन्होंने प्रवास किया है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए यह निश्चय किया गया है कि एक राज्य सरकारध्केंद्रशासित प्रदेश प्रशासन ऐसे व्यक्ति को उसके पिताध्माता के मूल के लिए जारी विश्वसनीय प्रमाणपत्र प्रस्तुत करने पर अनुसूचित जनजाति प्रमाणपत्र जारी कर सकता है जिसने दूसरे राज्य से प्रवास किया है, सिवाय केवल तब जब निर्दिष्ट अधिकारी यह महसूस करता हो कि प्रमाणपत्र के जारी करने से पहले मूल राज्य के माध्यम से विस्तृत पूछताछ आवश्यक है। प्रवासी व्यक्ति को जनजाति का प्रमाण पत् ंजारी किया जायेगा चाहे प्रश्नाधीन जनजाति उस राज्य केन्द्रशासित प्रदेश में अनुसूचित है या नहीं हांलाकि वे प्रवासित राज्य में अनुसूचित जनजाति के लाभों के हकदार नहीं होंगे।

भारत के आदिवासी

जनसंख्या की दृष्टि से भारत का विश्व में दूसरा स्थान है । चीन के बाद सबसे अधिक जनसंख्या हमारे देश में ही निवास करती है । विश्व के 2.2 प्रतिशत क्षेत्रफल में भारत है । इसकी जनसंख्या विश्व का 15 प्रतिशत है । जनजातीय समूह की जनसंख्या का अनुपात इसमें महत्वपूर्ण है । सन् 1961 में जनजातीय जनसंख्या लगभग 3 करोड़ थी, जो कि उस समय की कुल आबादी का 6 प्रतिशत थी । यही जनसंख्या 1971 में 3 करोड़ 80 लाख हो गयी, जो आबादी के अनुपात में एक प्रतिशत अधिक अर्थात् 7 प्रतिशत थी। सन् 1981 की जनगणना में यह प्रतिशत बढ़कर कुल आबादी का 7) प्रतिशत और 1991 में 7.94 प्रतिशत हो गयी थी। पुनः 2001 की जनगणना के अनुसार यह संपूर्ण आबादी का 8 प्रतिशत हो गयी थी, जो इस तथ्य को इंगित कर रही है कि जनजातीय जनसंख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है।

स्पष्ट यह है कि जनजातीय जनसंख्या कुल जनसंख्या के अनुपात में निरन्तर वृद्धि की ओर उन्मुख है जैसा कि यह तालिका दर्शाती है –

भारत वर्ष की कुल जनसंख्या तथा जनजातीय जनसंख्या

वर्ष	कुल जनसंख्या	जनजातीय	प्रतिशत
1961	43,92,24,771	2,98,83,470	6.6
1971	54,79,49,809	2,80,15,162	6.93

1981	68,28,10,051	5,16,28,639	6.55
1991	84,63,02,668	6,77,58,380	7.94
2001	102,87,37,436	8,43,26,204	8.0

भारत की जनसंख्या में आदिवासी समुदाय का विशेष स्थान है किन्तु देश के आर्थिक विकास में उनका विशेष योगदान नहीं है । आदिवासी समुदाय का एक बड़ा भाग आज भी गरीबी रेखा से नीचे रहकर अपने अस्तित्व के लिए जूझ रहा है। आज आदिवासी समाज जितनी पिछड़ी स्थिति में है, उतना समाज का कोई भी वर्ग नहीं है ।

मेहता प्रकाश चन्द (1993) के अनुसार वर्ष 1991 की जनगणना के अनुसार भारत में लगभग 6.78 करोड़ आदिवासी निवास करते हैं, जो देश की कुल जनसंख्या का लगभग 8 प्रतिशत है । देश के लगभग 19 प्रतिशत भाग में आदिवासी निवास करते हैं। इस प्रकार देश के लगभग 1/5 भाग में लगगभ 500 आदिवासी समूह निवास करते हैं। स्वतंत्रता से पूर्व देश में आदिवासियों के विकास की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया, परन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् इनके समग्र विकास को मुख्य धारा से जोड़ने हेतु सक्रिय प्रयास किये गये हैं। आज आदिवासी विकास में केन्द्रीय सरकार/राज्य सरकार/स्वयं सेवी संस्थाऐं एवं व्यक्तिगत स्तर पर निरंतर प्रयास किये जा रही हैं कि इनकी स्वयं मूल सांस्कृति धरोहर भी सुरक्षित रह सके ।

विश्व की जनजातियों के वितरण की दृष्टि से अफ्रीका में सर्वाधिक जनजाति के व्यक्ति निवास करते हैं । इसके बाद भारत का स्थान आता है । हमारे देश की प्रमुख जनजाति गौंड, कोरकू, भील, औराव, मीणा, मुण्डा, नागा इत्यादि प्रमुख हैं ।

भारत में जम्मू, कश्मीर, पंजाब, हरियाणा राज्यों तथा केन्द्रीय शासित प्रदेश चंडीगढ़, दिल्ली, पांडेचरी को छोड़कर देश के सभी राज्यों में जनजातियॉ निवास करती हैं । जनसंख्या की दृष्टि से मध्यप्रदेश राज्य में सर्वाधिक आदिवासी निवास करते हैं । 2001 की जनगणना के अनुसार 8,43,26,204 आदिवासी जनसंख्या भारत में है, जबकि सबसे कम गोवा, दमन एवं द्वीप में आदिवासी निवास करते हैं।

भारत के आदिवासी – भारत में अनुसूचित आदिवासी समूहों की संख्या 700 से अधिक है।भारत में 1871 से लेकर 1941 तक हुई जनगणनाओं में आदिवासियों को अन्य धमों से अलग धर्म में गिना गया है, जैसे व्जीमत तमसपहपवद–1871, ऐबरिजनल 1881, फारेस्ट ट्राइब–1891, एनिमिस्ट–1901, एनिमिस्ट–1911, प्रिमिटिव–1921, ट्राइबल रिलिजन –1931,''ट्राइब–1941'' इत्यादि नामों से वर्णित किया गया है। हालांकि 1951 की जनगणना के बाद से आदिवासियों को हिन्दू धर्म मे गिनना शुरू कर दिया गया है।

भारत में आदिवासियों को हिंदू धर्म के दो वर्गों में अधिसूचित किया गया है– अनुसूचित जनजाति और अनुसूचित आदिम जनजाति। हिंदू विवाह अधिनियम, हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 2 (2) के अनुसार अनुसूचित जनजाति के सदस्यों पर लागू नहीं है। यदि ऐसा है, तो हिंदू मैरिज एक्ट की धारा 9 के तहत फैमिली कोर्ट द्वारा जारी किया गया निर्देश अपीलकर्ता पर लागू नहीं होता है। ''आदिवासी लोग हिन्दू धर्म का पालन करते हैं,और सारे त्यौहार मनाते है। इन पर मुसलमानों ने सदैव जुल्म किये जब भारत मुसलमान और अंग्रेजों का गुलाम था। उनकी प्रथागत जनजातीय आस्था के अनुसार विवाह और उत्तराधिकार से जुड़े

मामलों में सभी विशेषाधिकारों को बनाए रखने के लिए उनके जीवन का अपना तरीका भी है।

भारत की जनगणना 1951 के अनुसार आदिवासियों की संख्या 9,91,11,498 थी जो 2001 की जनगणना के अनुसार 12,43,26,240 हो गई। यह देश की जनसंख्या का 8.2 प्रतिशत है।

प्रजातीय –दृष्टि से इन समूहों में नीग्रिटो, प्रोटो–आस्ट्रेलायड और मंगोलायड तत्व मुख्यतः पाए जाते हैं, यद्यपि कतिपय नृतत्ववेत्ताओं ने नीग्रिटो तत्व के संबंध में शंकाएँ उपस्थित की हैं। भाषाशास्त्र की –दृष्टि से उन्हें आस्ट्रो–एशियाई, द्रविड़ और तिब्बती–चीनी–परिवारों की भाषाएँ बोलनेवाले समूहों में विभाजित किया जा सकता है। भौगोलिक –दृष्टि से आदिवासी भारत का विभाजन चार प्रमुख क्षेत्रों में किया जा सकता है : उत्तरपूर्वीय क्षेत्र, मध्य क्षेत्र, पश्चिमी क्षेत्र और दक्षिणी क्षेत्र।

आदिवासी परंपरा – प्राचीनकाल में आदिवासियों ने भारतीय परंपरा के विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया था और उनके रीति रिवाज और विश्वास आज भी हिंदू समाज में देखे जा सकते हैं, तथापि यह निश्चित है कि वे बहुत पहले ही भारतीय समाज और संस्कृति के विकास की प्रमुख धारा में मिल गए थे। आदिवासी समूह हिंदू समाज के अनेक महत्वपूर्ण पक्षों में समान है,कुछ समूहों में कई महत्वपूर्ण अंतर भी हैं। समसामयिक आर्थिक शक्तियों तथा सामाजिक प्रभावों के कारण भारतीय समाज के इन विभिन्न अंगों की दूरी अब कम हो चुकि है।

आदिवासियों की सांस्कृतिक भिन्नता को बनाए रखने में कई प्रयत्नों का योग रहा है। मनोवैज्ञानिक धरातल पर उनमें से अनेक में प्रबल ''जनजाति–भावना'' (ट्राइबल फीलिंग) है।

सामाजिक–सांस्कृतिक–धरातल पर उनकी संस्कृतियों के गठन में केंद्रीय महत्व है। असम के नागा आदिवासियों की नरमुंडप्राप्ति प्रथा बस्तर के मुरियों की घोटुल संस्था, टोडा समूह में बहुपतित्व आदि का उन समूहों की संस्कृति में बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान है। परंतु ये संस्थाएँ और प्रथाएँ भारतीय समाज की प्रमुख प्रवृत्तियों के अनुकूल नहीं हैं। आदिवासियों की संकलन–आखेटक–अर्थव्यवस्था तथा उससे कुछ अधिक विकसित अस्थिर और स्थिर कृषि की अर्थव्यवस्थाएँ अभी भी परंपरास्वीकृत प्रणाली द्वारा लाई जाती हैं। परंपरा का प्रभाव उनपर नए आर्थिक मूल्यों के प्रभाव की अपेक्षा अधिक है। धर्म के क्षेत्र में जीववाद, जीविवाद, पितृपूजा आदि हिंदू धर्म के और समीप लाते है।

आज के आदिवासी भारत में हिन्दू–संस्कृति–प्रभावों की –ष्टि से आदिवासियों के चार–धाम मुख्य धार्मिक स्थलों में से एक है।हिन्दू–संस्कृतियों का स्वीकरण इस मात्रा में कर लिया है कि अब वे केवल नाममात्र के लिए आदिवासी रह गए है।

आदिवासी कपड़े– आदिवासी वस्त्रों की पहचान 'लाल पाड़' वाली साड़ी, गमछे और चादर हैं। मोटी सूत से बनने वाले ये सफेद और लाल किनारों (लाल पाड़) वाले ये कपड़े सभी आदिवासी समुदायों द्वारा समान रूप से इस्तेमाल किए जाते हैं। 'लाल पाड़' दिखने में तो एक जैसा लगता है, पर वास्तव में इसका डिजाइन एक सा नहीं होता।

संस्कृति – सांस्कृतिक परम्परा पर विचार करने से पहले यह परिभाषित कर लेना उचित प्रतीत होता है कि संस्कृति क्या है? संस्कृति कर लेना उचित प्रतीत होता है कि संस्कृति और लोकतंत्र में क्या अंतर हैः जनजातीय संस्कृति और लोकसंस्कृति में भी कोई अंतर है या नहीं? विविध प्रकार की जीवन–शैलियों

और सामाजिक परमपराओं में संस्कृति के जो स्थानिक और देशिक रूप दिखलाई पड़ते हैं, उनके वर्गीकरण और एकीकरण के क्या आधार हो सकते हैं। संस्कृति की जो व्याख्या मानवशास्त्री देते हैं वह स्वयं संस्कृतिकर्मियों के लिए कितना अर्थपूर्ण है?

संस्कृति का सीधा– सादा अर्थ है परिष्कार या संस्कार। वस्तुतः परिमार्जित संस्कार ही संस्कृति है। इसके स्वरूप को स्पष्ट करते हुए डॉ. राम खेलावन पाण्डेय ने लिखा है कि" संस्कृति शब्द का प्रयोग अपेक्षाकृत अर्वाचीन है और अंग्रजी कल्चर का समनार्थसूचक। इसके संबंध की मान्यताओं में पर्याप्त मतभेद और विरोध हैं इसकी संबंध की मान्यताओं में पर्याप्त मतभेद और विरोध हैं इसकी सीमाएँ तक ओर धर्म का स्पर्श करती हैं तो दूसरी ओर साहित्य को अपने बाहूपाश में आबद्ध करती हैं। संस्कृ ति भौतिक साधनों के संचयन के साथ ही अध्यात्मिकता की गरिमा से मंडित होती है। वेश– भूषा, परंपरा, पूजा–विधान और सामाजिक रीति – विधान और सामाजिक रीति– नीति की विवेचना भी संस्कृति के अंतर्गत होती है। ..... प्रकृति की सीमाओं पर मनुष्य ने जो विजय चाही, उसका भौतिक स्वरूप सभ्यता, और आत्मिक, अध्यात्मिक अथवा मानसिक स्वरूप संस्कृति है। सभ्यता बाह्य– प्रकृति पर हमारी विजय का गर्वध्वज है और संस्कृ ति अंतः प्रकृति पर विजय–प्राप्ति की सिद्धि।"

संस्कृति की ऐसी परिभाषाएँ अनेक विद्वानों ने उपलब्ध कराई हैं जिनमें उसके इस व उस पक्ष या कई पक्षों का समन्वय स्थापित करें के चेष्टाएँ झलकती हैं। किन्तु ऐसी परिभाषाएँ संस्कृति का खंडित अध्ययन करती हैं जबकि पिछली दो शताब्दियों में ज्ञान के विविध क्षेत्रों में कई नई परिभाषाएँ विकसित हुई हैं, जिनमें एक यह भी है कि मनुष्य संस्कृति निर्माता प्राणी है। संस्कृति की

व्याख्या न तो केवल अनुवांशिक जैविकता के आधार पर की जा सकती है, न सिर्फ सामाजिकता के आधार पर। इसी तरह उसे सभ्यता के अलग– अलग खानों में बाँटकर भी नहीं समझा जा सकता।

टायलर ने संस्कृति की जो व्यापक संकल्पना प्रस्तावित की है, उसमें कई मतभेदों का समाहार देखा जा सकता है। टायलर के आनुसर संस्कृति "वह जटिल ईकाई है जिसके अंतर्गत और अभ्यास सम्मिलित हैं जिन्हें मनुष्य समाज के सदस्य के रूप में अर्जित करता है।" इस तरह टायलर ने यह प्रतिपादित किया है कि संस्कृति सामाजिक परंपरा से अर्जित चिंतन, अनुभव और व्यवहार – मानसिक और क्रियात्मक व्यवहार की समस्त रीतियों की समष्टि है। यही संकल्पना परवर्ती मानव वैज्ञानिकों की कार्यप्रणाली का आधार बनी है। मैलिनोव्सकी की परिभाषा भी इससे मिलती जुलती है कि "संस्कृति के अंतर्गत वंशगत शिल्प– तथ्यों, वस्तुओं, तकनीकी प्रक्रियाओं, धारणाओं, अभ्यासों तथा मूल्यों का समावेश हो जाता है।" यही बात लिंटन, क्लकहॉन, क्रोबर आदि की परिभाषाओं में भी व्यक्त होती है।

वस्तुतः संस्कृति विषयक, चिंतन का क्षेत्र विभिन्न मतवादों से भरापूरा क्षेत्र है। मतान्तरों की परीक्षा का स्वतंत्र अध्ययन इस पुस्तक की सीमाओं में अभीष्ट नहीं है। इस संबंध में डॉ. दिनेश्वर प्रसाद की पुस्तक लोक साहित्य में इस विषय के विस्तार में जाकर विवेचन सुलभ और द्रष्टब्या है।

निष्पत्ति के रूप में यह कहा जा सकता है कि " विभिन्न संस्कृ तियों की तुलनात्मक सांख्यिकी यह बतलाती है कि मानव जातियों एक ही वास्तविकता का मूल्यांकन अलग – अलग रूपों में करती हैं। सुन्दर और कुरूप , शिव और अशिव, सार्थक और

निरर्थक आदि धारणाओं और मूल्यों के संबंध में उनमें पर्याप्त मतभेद हैं। ..... भारतीय दस दिशाओं की कल्पना करते छह की। यूरोप में लाल रंग शोक का प्रतिक है' किन्तु प्लेन्स इंडियनों में विजय और उल्लास का। चीन में श्वेत रंग शोक का प्रतीक है जबकि चेरोकी जाति में दक्षिण दिशा का। भिन्नता की यह स्थिति कला संबंधी धारणाओं से लेकर में राग और लय दोनों महत्त्वपूर्ण हैं, लेकिन बहूत सीअफ्रीकी संस्कृति एकापत्नित्व को आदर्श मानती है और इस्लामी संस्कृति बहूपत्नित्व को, जबकि भारत की कुछ जातियों में बहूपत्नित्व आदर्श भी है व्यवहार भी। इस तरह प्रतिमानों की सार्थकता स्थानीय या क्षेत्रीय होती है और उसके संबंध में हर संस्कृति के अपने तर्क होते हैं जिन्हें वह अकाट्य मानती है।"

संस्कृति के अध्येताओं के लिए सांस्कृतिक सापेक्षतावाद के अनेक अभिप्राय हो जाते हैं। इसी तर्क के आधार पर यह माना जाता है कि न तो किसी संस्कृति को श्रेष्ठ कहा जा सकता है और न हीन, न तो महत्त्वपूर्ण और न महत्त्वरहित। जब हम कुछ जातियों को आदिम कहते हैं तो संभवतः हमारा अभिप्राय यही होता है कि वे हमारे समकालीन जीवन की पूर्ववर्ती स्थिती के उदारहण हैं। लेकिन यह धारणा भी तथ्याधारित नहीं ठहरती। वस्तुतः विश्व के मानचित्र पर अलग–अलग भौगोलिक परिवेश में इतनी किस्म की संस्कृतियाँ वि।मान हैं, रही हैं की कहना पड़ता है कि हर समाज की संस्कृति उसका सांचा है और सामान्य संस्कृति के लक्षणों के निर्धारण में किसी भी एक संस्कृति का सांचा सम्पूर्ण नहीं हो पाता।

भगोरिया के समय धार, झाबुआ, खरगोन आदि क्षेत्रों के हाट–बाजार मेले का रूप ले लेते हैं और हर तरफ फागुन और

प्यार का रंग बिखरा नजर आता है। इसकी विशेष बात यह है कि इस पर्व में आदिवासी युवक युवती अपने जीवन साथी का चुनाव करने का अवसर मिलता है भगोरिया पर्व मनाते है क्षेत्र के किसान,भील आदिवासी संस्कृति संस्कारों से लैस होकर पर्व मनाते हैं !

भगोरिया हाट–बाजारों में युवक–युवती बेहद सजधज कर अपने भावी जीवनसाथी को ढूँढने आते हैं। इनमें आपसी रजामंदी जाहिर करने का तरीका भी बेहद निराला होता है। सबसे पहले लड़का लड़की को पानखाने के लिए देता है। यदि लड़की पान खा ले तो हाँ समझी जाती है। इसके बाद लड़का लड़की को लेकर भगोरिया हाट से भाग जाता है !

इसी प्रकार मैदान में लोग डेरा लगाते हैं हाट के दिन परिवार के बुजुर्ग डेरे में रहते हैं लेकिन अविवाहित युवक युक्तियों हाथ में गुलाब लेकर निकलते हैं कोई युवक जब अपनी पसंद की युक्ति के माथे पर गुलाल लगा देता है और लड़की उत्तर में गुलाल लड़के के माथे पर लगा देती है तो यह समझा जाता है कि दोनों एक दूसरे को जीवनसाथी बनाना चाहते हैं

पूर्व स्वीकृति की मोहर तब लग जाती है जब लड़की लड़के के हाथ से (मजुर गुड़ और भांग)खा लेती है यदि लड़की को रिश्ता मंजूर नहीं होता तो वह लड़के के माथे पर गुलाल नहीं लगाती इसी तरह यदि लड़का लड़की के गाल पर गुलाबी रंग लगा दे और जवाब में लड़की भी लड़के के गाल पर गुलाबी रंग मल दे तो भी रिश्ता तय माना जाता है।

"भगोरिया", "चौदस", "गलबजी", "घट स्थापना दिवस", "दिवासा–नवाई " त्योहार, "बाबदेव पूजा" और "पाटला पूजन" "पिथोरा–इंद" आदिवासी जनजाति के मुख्य त्योहार और प्रथाए

हैं। वे प्रमुख हिंदू त्योहार जैसे "होली", "दिवाली" और "राखी" भी खुशी के साथ मनाते हैं।

मध्यप्रदेश में आदिवासी – मध्यप्रदेश जैसा कि नाम से ही स्पष्ट होता है, भारत के मध्य में स्थित है । इसकी सीमायें उत्तर में उत्तरप्रदेश, पूर्व में बिहार, छत्तीसगढ़, दक्षिण में महाराष्ट्र एवं पश्चिम में गुजरात एवं राजस्थान आदि राज्यों से लगी हुई है । यों कहा जा सकता है कि यह राज्य चंद उन राज्यों में से हैं, जिसकी भौगोलिक सीमायें पांच राज्यों को छूती है । यह पूर्ण रूप से स्थल रूढ़ है तथा कहीं से भी अन्तर्राष्ट्रीय सीमा या समुद्र को नहीं छूती है ।

भारत में लगभग 8 करोड़ आदिवासी हैं । देश की संपूर्ण आदिवासी आबादी का एक चौथाई मध्यप्रदेश में निवास करता है । 2001 की जनगणना में मध्यप्रदेश में 122,33,474 आदिवासी जनसंख्या है जो कि कुल जनसंख्या का 20.3 प्रतिशत है ।

मध्यप्रदेश की जनजातीय एवं कुल जनसंख्या

वर्ष	कुल जनसंख्या	जनजातीय	प्रतिशत
1961	3,23,12,000	66,78,410	20.63
1971	4,16,54,119	83,87,403	20.14
1981	5,21,78,844	1,19,87,031	22.97
1991	6,61,81,170	1,53,99,034	23.27
2001	6,03,48,023	1,22,33,474	20.00

मध्यप्रदेश का क्षेत्रफल 30,82,245 वर्ग कि.मी. है । मध्यप्रदेश में 48 जिले हैं, 490 विकासखण्ड तथा 250 तहसीलें हैं । मध्यप्रदेश एक ऐसा राज्य है, जहॉ आदिम जनजातीय परम्पराओं का आगार

है । मध्यप्रदेश में करीब 46 जनजातियॉ निवास करती हैं। वे प्रदेश के सुदूर इलाकों में बसी हुई हैं । इस प्रदेश की सबसे बड़ी जनजाति गौड़ है । इसके अतिरिक्त प्रमुख जनजातियॉ हैं कोरकू, मुडिया, भील, उराव, शहरिया, हल्का, भतरा, कमार, कोरवा, कोल, डोरला, कॅवर, धनका, बैगा है।

मध्यप्रदेश में जनजातीय क्षेत्र – 1 नवम्बर 2000 में मध्यप्रदेश के विभाजन के पश्चात् जनजातीय क्षेत्रों के स्वरूपों एवं संख्या में परिवर्तन होना स्वाभाविक है । मध्यप्रदेश के पश्चिमी क्षेत्र में पहाड़ी क्षेत्र कम है तथा दक्षिण मध्य क्षेत्र में समतल भूमि के साथ पर्वतीय क्षेत्र अधिक है। अतः अस्थायी कृषि तथा वन उपज का संकलन इस क्षेत्र के जनजातियों के जीविकोपार्जन का मुख्य साधन है । उसकी तुलना में पश्चिमी क्षेत्र के भील और भिलाला जनजातियों में स्थायी खेती अधिक पायी जाती है ।

म.प्र. के 48 जिलों में से केवल 2 सागर व दमोह जिले ऐसे हैं जिनमें जनजातियों का निवास बहुत कम है । प्रदेश के अन्य जिलों में न्यूनतम जनजातीय जनसंख्या 10 प्रतिशत और अधिकतम 85 प्रतिशत है । पश्चिमी क्षेत्र रतलाम, खरगोन, खंडवा को छोड़कर सघन जनसंख्या के क्षेत्र मुख्यतः झाबुआ और धार है । इनमें भीलों के साथ भिलाला बरेला, पटेलिया जनजातियॉ भी निवास करती हैं। उत्तर पूर्वी क्षेत्र में शहडोल, सीधी, मण्डला और बालाघाट जिले हैं, जो गोड प्रधान हैं। दक्षिण मध्य क्षेत्र के होशंगाबाद, छिन्दवाड़ा, बैतूल, सिवनी जिलों में जनजातीय संख्या, कुल की 30 प्रतिशत है। यहॉ के जनजातीय संख्यिकीय विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि प्रायः सभी जिलों में विगत वर्षों में जनजातीय जनसंख्या में वृद्धि अवलोकित हो रही है ।

मध्य प्रदेश की जनजातियाँ – मध्य प्रदेश में एक अच्छी खासी जनसंख्या जनजातीय है। इस प्रदेश की जनसंख्या का लगभग २०.१०: जनजातीय लोग हैं। (लगभग १.५३ करोड़, २०११ की जनगणना के अनुसार)। मध्य प्रदेश में 46 अनुसूचित जनजातियाँ हैं

भील मध्य भारत की एक जनजाति का नाम है। भील जनजाति भारत की सर्वाधिक विस्तृत क्षेत्र में फैली हुई जनजाति है। प्राचीन समय में यह लोग मिश्र से लेकर लंका तक फैले हुए थे ख्5,। भील जनजाति के लोग भील भाषा बोलते है। भील जनजाति को भारत का बहादुर धनुष पुरुष कहा जाता है,भारत के प्राचीनतम जनसमूहों में से एक भीलों की गणना पुरातन काल में राजवंशों में की जाती थी, जो विहिल वंश के नाम से प्रसिद्ध था। इस वंश का शासन पहाड़ी इलाकों में था। त्रिपुरा और पाकिस्तान के सिन्ध के थारपरकर जिले में भी बसे हुये हैं। भील जनजाति भारत समेत पाकिस्तान तक विस्तृत रूप से फैली हुई है। प्राचीन समय में भील जनजाति का शासन शिवी जनपद जिसे वर्तमान में मेवाड़ कहते है, स्थापित था, जब सिकंदर ने मिनांडर के जरिए भारत पर आक्रमण किया तब पंजाब और शिवी जनपद के भील शासकों ने विश्वविजेता सिकंदर को भारत में प्रवेश नहीं करने दिया, सिकंदर को वापस जाना पड़ा।

1.3 जनजाति का अर्थ एवं परिभाषा :– स्थानीय आदिम समूहों के किसी भी संग्रह को जो एक सामान्य क्षेत्र में रहता हो एक सामन्य भाषा बोलता हो और एक सामान्य संस्कृति का अनुसरण, करता हो जनजाति कहते हैं।

जनजाति की विशेषताएं :–

विद्वानों ने जनजातियों की निम्नलिखित विशेषताएं बताई है –

1. **सामान्य भाषा :–** एक जनजाति के लोग सामान्य भाषा का प्रयोग करते है जिसके माध्यम से वे अपने विचारों का स्पष्टीकरण करते है।

2. **सामान्य संस्कृति :–** एक जनजाति की सामान्य संस्कृति होती है जिसके अनुसार उनके रीति–रिवाज प्रथा, कानून, नियम, खान–पान, मूल्य, विश्वास एवं लोकाचारों आदि समानता पाई जाती है।

3. **सामान्य भूभाग :–** एक जनजाति की प्रमुख विशेषता यह है कि यह एक निश्चित भूभाग में रहती है किन्तु कुछ विद्वानों के मत में जनजाति की यह विशेषता आवश्यक नहीं है वह घुमन्तू समाज भी हो सकता है।

4. **एक नाम :–** प्रत्येक जनजाति का कोई न कोई नाम आवश्यक होता है जो उस जनजाति की पहचान होता है।

5. **अन्तर्विवाह :–** जनजाति की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह भी है कि जनजाति के सदस्य सामान्यतया अपनी जनजाति में विवाह संबंध स्थापित करते हैं अपवाद रूप में कोई–कोई जनजातियां बर्हिविवाह भी हो सकती है।

6. **सामान्य निषेध :–** मजूमदार ने जनजाति की यह भी विशेषता बताई है कि एक जनजाति के सदस्य विवाह, व्यवसाय, खान–पान व उ।ोग आदि के विषय में सामान्य निषेधों का पालन करते हैं।

7. **राजनैतिक संगठन :–** प्रत्येक जनजाति का एक निश्चित राजनैतिक संगठन होता है समाज का कोई प्रमुख अथवा वयोवृद्ध व्यक्ति उनका मुखिया होता है जिसकी आज्ञा का पालन करना सभी का कर्तव्य होता है।

8. **आर्थिक आत्म–निर्भरता :–** जनजातियां के खान–पान का आधार फल–फूल, जंगली जानवारों का शिकार अथवा पशुओं से प्राप्त दूध एवं कृषि आदि होता है।

9. **विस्तृत आकार :–** जनजाति की एक विशेषता यह भी है कि जनजातियां कई परिवार, गोत्र, भ्रातृदल व मोइटी आदि से युक्त होती है इनमें वंश समूह होते है इसलिए इनका आकार संगठित होता हैं

1.4 मध्य प्रदेश की प्रमुख जनजातियॉ :–

1.4.1 भील एवं भिलाला जनजाति :– भील एवं भिलाला जनसंख्या के दृष्टिकोण से मध्यप्रदेश की दूसरी सबसे बडी जनजाति है इन दोनें की प्रजातीय विषेशताएं तथा सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक संगठन में काफी भिन्न्ता है लेकिन राज्य की अनुसूचित जातियों में इन्हे एक ही वर्ग में रखा जाता है।

1.4.2 भील जनजाति :– विभिन्न जनगणनाओं में भील और भिलाला जनजातियों की जनसंख्या को संयुक्त रूप से ही स्पष्ट किया गया है सन् 1991 की जनगणना के आधार पर भील जनजाति की जनसंख्या लगभग 17.5 लाख थी जो वर्तमान में लगभग 23 लाख है।

1.4.3. गौंड जनजाति :– मध्यप्रदेश में इस जनजाति का निवास क्षेत्र मुख्य रूप से मंडला, छिदवाडा, शहडोल, सिवनी, बैतूल, बालाघाट, जबलपुर, दमोह, सीधी, रायस ने होशंगाबाद, नरसिंहपुर, सागर, पन्ना तथा सतना आदि जिलों में इनमें से प्रत्येक जिले में गोंड जनजाति की कोई न कोई शाखा का काफी हिस्सा निवास करता है।

यदि हम गोड़ा की शारीरिक रचना को देखें तो अधिकांश प्रजातियों विषेशताओं निमिटों स्कन्ध से मिलती–जुलती है सॉवला या काला रंग कुछ भारी और चौडी नाम चपटा माथा चौडा मुह गोल आकार का सिर चौडे नथुने, काली ऑखें तथा कडे बाल इस जनजाति की मुख्य शारीरिक विषेशताएं है अधिकांश गोड़ा का भारीर सुगठित होता है। स्वभाव से यह लोग मेहनती, सच्चे, और विश्वसनीय होते है।

1.4.3 कोरकू जनजाति :– मध्यप्रदेश की जनजातियों में आर्थिक और शौक्षणिक आधार पर कोरकू जनजाति एक पिछडी हुई जनजाति है सन् 1981 में मध्यप्रदेश की जनजातियों की जनगणना के समय इस जनजाति की कुल जनसंख्या 66.78 हजार थी। पिछले 20 वर्षों में विभिन्न जनजातियों की जनसंख्या में जिस दर से वृद्धि हुई है। उसके आधार पर ऐसा अनुमान है कि वर्तमान में इस जनजाति की जनसंख्या लगभग 94.16 हजार है। यह जनजाति मुख्य रूप से मध्यप्रदेश के बैतूल, हरदा, खण्डवा, रायसेन, तथा सीहोर, जिलों के केन्द्रित हैं।

आदिवासी जनसंख्या

आदिवासी समाज भारतीय समाज की एक महत्वपूर्ण कडी है किन्तु मानव समाज की उपेक्षित संस्कृति का प्रतीक है जबकि आदिवासियों की संस्कृति परम्पराओं तथा रीति–रिवाज पर नजर डालें तो पायेगें कि विभिन्नताओं के देश में इनकी अहम् भूमिका है।

मानव समाज करोडों वर्षों की विकास प्रक्रिया से गुजरता हुआ सभ्याता की वर्तमान अवस्था में पहुंचा है प्रारंभिक अवस्था पर नजर डाले तो मानव का जंगली स्वरूप परिलक्षित होता है कंदमूल, फल–फूल व शिकार द्वारा भरण–पोषण कर अपना जीवन यापन करता हुआ मानव जंगलों, पहाडों में रहता था जनजातियों आज भी उसी संस्कृति को संजोये हुये पहाडों एवं जंगलों के बीच निवार कर रही है वास्तव में एक समूह के रूप में इनकों परिभाषित कर सकते हैं ऐसा समूह जिसका निवास स्थान, नस्ल, रंग, भाषा, संस्कृति आदि समाज है।

''एक जनजाति समाज नाम धारण करने वाले परिवारों का संकलन है जो समाज बोली बोलते हैं एक ही भूखण्ड पर अधिकार करने का दावा कर रहें हैं अथवा दखल रखते हैं तथा जो साधारणतया अंतर्विवाही न हो यद्यपि मूल रूप से चाहे वैसे रह रहे हो (इम्पीरियल गजेटियर आफ इंडिया)

इसी तरह से डी.एम. मजूमदार महोदय ने आदिवासियों के संबंध में अपने विचार इस प्रकार से बताये –

''एक जनजाति क्षेत्रीय संबंध युक्त तथा अंतर्विवाही सामाजिक समूह है जिसके कार्यों में कोई विषेशज्ञता नहीं होती है जो जनजातियों आदिवासियों द्वारा शासित वंशुक्रम अथवा अन्य बोली से जुडे हुए अन्य जनजातियों अथवा जातियों से सामाजिक धूरी को मान्यताओं देने वाले अपने प्रति किसी प्रकार की सामाजिक असमानताओं को नहीं जोडते हैं जैसा कि जाति संरचना में होता है जो जनजातियां परम्पराओं में विश्वास रखती है तथा प्रयासों का पालन करती है। विदेशी स्त्रोतों के विचारों के प्रकृतिकरण में अनुदारता तथा सबसे अधिक सजातियता और क्षेत्रीय अखण्डता में विश्वास करते हैं।

अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों की जनसंख्या का घनत्व

एक वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में जितने व्यक्ति रहते हैं वह जनसंख्या का घनत्व कहलाता है, जनसंख्या के घनत्व का आकलन करने के लिए देश के कुल जनसंख्या में उस देश के कुल भूभाग का भाग दिया गया है भाग फल उस देश की जनसंख्या का घनत्व कहलाता है भारत में जनसंख्या का घनत्व 1901 में 72 व्यक्ति, 1961 में 173, 1989 में 216 और 1991 में 267 व्यक्ति प्रतिवर्ग किलोमीटर पाया गया है। देश में सर्वाधिक जनसंख्या का घनत्व दिल्ली में 7219 है दूसरे स्थान पर चंडीगढ का जनसंख्या धनत्व 5620 है राज्यों में सबसे अधिक जनसंख्या का घनत्व पश्चिमी बंगाल में 766 व्यक्ति, केरल में 747 उत्तप्रदेश में 416 राजस्थान में 128 है राज्यों में सबसे कम जनसंख्या का घनत्व अरूणाचल में 10 व्यक्ति मिजोरम में 33 नागालैण्ड में 71 व्यक्ति है।

1.5.2 अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों की जनसंख्या :–

1991 की जनगणना अनुसार देश में अनुसूचित जातियों की जनसंख्या लगभग 13.82 करोड है तथा अनुसूचित जनजातियों

की जनसंख्या 6.78 करोड है यह देश की कुल जनसंख्या का लगभग एक चौथाई भाग है सर्वाधिक अनुसूचित जातियॉ 2.34 करोड उत्तरप्रदेश में निवास करती है सर्वाधिक अनुसूचित जनजातियॉ 1.79 करोड मध्यप्रदेश में निवास करती हैं।

1.5.3 आदिवासी जनसंख्या में वृद्धि :– एक निश्चित अवधि में किसी जनसंख्या में होने वाला परिवर्तन ही उसकी वृद्धि का सूचक है जो तीन महत्वपूर्ण प्रक्रियाओं–जन्म, मृत्यु तथा स्थानांतरण पर आधारित है इसी वृद्धि पर क्षेत्र का आर्थिक एवं सामाजिक विकास निर्धारित होता है। इसी तारतम्य में सीधी की आदिवासी जनसंख्या में अत्यधिक तीव्रगति से वृद्धि हुई जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव संसाधनों पर पडा है।

1.6 जनजाति महिला शिक्षा :– महिला शिक्षा स्वतंत्रता के पश्चात सरकारी प्रयत्नो के फलस्वरूप लाभकारी सिद्ध हुई परन्तु जनजाति महिलाओं में इसका असर न के बराबर रहा मघ्यप्रदेश में देश की 46 जनजातिया पाई जाती है सन् 1991 की जनगणना के अनुसार इसकी कुल जनसंख्या 154 लाख हो गयी।

निःसन्देह शिक्षा ने नारी में नया जीवन भरा है शिक्षा–ज्ञान के आलोक में नारी ने स्वयं को नई दृष्टि से निहारा है परन्तु ज्ञान का यह मार्ग आसन नही है पुरूष सत्तात्मक समाज नारी को इस ज्ञान के मार्ग पर चलने से तो ना रोक सका लेकिन उसकी भृकुटियॉ भी तनी हुई है उसने शिक्षित नारी से बदला लेने का नया तरीका इजाद कर लिया है वह नारी को उसके शिक्षित होने की सजा देने पर तुला हुआ हैं। वह अपनी सारी जिम्मेदारी को जो कभी उसकी हुआ करती थी स्त्री पर डालने लगा है बच्चो को पढाने से लेकर बाहरी काम आदि भी नारी नर डालते है

इसलिए नारी शिक्षित है तो वह सारे कार्यो को आसानी से कर पाती है ।

1.7 अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और पिछडे वर्गो के लिए कार्यरत गैर सरकारी संस्थाओ को सहायता :– उद्देश्य :– अनुसूचित जातियों की सामाजिक– आर्थिक स्थितियो में सुधार करने और स्वयं उनके द्वारा अर्जित करने वाली गतिविधियों संचालित करने में उन्हे उक्ष करने या हॉस्टल, आवासीय स्कूल, कला एवं शिल्प केन्द्र, शिशु–सदन केन्द्र खोलने, चिकित्सा सुविधाएं उपलब्ध कराने और सरकारी कार्यकर्ता के प्रति उनमें जागरूकता फैलाने जैसे कार्यक्रमों के माध्यम से रोजगार उपलब्ध कराने के लिए सवैच्छिक संगठनो को शामिल किया जाना ।

1. अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अन्य पिदडा वर्ग के लोगों की दक्षता में सुधार और उन्हे रोजगार उपलब्ध कराने की दिशा में केन्द्रो की स्थापना और सेवाओ में विस्तार के लिए सहायता करना ।
2. अस्पतालों/सचल वाहनो के जरिये चिकित्सा सुविधा ।
3. सरकारी कार्यक्रमों के प्रति जागरूकता पैदा करना अनुसूचित जातियों की मदद करना।
4. न्यायिक/प्रशासनिक फोरम में शिकायत दर्ज कराने पर सुनवाई में सहायता करना।
5. विविध परीक्षाओ की तैयारी के लिए कोचिंग केन्द्र की व्यवस्था कराना।
6. दक्षता हांसिल करने के उपयोग में आने वाली समाग्री की व्यवस्था और जागरूकता पैदा करना ।

7. लेखन समाग्री अतिरिक्त खर्च और यात्रा–भत्ता महगाई भत्ता का भुगतान।

1.8 जनजातियों (आदिवासियों) की आर्थिक एवं सामाजिक समस्याएं (म.प्र.के संदर्भ में) :–

हमको यह जानना होगा कि भारत में जनजातिय लोगो की संख्या विश्व में सबसे अधिक है सन् 2001 की जनगणना के अनुसार देश में लगभग 9 करोड से अधिक जनजातिय लोगो की संख्या थी जो कुल अबादी का 8.8 प्रतिशत थी जनजातिय आबादी देश के लगभग सभी हिस्सो में मौजूद है लेकिन आधी से अधिक यानि 55 प्रतिशत जनजातिय आबादी चार राज्यो मप्र. उडीसा, बिहार एवं राजस्थान में केन्द्रित है दूसरी और हरियाणा, जम्मूक मीर, पंजाब, चंडीगढ और दिल्ली में जनजातिय आबादी नहीं है म.प्र. में जनजातियो की जनसंख्या 1.54 लाख है जो प्रदेश की कुल जनसंख्या का 23.27 प्रतिशत है तथा भारत की कुल जनजातियो की जनसंख्या का 17.11 प्रतिशत में निवास करता है। प्रदेश के कुल भौगोलिक क्षेत्र 4.43 लाख किमी का 40.63 प्रतिशत क्षेत्र आदिवासी हैं, अर्थात 1.80 लाख वर्ग किमी है। 1

भारत की जनजातियो की समस्या परिवार के लिए दो समय भरपेट भोजन की तन ढ़कने के लिए वस्त्रो की और सिर छुपाने के लिए धर की वह आज भी ऐसे दूरस्थ पहाड़ी और वन प्रातारो में रहते है। जहॉ पहुंच सुगम नही है यही नही उनकी जंगल ओर जमीन घट जाने से जनजातिय लोग और अधिक निर्धन, पराश्रित और मजबूर बनते जा रहें हैं, सच ही जनजातीय लोगों का शोषण भी बढ़ रहा है, अवोध अशिक्षित होने के कारण अपने पक्ष में बनाये गये कानून को भी नही समझ पाते हैं। वर्तमान में हमें जनजातियों के तीन मिलते हैं, प्रथम वे जनजातीय लोग हैं जो

उन्नत बीज, खा।, नवीन तकनीकि का प्रयोग करते हुये वैज्ञानिक कृषि करते हैं इनका शहरी अर्थव्यवस्था में प्रवेश हो चुका है अधिकांश पढ़े लिखे जनजातीय परिवार इस आर्थिक स्तर का प्रतिनिधित्व करते हैं।

यह सत्य है कि जनजातीय समुदाय की समस्याओं की उपेक्षा कर 9 करोड़ से अधिक जनजातीय लोगों को पीछे फेककर राष्ट्रीय उन्नति का सपना देखना अनुचित ही है। आजादी मिलने से आधी सदी के बाद भी जनजातियों की स्थित में कोई विशेष फर्क नही आया है ऐसा नहीं कि सारी योजनाऐं अच्छे इरादे से लागू नहीं की गई है।

आदिवासी समाज को विस्थापना, विघटन एवं विभिन्नता से रोकने के लिये आवश्यक है कि गांव के स्तर पर शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास, रोजगार, परिवहन, संचार, सडक, ब्याज रहित ऋण सुविधा जुटाकर आत्म निर्भर बनाना होगा। यह प्रयास स्वाधीन सरकार द्वारा विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के द्वारा प्राथमिकता के आधार पर जनजाति लोगों के आर्थिक एवं सामाजिक विकास के लिए निरंतर जारी है।

यहॉ यह कहना अनुचित न होगा कि इन कल्याणकारी योजनाओं के सार्थक परिणाम सामने आयें हैं और आ रहें हैं, परन्तु कल्याण कार्यक्रम बड़ी मात्रा में सफलता एवं अप्रभावकारी रहने के पीछे विभिन्न मूल्याकन रिपोर्ट एवं कुछ विश्लेषित अध्ययन से स्पष्ट है कि नवीनताओं को ग्रहण करने में जनजाति स्वयं बाधक बनी हुई है।

दूसरी ज्वलंत समस्या की ओर किसी का ध्यान नही है, वह यह कि मध्यप्रदेश की जनजातीय जनसंख्या में 5.9 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या की वृद्धि दर का होना सबके जीवन यापन के नियम

के अनुसार किसी संतति की अधिक वृद्धिदर 3 से 4 प्रतिशत के बीच होती है, निःसंदेह विष्फोटक स्थिति है, ऐसी परिस्थित में जनजातीय समुदायों को सशक्त करने में सभी प्रयास योजनायें एवं विनयोग अर्थहीन हो जाते हैं, तथा जनसंख्या के गुणात्मक पहलू का भी उद्यपतन अनिवार्य हो जाता है। परिवार नियोजन जिसमें हम सफल नहीं हुये हैं इसका कारण ग्रामीण इलाकों में 8333 की आबादी पर एवं चिकित्सक है, आदिवासियों साक्षरता का अभाव चिंता का विषय है, वर्तमान पुरूषों की साक्षरता 25.9 प्रतिशत और महिलाओं में सिर्फ 14.5 प्रतिशत है, काम आसान नहीं है। साक्षरता एवं प्रारंभ्भिक शिक्षा को मौलिक अधिकार मात्र बना देने से रास्ता नही निकलेगा उससे कोट के दरवाजे भले ही और खुल जायें आवश्यक है, दृढ राजनीतिक संकल्प की प्रशासनिक निपुणता क्षमता और सहानुभूति पूर्व रवैये के साथ ही जनजाति लोगो का पूरा विश्वास चाहिए कि अमुख विकास कार्यक्रम हमारा है, और इससे हमारा सामाजिक एवं आर्थिक स्तर ऊचा होगा। समय अब तक कि उपलब्धियों और सामने खडी चुनौतियों को पहचानने परखने और जनजाति लोगों का दीर्घकालीन सुदृढ विकास करने का है।

आदिवासी विकास वर्तमान संदर्भ में बहुत ही महत्वपूर्ण एवं संवेदनशील विषय है ब्रिटिश शासन में इसका महत्व कुछ भी नहीं था। स्वतंत्रता के पश्चात लोक कल्याणकारी राज्य अवधारा के साथ आदिवासी क्षेत्रों के समग्र विकास का महत्व बहुत बढ गया। संसदीय शासन प्रणाली में जन प्रतिनिधि उसके क्षेत्र का पूर्ण विकास चाहता है। संवैधानिक आधार पर भी आदिवासी विकास को प्राथमिकता दी गई है। 2

मध्यप्रदेश में जनजातिय विकास योजनाओं का मूल्यांकन :– मध्यप्रदेश सरकार द्वारा प्रदेश के विभिन्न जिलों में निर्धरता रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले अनुसूचित जनजाति के बेरोजगार सदस्यों के आर्थिक विकास हेतु उनकी योग्यता एवं क्षमता के अनुसार स्वयं का रोजगार स्थापित करने के लिए मध्यप्रदेश अंत्यावसायी सहकारी विकास निगम मर्यादित भोपाल के माध्यम से अनेक योजनायें अनेक योजनायें संचालित की जा

रही है मुख्यतः स्वाबलंबन योजना, वसुन्धरा योजना, पवनपुत्र योजना, मधुवन डेयरी योजना, वनजा योजना, निर्मित योजना, फोटो कोपियर, एस.टी.डी, पी.सी.ओ., नौकायान योजना, स्टाम्प बेन्डर योजना, ट्रेक्टर ट्राली योजना, धनवन्तरि योजना आदि है।

मध्यप्रदेश आदिवासी प्रमुख राज्य है, भारतीय संविधान के अनुच्छेद 342 के उपखण्ड (1) में वर्णित अनेक जनजातियां इस प्रदेश में निवास करती है वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार म. प्र. की कुल जनसंख्या 6.348 करोड है जिसमें 12.233 लाख आदिवासी है जो प्रदेश की कुल जनसंख्या का 2.27 प्रतिशत है। इस प्रकार म.प्र. भारत में आदिवासी के संदर्भ में

राष्ट्रीय स्तर पर महत्वपूर्ण स्थान रखता है। आदिवासियों की जनसंख्या की दृष्टि से राज्य का राष्ट्रीय स्तर पर 13 वां स्थान है देश के कुल 35 राज्य केन्द्र शासित राज्य में आदिवासियों की जनसंख्या के आधार पर केन्द्र शासित प्रदेश लक्षद्वीप का सर्वोपरि स्थान है जहाँ 94.51 प्रतिशत आदिवासी निवास करते हैं इसके पश्चात क्रमशः मिजोरम 94.46 प्रतिशत,

नागालैण्ड 85.15 प्रतिशत, मेघालय 85.94 प्रतिशत अरूणाचल प्रदेश 64.22 प्रतिशत संघ शासित दादरा नागर हवेली 62.24 प्रतिशत मणिपुर, 34.20 प्रतिशत छत्तीसगढ 31.76 प्रतिशत त्रिपुरा

31.05 प्रतिशत झारखण्ड 26.30 प्रतिशत उडीसा आदिवासी जनसंख्या निवास करती है। सबसे न्यूनतम जनसंख्या वाला राज्य उ.प्र. है। जहाँ मात्र 0.06 प्रतिशत आदिवासी निवास करते हैं आदिवासी संस्कृति की एक सबसे बडी विशेषता यह है कि ये जनजातिय प्रायः वन या पर्वतीय क्षेत्रों में निवास करती है अतः मैदानी क्षेत्रों मरूस्थली एवं शहरी क्षेत्रों में इनकी संख्या न्यून या शून्य होती है जंगल या जमीन के बिना आदिवासियों की कल्पना संभव नहीं है क्योंकि वनों में उन्मुक्त जीवन यापन करने वाले आदिवासियों का मुख्य व्यवसाय कृषि एवं वनोपज ही है।

मध्यप्रदेश में आदिवासियों का मुख्य व्यवसाय कृषि एवं वनोपज रहा है लेकिन भूमि संबंधी सुधारों के कारण आदिवासियों का भूमि से पृथकीकरण हो गया अज्ञानता एवं अशिक्षा के कारण इनकी कृषि भूमि या तो सरकार ने सार्वजनिक उपयोग के लिए अधिगृहित करली अथवा धनाढ्य वर्ग ने सस्ते दामों में कृषि भूमि को उ।ोगों के लिए क्रय कर लिया।

मध्यप्रदेश सरकार ने आदिवासियों की दयनीय आर्थिक दशा को ध्यान में रखतें हुये तथा प्रदेश से इनके पलायन को रोकने के लिए शिक्षा एवं रोजगार उपलब्ध कराने हेतु विभिन्न कार्यक्रमों को संचालित करने का निर्णय लिया इन जनजातियों के विकास हेतु प्रदेश में 10 अभिकरण कार्यरत हैं, एकीकृत आदिवासी परियोजनाओं के अंतर्गत 26 वृहद एवं 5 मध्यम परियोजनयें 30 मॉडल पाकेट्स व 06 लघु आंचल कार्यरत है प्रदेश में तीन पूर्णतः अनुसूचित जनजाति जिले तथा 89 अनुसूचित जनजाति विकास खण्ड है।

राज्य में आदिवासियों के उत्थान हेतु आदिवासी विकास निगम के माध्यम से विभिन्न कल्याणकारी योजनाओं को संचालित किया

जा रहा है लेकिन इन योजनाओं में शिक्षा को सर्वाधिक महत्व दिया गया है राज्य सरकार द्वारा शौक्षणिक स्वास्थ्य एवं रोजगार हेतु विभिन्न योजनाओं का क्रियान्वयन किया जा रहा है।

मध्यप्रदेश राज्य के उमरिया जिला में वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार जिले के दुर्गम स्थानों सहित बैगा एवं गोड़ जनजातियॉ निवास करती हैं, 2001 की जनगणना अनुसार उमरिया जिले में 115247 अनुसूचित जनजाति के पुरूष एवं 112003 अनुसूचित जनजाति की महिलाऐं हैं, वही अनुसूचित जाति के पुरूषों की संख्या 18014 एवं महिलाऐं 17112 हैं। राज्य शासन द्वारा अनुसूचित जनजातियों में व्याप्त निरक्षरता आर्थिक पिछड़ापन रहन–सहन की कमजोर स्थिति, बेरोजगारी, एवं अश्पृश्यता जैसी समस्याओं के निराकरण हेतु शिक्षा एवं प्रशिक्षण इत्यादि के माध्यम से इनके जीवन स्तर को ऊॅचा उठाने के प्रयास किये जा रहे हैं।

आदिवासी गोत्र

1. मुंडा
2. गोत्र
3. उराँव
4. खड़िया

मुंडा – मुंडा, पहान, महतो, बैगा, खूंट, पड़हा, पट्टी, भूइंहार आदि रोचक विषयों को छोड़कर "किली" या "खिली" (खड़िया) का पहले वर्णन करना चाहिए, क्योंकी यह वंश की मूल बात हिया और इसका घराने से सघन संबंध है। पाठक जानते होंगे की घराना ही किसी कौम या जाति की सु–ढ़ नींव है। घराना, बरबार, जाति नदारद। इसी की सच्चाई जानकर आजकल कई देशों में, अराजकता फैलानेवाले नीच लोग, घरानों पर ही पहले आक्रमण करते हैं। जो हो, गोत्र की संस्था, संसार की कई आदिम जातियों में पाई जाती है। सच पुछा जाए तो, एशिया और यूरोप की आधुनिक जातियों में भी इसका कुछ चिन्ह मिलता है। हिन्दू जाती और वर्ण – प्रथा में तो इसका खासा प्रतिरूप ही देखने को मिलता है। ऐसा जँचता है मानो गोत्र– प्रथा जातीय – विकास में स्वभाविक है, अनिवार्य ही क्यों न हो।

मुंडारी " किली" शब्द संस्कृत "कुल" के साथ मिलता है। फिर एक गैलिक शब्द भी उसी का सूचक है। यदि आप चाहें तो इसमें लैटिन का भी आभास पाइएग। पर परिभाषा– स्वरूप हम कह सकते है कि "किली" (गोत्र), कूल या वंश की संज्ञा है जो उसके मूल पुरूष के अनुसार होती है। मुंडा–परंपरा से चलती आई है कि किली के सब अंग या व्यक्ति एक ही पुरखे की संतति है। यह

वंश – धारा भी पितृपक्ष है न कि मातृपक्षय अथार्त संतान में पिता ही की किली चलती है, माता की नहीं। तो किली की स्थापना क्योंकर हुई? विशेष कारण ये हैं।

(क) मुंडा जाति की बेटे – बेटियाँ अपनी किली में हरगिज शादी न करें (" एक ही किलीवाले, भाई–बहन हैं") पर अन्य मुंडा किलियों में गोर्त्मन की बुराई को वे प्रकृति का उल्लंघन मानते हैं। निकट कृटुम्बियों में शादी– विवाह भी घृणा की –दृष्टी से देखते हैं।

गोत्र –बाहर विवाह के निमित्त, मुंडा जाति कई छोटे वर्गों में विभक्त हैं जिन्हें किली कहते हैं। मुंडा किली बाहर शादी करते हैं पर असली मुंडा ही जाति के अंतर्गत। 'यों संताल, खड़िया, असुर आदि में वे विवाह– गांठ नहीं जोड़ते। इस नियम का केवल एक अपवाद है : तमाड़ के मुंडा।

मुंडा लोग किसी वंश– विशेष में रहने का खास प्रमाण देते है। अपनी पितृ– कूल किली। घराने के पूजा पाठ में भी सब किली– मेम्बरों को भी हाजिर होने का दावा है। दुसरे– दुसरे किली मेम्बरों की प्रसादी भोजन (पूजा– भोजन)खाने का कोई हक नहीं । मरने पर गोत्रज ही एक कब्रस्थान में गाड़े जा सकते हैं। उनका अपना "ससन" और "ससन दिरी" (कब्र पत्थर) है यदि कोई किलिजन गाँव से दूर मर जाए तो वार्षिक त्योहार के समय "जंगतोपा" (हड्डियों को दफन) के अवसर पर उसकी हड्डियों लाकर ससन के नीचे रखी जाती हैं। मुंडा लोगों की एक कहावत है : "ससनदीरीको, होड़ो होन कोआः पटा" (कब्र – शिला ही मुंडाओं का पट्टा है)।

मुंडारी किलियों का अर्थ बताना कठिन काम है, इसलिए की इसमें एकमत नहीं हैं। यहाँ माननीय फा. होफमन की सूची दी जाती है,

जिन्होंने 30 वर्षों से अधिक मुंडा लोगों के संग रहकर उनका अध्ययन किया है।

गोत्रों के संबंध में, जैसे मुंडाओं का जातीय– विकास और ख्याल है, वैसे ही उराँव और खड़िया लोगों की भी धारणाएँ चलती हैं। तिस पर भी ज्ञानियों का मत है कि इन आदिवासियों में गोत्र– प्रथा की धारा स्वतंत्र रूप से बहती आई है। पर इसका प्रमाण हमें नहीं मिलता। सैकड़ों वर्षो से सहवास से इन जातियों का कुछ गोत्रों की उत्पति अपनी जाति के अंतर हुई है। जब शब्द कोश आदि मिलते– जुलते हैं, तो गोत्रों का परस्पर आधार या लेन–देन क्यों न होः कई गोत्र तो एक ही के रूपान्तर हैं।

उराँव –उरांवो की गोत्र– प्रथा पड़हा – राज्य के पहले जोरों से थी। यह उसी समय के व्यवस्था है जब उराँव लोग आखेट, संग्राम, खले– तमाशे, नाच–गान– त्योहारों आदि का शौक रखते थे। मुंडा पुरूष के अनुसार हुई थी। इनके अविष्कार और स्थापना का उद्देश्य शादी–ब्याह के सामाजिक गड़बड़ी से जात को वंचित और शुद्ध रखना था। लोग गोत्र– बाहर, पर जात – भीतर विवाह करते थे। गोत्र प्रथा उन्नत अवस्था में होकर, आखेट – युग के समाज की नींव बनी थी। पर उत्तरकाल में, समय के फेर से, उस पर कुछ धक्का – सा लग गया जिसका उद्धार अब तक नहीं हूआ है। इसके विशेष कारण, गृहस्थी का सुप्रबंध, पड़हा – राज्य और आधुनिक समाज– व्यवस्था हैं, जिन्होंने उराँव समाज की बनावट को एक नया रूप दे दिया है। पड़हा – प्रथा का वर्णन अगले लेखों में होगा। आज के गोत्र, टोटेम और टबू के नियम उराँव शादी–सगाई पर गहरी छापय लगाए हुए हैं।

उराँव अपने कूल टोटेम को सखा– साथी– सा मानता है और उसके साथ मिताई का व्यवहार करता है। व्यक्तिगत गोत्र नहीं

होते हैं बिरादरियों के। अपने इस कूल संज्ञा को लोग जीवनदाता तो नहीं मानते पर उसकी विशेष याद तथा आदर करते हैं।

मुंडा गोत्रों जैसी उराँव कुल– संज्ञा की भी कई कथाएँ चलती हैं जिनमें कभी लोग अपने टोटेम की मदद मांगते या कभी टोटेम ही की मदद पहुंचाते हैं कहते हैं कि किसी कुजूर पौधे नई एक समय, एक सूशूप्त उराँव को अपने लता – आभरण से घेर कर मुसीबत से बचाया था।

अपने को एक मूल पुरखे संतान जानकर उराँव लोग, अपने ही गोत्र के भीतर बहु– बेटियां नहीं देते, न वर ही खोजते। यदि अनजान ही ऐसी शादी हो गई, तो भेद खुल जाने पर, हेय दम्पति जात से बहिष्कृत कर दिया जाता है और बिरादरी पड़हा– सदस्यों को जुर्माना और बढ़िया दावत (भोजन) देकर ही, जात में सम्मिलित होता है। टोटेम को बहुतेरे वर्जित मानते हैं, अथार्त यदि वह प्राणी हो तो उसे हानि न करते या करातेय अप्राणी हो तो उसका प्रयोग सिर्फ मजबूर होकर करते हैं, सो भी विचित्र रीति से जैसे "बेक" (निमक) का समझदार प्रयोग। कभी कारणवश अपने गोत्र को बदल लेते हैं, या नाममात्र या निशान से संतुष्ट रहते हैं, जैसे किसपोट्टा गोत्र के नामलेवों ने उसे "कसाई" (एक गाछ का नाम) में बदल किया है। ये लोग इस गाछ का भी आदर करते हैं। कभी– कभी "जातराओं" में कूल– निशानों के पुतले– पुतलियाँ बनाकर लोग लेते फिरते हैं। ये निशान कुछ धार्मिक, कुछ गोत्र एक में समझे जाते हैं।

अब गोत्रों की नामावली दी जाती है। पाठक याद करें कि कुछ– कुछ गोत्रों के अर्थ इनसे भिन्न भी हो सकते हैं।

(क) पशु– गोत्र– अड्डो– बैल। अल्ला– कुत्ता। बंडो – जंगली बिल्ली। बरवा– जंगली कुत्ता। चिडरा (चिड़रा) – गिलहरी।

चिगालो (सिकटा) –गीदड। एड्गो –चूहा। गाड़ी – मामूली बंदर। हलमान –हनुमान। खोया– जंगली कुत्ता। लकड़ा– बाघ – ओस्गा– खेत– मूसा। रूंडा– लोमड़ी। ति(तिग्गा) – एक प्रकार का बन्दर। तिर्की– छोटा चूहा।

(ख) पक्षी– गोत्र – बकुला– बगला। ढेचूआ– ढेचूवा। गड़वा– सारस। गेड़े – बतख गिधि खाखा– कौवा केरकेट्टा– एक पक्षी विशेष कोकरो– मुर्गा ओरगोड़ा –बाज तिरकुवार –तिथियों पक्षी टोप्पो या लंग टोप्पो – पक्षी विशेष।

(ग) मछली अथवा जलचर– गोत्र– आईंद– एक लम्बी मछली, एक्का (कच्छप)– कछूवा । गोडो– मंगर खलको– एक मछली– विशेष किन्दूवर– एक मछली विशेष लिंडा – एक लंबी मछली मिंज– एक मछली विशेष साल– एक मछली विशेष तिड़ो– एक मछली विशेष।

(घ) रेंगने वालों में – खेत्ता– नाग सांप

(ड.) वनस्पति – गोत्र – बखला – एक प्रकार की घास, बल्कल। बाड़ा(बरला)– बरगद। बासा – एक गाछ। कंदा– सक्करकंदा। कैथी– एक तरकारी पौधा। कैंडी – एक गाछ। खेस – धान। किन्दो– खजूर। कुजूर– एक फलयलता। कून्दरी – तरकारी पौधा। मूंजनी– एक लता। पूतरी – एक गाछ। केओंद . एक फल। पुसर– कूसूम।

(च) धातु– गोत्र– पन्ना– लोहा बेक– निमक।

(छ) स्थान– गोत्र . बांध– बांध जूब्बी– दलदल भूमि।

(ज) खंडित . गोत्र– अंमडी – चावल शोखा। किसपोट्टा– सूअर की अंतड़ी ।

खड़िया खड़िया लोग तीन वर्गों के होते हैं – दूध. ढेलकी खड़िया, पहाड़ी खड़िया। इनमें पहाड़ी खड़िया सब से निम्न श्रेणी के समझे जाते हैं और दूध सब से सभ्य। छोटानागपुर की अन्य जातियों के समान इनमें भी गोत्र– प्रथा जाती है। सिर्फ मयूरभंज के पहाड़ी खड़िया इस संस्था से वंचित हैंय हाँ मानभूम और सिंहभूमि के रहनेवाले गोत्र प्रथा को कुछ–कुछ मानते हैं।विचित्रता यह भी है कि मयूरगंज के सगोत्र, आपस में शादी–सगाई जोड़ते हैं। यों, मयूरभंजी, अपने "पदित" (उपनाम) और अपनी "संज्ञा" (उपाधि) के अंदर शादी तो कर सकता हैय पर अपने घराने के परिवारों के साथ उसका विवाह वर्जित है।

दूसरे खड़िया लोग गोत्र की नीति–रीति रखते हैं। सगोत्र खड़ियाओं का ख्याल है कि हम सब एक ही पुरूष– पुरखे के वंशज हैं। कि हम भाई–बहन हो एक वृहत घराने अंग–अंग हैं। इस स्थिति में वैवाहिक नाता जोड़ा नहीं जा सकताय जो जोड़े वह गोत्रवध का दोषी ठहरता है। तो इस सजातीय संगठन का ध्येय यही है कि गोत्र – बाहर विवाह का सुरक्षण हो और सजातीय में सामाजिक सुप्रबंध हो।

ढेलकी खड़िया के गोत्र आठ हैं – 1. मुरू– कछुआय 2. सोरेन (सोरेंग, सेरेंग) या तोरेंग– पत्थर या चट्टानय 3. समाद– एक हरिण? अथवा बागे– बटेरय 4. बरलिहा– एक फलय 5. चारहाद या चारहा – एक चिड़िया 6. हंसदा या डूंगडूंग या आईंद – एक लंबी मछलीय 7. मैल – मैल अथवा किरो– बाघय 8. तोपनो– एक चिड़िया। किरो : और तोपनो दूसरों से हीन समझे जाते हैं। मुरू और समाद सब से श्रेष्ठ । इन गोत्रों ही के पुरूषों को पंचायतों और सभा– सोसाइटियों में सभापति बनाया जाता है – मुरू– गोत्रीय, "पनदिहा" (पानी देने वाला) और समाद – गोत्रीय

"भंडारी" (खचानची) मन जाता है। मुरू खानदान का पुरूष ही खानपान में पहला कौर खा सकता है।

संस्कृति – अधिकांश आदिवासी संस्कृति के प्राथमिक धरातल पर जीवनयापन करते हैं। वे सामन्यतः क्षेत्रीय समूहों में रहते हैं और उनकी संस्कृति अनेक –दृष्टियों से स्वयंपूर्ण रहती है। इन संस्कृतियों में ऐतिहासिक जिज्ञासा का अभाव रहता है तथा ऊपर की थोड़ी ही पीढ़ियों का यथार्थ इतिहास क्रमशः किंवदंतियों और पौराणिक कथाओं में घुल मिल जाता है। सीमित परिधि तथा लघु जनसंख्या के कारण इन संस्कृतियों के रूप में स्थिरता रहती है, किसी एक काल में होनेवाले सांस्कृतिक परिवर्तन अपने प्रभाव एवं व्यापकता में अपेक्षाकृत सीमित होते हैं। परंपराकेंद्रित आदिवासी संस्कृतियाँ इसी कारण अपने अनेक पक्षों में रूढ़िवादी सी दीख पड़ती हैं। लेकिन भारत मे हिंदू धर्म की संस्कृति इनमें देखी जाती है और वो सनातन के वँशज कहलाते है। उत्तर और दक्षिण अमरीका, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, एशिया तथा अनेक द्वीपों और द्वीपसमूहों में आज भी आदिवासी संस्कृतियों के अनेक रूप देखे जा सकते हैं।

विविधताओं से भरा आदिवासी खान–पान – आदिवासी संस्कृति मुख्य धारा की संस्कृति से भिन्न है। आदिवासियों के खान–पान में मुख्य रुप से जंगल,जमीन से मिलने वाले खा। पदार्थ हैं। ये सब्जी में ज्यादतर सागों का प्रयोग करते हैं। ये साग बजारों में मिलने वाले गिने–चुने हाईब्रिड साग नहीं हैं। आदिवासी जंगलों, खेतों, नदियों से साग तोड़कर लाते हैं. इनमें से कुछ साग दवा का भी काम करती हैं। आदिवासी प्रकृति के ज्यादा करीब है, इसी कारण अन्य लोगों की अपेक्षा प्रकृति से मिलने वाले खा। पदार्थों के अधिक जानकार हैं। उरांव आदिवासियों में बड़े–बूढ़े

बच्चा पैदा होने पर यह नहीं पूछते लड़का हुआ या लड़की। आदिवासी जंगल जमीन से जुड़े हैं इसी कारण बच्चा पैदा होने पर पूछते हैं– 'हल जोतवा हुआ या साग तोड़वा?'

अर्थात लड़का हुआ तो हल जोतने वाला और लड़की हुई तो साग तोड़ने वाली। इस कहावत का यह कतई अर्थ नहीं है कि लड़का हल ही चलायेगा और लड़की साग ही तोड़ेगी। यह तो उनकी जमीनी जुड़ाव है। आज जिस स्त्री–विमर्श से लड़कियों,स्त्रियों की शारीरिक और मानसिक तथा वैचारिक आजादी की बात की जाती है, वह आदिवासी स्त्रियों में बचपन से मिल जाती है। साग तोड़ने के उपक्रम में वे जंगलों, पहाड़ों, नदियों में स्वच्छंद होकर घूमती हैं। जहाँ पेड़ो पर चढ़ने पर मुख्य धारा की लड़कियों की पाबंदी है वहीं आदिवासी लड़की बचपन से बुजुर्ग होने तक (जब तक हाथ पैरों में ताकत है) जीविका के लिए पेड़ ही चढ़ती है। नदी नालों में घूमना तो दूर, अन्य समाज की स्त्रियों का बचपन ही घर की चाहरदीवारी में कैद कर दी जाती है। आदिवासी समाज इसके विपरीत लड़कियों को अपनी जीविका के लिए स्वच्छंदता प्रदान करता है। यहाँ बच्चियों से 50–60 साल तक की औरतें पेड़ों पर चढ़कर साग तोड़ती नजर आयेंगी।

पहनावा/वस्त्र :– गौंड जनजातियों में वस्त्रों के अत्याधिक महत्व है ये रंग बिरंगे अत्याधिक चमक वाले वस्त्र धारण करना पसंद करते है। विभिन्न त्यौहारों व अवसरो हेतु विभिन्न प्रकार के नये–नये वस्त्रों को बनवाते या खरीदते हैं गौंड़ी स्त्रीयां सेंद्र, फालिया या घुटनो तक सफेद साड़ी का प्रयोग करती हैं। यह लगोट की तरह छोटी पहनते है। यह स्त्रियां लाल रंग की साड़ी उपयोग भी करती है कंधे पर कतौची बांध लेती है और पुरूष टी.

व्ही. सिनेमा आदि से प्रभावित होकर पजामा, धोती, कमीज और जवाहर कोट पहनने लगे हैं। के बावजूद प्रायः इनकी बेशभूषा और रंग पंसदगी बहुत आकर्षक लगती है। सामान्यतः विकास के साथ संभतः कपड़ो का उपयोग बढ़ा है। यहां पर पहले कपड़ो की कोई बड़ी भूमिका नहीं होती थी। अब यह कपड़ो का उपयोग सामान्य रूप से करने लगे हैं कुछ आदिवासी पेंट व शर्ट का उपयोग भी करते है। यह गहरे रंग के कपड़ो पहनना अत्याधिक पसंद करते है काफी चमक होती है त्यौहार आदियों पर यह सिर पर फटका आदि को बंधते हैं।

आभूषण :– गौंड जनजाति शुरू से ही गहनों की बहुत शौकीन रही है। यह विभिन्न प्रकार के गहनों का उपयोग करते हैं। ये सामान्यतः चांदी कांसा, पीतल, गिलट तथा तांबे से बने आभूषण को पहनते हैं कंठ में हसली, कंठी, लटकनिया, घूटा, कान में वाली तथा कर्ण फल कलाई में चूड़ा, कंगन, पराचूड़ी, उंगलियों में अंगूठी, या मुद्रि कमर में करधनी साकरी, पैर में पैरी मुड़ी, पैजनिया, तोड़ा आदि धारण करते हैं। आदिवासी कन्यायें भिन्न रंग के मोतियों की मालायें बड़े शौक से पहनती है।

यह भी जानकारी मिली है आदिवासियां स्त्रियां अपने शरीर में गुदने गुदवाती है यह पैर, पीठ, चहरे, हाथ आदि पर विभिन्न आकृतियां गुदवाती है। इन आकृतियों में मोर की आकृति पक्षी से संबंधित उनके देवता से संबंधित चित्र, फूलों के चित्र को गुदवाती है।

रसोई के बर्तन :– घरेलू कार्य में उपयोग होने वाली वस्तुओं के नाम पर गौंड आदिवासी परिवारों में मिट्टी के बर्तन, बांस की टोकरी, मछली पकड़ने का जाल, पक्षी फसाने के लिए फांसे, छोटी मोटी चीजे पाई जाती है। हसिया, खनता, कुदाली, मुरा,

धूरी, कोटा, ढुकना, पिटला, बिडली, चुटकी, छालरी, झुरा, सब्बल, टंगिया, कोहली, छपरी आदि का उपयोग करते है।

नृत्य एवं संगीत :– किसी भी गौंड आदिवासी परिवारों में ऐसा नहीं है जिसके पास नृत्य संगीत का सामान न उपलब्ध हो इनके पास वा। यंत्र होते है। विशेष कर ढोल इसके अतिरिक्त नगाड़े, ठेंकी, तुड़गुड़ी, मांदर प्रमुख वा। यंत्र आदि होते हैं। बांस की बांसुरी छोटी बड़ी जो कि विभिन्न प्रकार की नक्कासी से सजित होती है। पीतल, पायल, और ऊन व रेशम से तैयार की गई नृत्य पोषके भी उपलब्ध होती है व घुंघरूओं में लगी लकड़िया, घुंघरूओं से गुधा गया कमर बंद आदि होता है। इन सभी वा। यंत्रों का उपयोग यह प्रायः शाम को नृत्य एवं संगीत व अन्य अवसरों हेतु करते है।

लमसेना विवाह –इनमें सेवा विवाह की 'लामझेना', 'लामिया' और 'लमसेना' प्रथा प्रचलित है। बैगा जनजाति के लोग पीतल, तांबे और एल्यूमीनियम के आभूषण पहनते हैं। बैगा, भारत के मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ एवं झारखण्ड प्रदेशों में पायी जाने वाली जनजाति है। मध्य प्रदेश के मांडला तथा बालाघाट जिलों में बैगा लोग बहुत बड़ी संख्या में रहते हैं।

आदिवासियों की विवाह पद्धतियां

वैवाहिक रीति–रिवाजों की पद्धतियों में परंपरा, धर्म, जाति एवं आस्था के ऐसे बंधन होते हैं जो मात्र एक दम्पत्ति के लिए ही नहीं अपितु उनसे जूड़े सम्पूर्ण समाज के लिए भी अपनेपन का ऐहसास दिलाते है। रीति–रिवाजों का अभिप्राय होता है कि आप जिस समाज में रहते हैं वह आपका है एवं आप उस समाज के हैं। चाहे ये रीति–रिवाज दुनिया के किसी भी धर्म, जाति अथवा भौगौलिकता से जुड़े हों सभी का अपना महत्व एवं पहचान है। अर्थात् आप अकेले नहीं हैं, आप एक सामाजिक प्राणी हैं एवं आपकी एक पहचान भी है। और यह पहचान आपका धर्म है, आपकी जाति है, आपकी संस्कृति है अर्थात् सगे–संबंधी तथा मित्र सभी अपने ही लोग हैं तथा आप भी उन सभी के हैं।

दुनिया के प्रत्येक धर्म, समाज एवं जनजातियों में विवाह के कुछ न कुछ परम्परागत व धर्म पर आधारित नियम होते हैं जिनका निर्वाह करना भी आवश्यक होता है। आदिम समूहों में भी विवाह की पद्धतियां बड़ी ही रोचक एवं मौलिक होती हैं। और इन पद्धतियों का निर्वाह करने अथवा न करने वाले व्यक्तियों के साथ समाज आमतौर पर आदिम समूहों में दण्ड और उदारता का व्यवहार भी करता है। इसे आदिम समूहों की विशेषता ही कही जानी चाहिए।

लगभग सभी भारतीय आदिम समाजों में प्रत्येक युवक–युवती को ऐसे अवसर प्रदान किये जाते हैं जिससे ये अपना मनपसंद साथी चुन सकें। बैगा जनजाति में लड़की भागकर लड़के के घर के

पीछे खड़ी हो जाती है। और यदि लड़का दरवाजा खोलने के बाद लड़की को हल्दी के छींटे दे तो उसके भांवर उसी समय गांव के पंचों की उपस्थिति में कर दिये जाते हैं। इसमें पंच ही मां–बाप की भूमिका निभाते हैं और लड़की के मां–बाप की भी जरूरत नहीं होती। इसके लिए उन्हें मात्र सूचना दी जाती है कि उनकी लड़की अब पंचों की हो गई है और वे उसका विवाह कर रहे हैं। यह एक रिवाज है।

आदिम जातियों में लड़की का घर से भाग जाना कभी भी गम्भीरता से नहीं लिया जाता, बल्कि लड़के–लड़की का पता लग जाने के बाद उनका विवाह प्रचलित परम्परा एवं रीति–रिवाजों के अनुसार कर दिया जाता है। झाबुआ के भीलों में ऐसी प्रथा आम है। इसके लिए हाट–बाजार, सामूहिक नृत्य, पर्व–त्यौहार, मड़ई जैसे उत्सव एवं अवसर युवक–युवतियों के मिलन स्थल होते हैं, और यहीं से इन जोड़ीदारों के मन में जीवन भर साथ–साथ रहने के संकल्प का सूत्रपात होता है।

मध्यप्रदेश और राजस्थान की सीमा से सटे कोटा जिले के सीताबाड़ी स्थल पर सहरियों का इस तरह का एक वार्षिक मेला प्रतिवर्ष जेठ माह में वट पूजनी अमावस्या से दस दिन के लिये आयोजित होता है। पौराणिक कथाओं के अनुसार वट पूजनी अमावस्या के दिन सावित्री ने अपने मृत पति सत्यवान को पुनः जीवन दिलाने के लिये सीताबाड़ी में वट की पूजा की थी। इसी विश्वास के साथ आदिवासी युवक–युवतियां इस दिन यहां अपने जीवन साथी का चुनाव करते हैं।

सीताबाड़ी का यह मेला सहरियाओं के नाम से विख्यात है। जून की तपती दोपहरी में यहां जामुन, आम और वटवृक्षों की घनी छाया में बैलगाड़ियों के नीचे विश्राम करते दाल–बाटी बनाते,

श्रंगार प्रसाधन खरीदते, सजे–धजे हजारों सहरिया नर–नारी इस मेले को अपनी उपस्थिति से रंगीन और उन्मुक्त बनाते हैं।

इस मेले में मध्य प्रदेश और राजस्थान से हर उम्र के हजारों सहरिया आदिवासी पहुंचते हैं। यहां वे अपने पूर्वज वाल्मीकी के दर्शन करते हैं और विवाह योग्य युवक–युवतियां अपने जीवन साथी का चुनाव करते हैं और मन्नतें पूरी होने पर मनौतियां भी चढ़ाते हैं। इस जनजाति में ऐसी मान्यता एवं परम्परा है कि यदि कोई युवक इस मेले में किसी युवती के सामने पान या बीड़ी का बण्डल फेंक देता है तो उसका अर्थ माना जाता है कि उसे वह लड़की पसन्द है। और यदि वह युवती इन वस्तुओं को उठा लेती है तो यह इस बात का प्रतीक है कि उस लड़की ने भी उसे अपने जीवन–साथी के रूप में स्वीकार कर लिया है। फिर वह लड़की उस लड़के संग किसी गुप्त स्थान पर भाग जाती है और बाद में उनके अभिभावक परम्परागत तरीके से उनका विवाह कर देते हैं।

सहरियाओं के इस मेले को देखकर झाबुआ के भगोरिया हाट का याद आना भी स्वाभाविक है। भगोरिया जनजाति में किसी मेले या हाट में कोई युवती अपने पसंद के भील युवत को गुलाल लगा देती है तो समझो वह उसका पति हो गया। इसके बाद वे किसी अज्ञात स्थान पर भाग जाते हैं। बाद में पंच और परिवार मिलकर पारंपरिक रीति–रिवाजों से उनका विवाह कर देते हैं। डॉ. हीरालाल एवं डॉ. रसेल, जिन्होंने इस जनजाति को नजदीक से जाना है ने इस जनजाति की वैवाहिक परंपराओं का उल्लेख करते हुए लिखा है कि – ''इनमें विवाह अधिकांशतः वयस्क होने पर ही होते हैं किन्तु जहां सवर हिन्दुओं के समीप रहते हैं, वहां इनमें विवाह कम आयु में ही होने लगते हैं। इसका कारण इनके

वैवाहिक रीति–रिवाजों में ही पाया जा सकता है, जब विवाह के समय वर–वधू को उनके सम्बन्धियों द्वारा वधू के घर से वर के घर तक कन्धों पर उठाकर लाया जाता है। और यदि वे वयस्क हैं तो इस रस्म के लिए उनके सम्बन्धियों को अधिक श्रम करना पड़ता है।

उड़ीसा या उड़िया प्रदेश में आदिवासियों के प्रत्येक वर्ग के खूंटिया उपवर्ग में कन्या का विवाह वयः सन्धि के उपरान्त करने में कोई बुराई नहीं समझी जाती, लेकिन जोरिया लोगों में यह पाप माना जाता है। इससे बचने के लिए वे कन्या का विवाह उसके रजस्वला होने के पूर्व ही एक तीर के साथ कर देते हैं। यह तीर उस कन्या के हाथ में बांधा जाता है और वह एक वेदी पर लगे महुआ के वृक्ष के सात फेरे लेकर तेल और घी पीती हैं और इस प्रकार विवाह का नाटक रचा जाता है। इसके बाद उस तीर को नदी में फेंककर यह मान लिया जाता है कि उसका पति मर चुका है और बाद में विधवा विवाह की रस्म से उसका विवाह कर दिया जाता है। और यदि उसका यह नकली विवाह (एक तीर के साथ होने वाला विवाह) युवावस्था तक नहीं हो पाता है तो उसे एक रिश्तेदार द्वारा जंगल में ले जाकर किसी वृक्ष से बांध दिया जाता है और यह मान लिया जाता है कि इस वृक्ष से उसका विवाह हो गया है। उसे अपने पिता के घर वापस न लाकर जीजा अथवा दादा समान किसी सम्बन्धी के घर ले जाया जाता है जो उसके साथ हंसी–मजा कर सकते हैं। इसके बाद उसका विधवा विवाह कर दिया जाता है। इस विवाह के अंतर्गत सम्बलपुर के आदिवासियों में तो उसका विवाह पहले औपचारिक रूप से किसी वृद्ध के साथ कर दिया जाता है और फिर विधवा की तरह पुनर्विवाह किया जाता है।

सवर लोगों में विवाह प्रथा सामान्यतः स्थानीय हिन्दु विवाह पद्धतियों के अनुसार ही होते हैं। दम्पत्ति के वापस लौटने पर वर के घर दरवाजे के सामने सात रेखाएं खींच दी जाती हैं कुछ रिश्तेदार लौटकर आई बारात पर मुठ्यिों से भर कर कुछ चावल फेंकते हैं और दम्पत्ति को वे रेखाएं पार कराकर घर के भीतर ले आते हैं। इस प्रकार इन सात रेखाओं और चावलों के माध्यम से उन्हें बुरी आत्माओं से जो कि उनके साथ घर में प्रवेश कर सकती थीं मुक्त किया जाता है।

सागर की एक जनजाति में यदि वधू का परिवार विवाह भोज दे सकने में असमर्थ होता है तो वे मेहमानों को रोटी के टुकड़े दे देते हैं। जिन्हें वे स्वीकृति के प्रतीक स्वरूप प्रेमपूर्वक अपनी पगड़ी में रख लेते हैं, और उन मेहमानों को जिन्हे भेंट देना अनिवार्य होता है, पांच कोड़ियां दी जाती हैं। इस जनजाति में विधवा विवाह की अनुमति भी है। कुछ स्थानों पर विधवा स्त्री अपने देवर से विवाह के लिये बाध्य होती है, यदि वह युवक इससे इन्कार नहीं करता है तो। किन्तु यदि वह किसी अन्य पुरूष से विवाह करती है तो उसके नये पति द्वारा उसके पिता अथवा उसके मृत पति के परिवार को क्षतिपूर्ति के रूप में कुछ रुपये देना होता है।

इस जनजाति में पति की पहल पर अथवा गंभीर असहमति के आधार पर तलाक की अनुमति भी है। और यदि पत्नी तलाक चाहती है तो अपने पति के घर से भाग जाती है। लड़िया सबरों में तलाक के अवसर पर मृत्यु भोज अर्थात् मरती–जीती का भात अवश्य देना पड़ता है। जबकि उड़िया जनजाति में इस अवसर पर जाति के मुखिया को मात्र एक रुपया दिया जाता है।''

सहरियाओं में लड़के–लड़कियों की सगाई की बातचीत दस–बारह साल की उम्र में प्रारम्भ होती है, जिसमें कोई न कोई रिश्तेदार

या परिचित मध्यस्थ होता है। एक सर्वेक्षण के दौरान विवाह सम्बन्धी बातचीत में सगाई की रस्म के बारे में एक बुजुर्ग सहरिया महिला ने बताया कि सम्बन्ध तय करने के लिए बीचवान के माध्यम से पहले लड़की के गांव में लड़के को दिखाने के लिए ले जाया जाता है। लड़की पक्ष की बहू–बेटियां लड़के को देखती हैं, तथा संतुष्ट होने पर लड़के पक्ष के मुखिया आदि को किसी और निश्चित दिन आमंत्रित किया जाता है। लड़के की ओर से लड़का पक्ष का दामाद, स्वयं लड़का, उसका पिता, गांव का पटेल, ग्राम प्रधान तथा कुछ अन्य बुजुर्ग लोग मिलकर लड़की वालों के यहां कुछ नेग जैसे कंघी, मोती, नारियल, कंकु या कुमकुम, बताशा आदि सामान लेकर आते हैं। वे स्वयं लड़की वालों के घर सीधे नहीं पहुंचते हैं, बल्कि गांव पटेल के घर अपना पड़ाव डालते हैं, तथा लड़की वालों के यहां सूचना भेजते हैं। सूचना पाते ही लड़की वाले उन्हें आदर के साथ घर लाते हैं। आटे और हल्दी का चौक बनाकर उस घर में दीपक–कलश की स्थापना की जाती है। इसके बाद दोनों पक्षों के लोग आमने–सामने खड़े होकर राम–रामी करते हैं। बैठने के पश्चात् लड़के वाले चौक कलश पर रुपये पैसे का सवाया नेग चढ़ाते हैं। यह नेग देवी–देवता, नाई, पंच, सवासा, परधान चौकीदार, कुम्हार, पटेल, गलियारों, दूधभाई आदि के नाम का होता है। तत्पश्चात् दोनों पक्षों के पंच विवाह का दिन और मुहूर्त निश्चित करते हैं, जिसको कि विवाह छेकना कहा जाता है। बाद में लगुन–विचार होता है। इन सभी रीति–रिवाजों में किसी भी ब्राहमण या पंडित की आवश्यकता नहीं होती थी। लेकिन पिछले कुछ वर्षों से हिन्दुओं की देखा–देखी में इस जनजाति ने भी ब्राह्मण अथवा पंडित से मिलकर मुहूर्त निकलवाने प्रारम्भ कर दिए हैं।

शाम को या दूसरे दिन लड़की पक्ष वाला दामाद जंगल से पीपल के पांच पत्ते लाता है और उनसे वह ढाई–ढाई पत्तों के दो दोने बनाकर चौक में रख देता है जिनमें हल्दी की गांठ तथा दूब रखी जाती है और इन दोनो में लड़के वाले यथाशक्ति कुछ पैसा डालते हैं। गांव का पटेल लड़के तथा लड़की के पिताओं को एक–एक दोने प्रदान करता है। दामाद दूध का लोटा देता है, दूध की धारा दोने में छोड़ दी जाती है। इसके बाद दोनों पक्षों के दोने परस्पर समधियों द्वारा बदल दिये जाते हैं और फिर दोनों पक्षों के दामादों को यह दोने सौंप दिये जाते हैं। दोनों दामाद अपने–अपने परिजनों को यह दोने स्पर्श कराते हैं। लड़का पक्ष की ओर से लाई हुई नेग जिसे चीठा कहते हैं, की वस्तुओं को लड़की के आंचल में डाल दिया जाता है। इसे गोद भराई कहते हैं। सहरियाओं में गोद भरने की रस्म को आधा विवाह मान लिया जाता है।

इस प्रकार से इसे सगाई का तय होना माना जाता है। इस रस्म के बाद समधी गले मिलते हैं, खुशी मनाते हैं, दारू पीते हैं तथा एक साथ भोजन करते हैं। सहरिया जनजाति की सगाई में आजकल हिन्दुओं के रीति–रिवाजों का प्रभाव कुछ–कुछ देखा जा सकता है।

सगाई होने के बाद यदि लड़की अपनी मरजी से किसी ओर के साथ विवाह कर लेती है तो लड़की की छोटी बहन से विवाह कर सारे विवाद को निपटा लिया जाता है। हालांकि सगाई तोड़ना सहरिया समाज में महापाप माना जाता है। और ऐसा करने वाले के लिए दंड स्वरूप उसके सामाजिक बहिस्कार की भी परंपरा है।

गोंड, बैगा, मुरिया आदि जातियों में पहले सम्बन्ध मामा–बुआ के घर से शुरू होते हैं। लड़की लेने का पहला अधिकार मामा या

बुआ के लड़के को होता है। जबकि सहरियाओं में ऐसे सम्बन्ध मान्य नही हैं। इसी कारण सहरिया हिन्दू विवाह पद्धति से सर्वाधिक प्रभावित हैं, और उन्होनें हिन्दुओं के रीति–रिवाज और आचरणों को भी आत्मसात कर लिया है। सहरियाओं में विधवा विवाह की स्थिति में महिला की मरजी पर सब कुछ निर्भर है।

सगाई के परंपरागत रीति–रिवाजों के बाद विवाह का समय आता है और इसमें भी सहरिया समाज शत–प्रतिशत अपनी ही विवाह पद्धतियों को अपनाता है तथा उसमें बाहरी सभ्यता का कोई हस्तक्षेप भी नही होने देता है। इस जनजाति में विवाह को मुख्यतः पांच भागों में बांटा गया है, जिसमें सगाई विवाह को प्रमुख माना गया है और यह विवाह दम्पत्ति के लिए भी तथा उनसे जुड़े अन्य सभी के लिए खुशियों से भरा होता है। इसके अतिरिक्त अन्य विधवा विवाह, खेंका विवाह, झगड़ा विवाह तथा झार फेरा के नाम से जाना जाता है।

सगाई विवाह – इसमें हिन्दू परम्परा की तरह ही दोनों पक्षों की रजामंदी के अनुसार ही सगाई की रस्म अदा की जाती है तथा उसके लगभग एक वर्ष के अन्दर विवाह भी कर दिया जाता है। इस जनजाति में यह पद्धति अधिक मानी जाती हैं। क्योंकि इसमें लड़के–लड़की की मर्जी के साथ माता–पिता की स्वीकृति भी होती है। ऐसे विवाह को सफल विवाह भी माना जाता है। हिन्दू परम्परा की तरह ही सहरिया लोग भी देव उठनी ग्यारस से ही विवाह प्रारम्भ करते हैं तथा देव शयनी एकादशी के बाद विवाह की तिथि पंच मिलाकर तय करते हैं या फिर किसी पंडित द्वारा बताये गये मुहूर्त के अनुसार ही करते हैं। लगुन, गणेशपूजा, हल्दी, तेल चढ़ावा, मण्डप, बारात आगवानी, भांवर, भोज, विदाई, ससुराल में वर–वधू द्वारा पूजा एवं गौना सहरियों में परम्परागत

विवाह की विशेष एवं आवश्यक पद्धतियां हैं तथा सभी विवाह इन्हीं पद्धतियों के अनुसार ही किये जाते हैं। इसमें पुरूष एक से अधिक विवाह तो कर सकता है, किन्तु स्त्री को यह अधिकार नहीं है, क्योंकि स्त्री के दुबारा भांवर नही पड़ते।

विधवा विवाह –वैसे तो विधवा के साथ पुनर्विवाह का पहला हक उसके देवर को होता है, किन्तु यदि वह स्त्री किसी अन्य व्यक्ति से पुनर्विवाह करना चाहती है तो उसमें पंचायत तथा समाज के अतिरिक्त किसी को भी कोई परेशानी नहीं होती है। यह विवाह विधवा की मर्जी पर निर्भर होता है। विधवा विवाह में निश्चित दिन पुरूष को केवल विधवा स्त्री के लिए कुछ गहने तथा कुछ कपड़े देने पड़ते हैं और अपनी सुविधा के अनुसार पंचों को भोज खिलाना पड़ता है। कभी–कभी पिता एवं पंचों की सहमति के आधार पर भी किसी योग्य पुरूष के साथ विधवा विवाह कर दिया जाता है।

खेंका विवाह – यदि विधवा स्त्री किसी अविवाहित पुरूष के घर में बैठ जाती है और पुरूष भी उसकी जिम्मेदारी लेने के लिए तैयार हो जाता है तो उसको खेंका विवाह कहा जाता है। खेंका विवाह में विधवा के आंगन में एक लकड़ी का खम्भा खेंका गाड़ दिया जाता है, इस पर विधवा स्त्री के कपड़े रख दिये जाते हैं या पहना दिये जाते हैं। स्वयं विधवा स्त्री घर के अन्दर बैठी रहती है। इसके लिए उस व्यक्ति को नये कपड़े पहने पड़ते है, जिसपर हल्दी के कुछ दाग लगा दिए जाते हैं। वह विवाहार्थी इस खम्बे के साथ अकेला ही सात फेरे लगाता है। फिर खेंका कपड़े उस स्त्री को पहनाकर गठबन्धन कर दिया जाता है। विवाहित पुरूष भी एक स्त्री के रहते विधवा विवाह कर सकता है। वैसे तो विधवा विवाह को किसी विधुर के साथ ही प्राथमिकता

दी जाती है किन्तु इसके लिए कोई अन्य अर्थात विवाहित पुरूष भी तैयार हो जाता है। उस विधवा स्त्री के बच्चों पर हक पूर्व पति के परिवार का ही होता है। सम्पत्ति पर विधवा का अधिकार तब तक नही माना जाता जब तक वह पुनर्विवाह नही करती है। इस बीच छोटे बच्चे बड़े होने तक मां के पास रहते हैं।

झगड़ा विवाह – इस विवाह के अंतर्गत यदि कोई व्यक्ति किसी विवाहित स्त्री को भगाकर ले जाता है या स्त्री स्वयं प्रेमी के साथ भाग जाती है तो दोनों परिवारों के लोग उन्हें ढूंढकर उनका पुनर्विवाह कर देते हैं। लेकिन इससे पहले उस स्त्री के पूर्व पति को इस नये पति की ओर से झगड़ा देना पड़ता है। और इस झगड़े का निर्णय समाज की पंचायत के द्वारा किया जाता है। यह झगड़ा अर्थात–दण्ड दो–ती सौ रुपयों से लेकर तीन या चार हजार रूपये तक भी हो सकता है तथा इसके साथ ही समाज के लिए भोज और दारू का भी इन्तमजाम करना पड़ता है। पंचायत तथा समाज के सभी निर्णयों को जाति के प्रत्येक सदस्य के लिए पालन करना अनिवार्य होता है। भले ही कोई भी स्त्री यदि किसी पुरूष के साथ अपनी मर्जी से आई हो। इसमें अर्थदण्ड या झगड़ा तो पुरूष को ही भरना पड़ता है।

झार फेरा –यदि लड़की का विवाह तय हो जाने के बाद उसका पिता प्रलोभन में आकर सम्बन्ध तोड़ देता है और किसी अन्य लड़के के साथ उसका विवाह तय कर देता है तो ऐसी स्थिति में पूर्व परिवार वाले अपनी प्रतिष्ठा के लिए उस विवाह के पहले उस युवती का जबरदस्ती अपहरण करा लेते हैं और अपने लड़के के साथ फेरा या भामर करा देते हैं। विवाहित का अपहरण होने पर खेंका विवाह या झार–फेरा कर देते हैं। यहां पूर्व पति के लिए पंचायत के निर्णयानुसार झगड़ा देना आवश्यक है।

गृह–कलह, बदचलनी या फिर आर्थिक कारणों से होने वाले झगड़ों के कारण पति–पत्नी दोनों एक दूसरे को समाज या पंचायत को बिना बताये छोड़ सकते हैं। ऐसे मामलों में पत्नी भागकर मायके अर्थात् पिता के घर चली जाती है या फिर जिससे मन मिल जाता है उसके घर बैठ जाती है। पूर्व पति झगड़ा वसूलने के लिए जाजम बिछाने का निवेदन पंचायत से करता है। कोई लड़की दूसरी जाति के व्यक्ति के साथ विवाह कर लेती है या उसके घर में बैठ जाती है तो उस व्यक्ति को सहरिया समाज में मिलाने की प्रथा भी है। उस व्यक्ति का गोत्र एवं नाम बदल दिया जाता है। इसके लिए एक रस्म अदा की जाती है जिसे गोत्र मिलाना कहते हैं। उस व्यक्ति को जाति में मिलाने के लिए उसे खुले बदन आंगन में एक खटिया पर बैठा दिया जाता है तथा उस खटिया के नीचे एक बड़ी थाली रख दी जाती है। समाज की कुछ महिलाएं उसके सिर पर पानी डालती हैं। यह पानी कुछ इस तरह डाला जाता है कि सारा पानी थाली में ही इकट्ठा हो। इस स्नान के बाद इस पुरूष को नये कपड़े पहनाये जाते हैं और थाली में से थोड़ा–सा पानी लेकर पंचों के सामने उस पुरूष को पिला दिया जाता है और उसको कोई नया गोत्र एवं नाम दे दिया जाता है। सहरियाओं में सोलंकी, राठौर तथा चौहान जैसे कुछ इसी तरह के गोत्र होते हैं।

इसके विपरीत यदि लड़का इस समाज या गोत्र में नहीं आना चाहता है तो सहरिया लड़की का अपने समाज में आना–जाना बन्द कर देते हैं। इसमें पंचायत का कोई भी जोर नहीं चलता। इसमें विवाह से पूर्व यौन सम्बन्धों को मान्यता नहीं है। जबकि कुछ आदिवासियों में विवाह से पूर्व यौन सम्बन्ध की अनुमति होती है। लमसेना इसका प्रथम उदाहरण माना जा सकता है। कोरकुओं में विवाह से पहले ही लड़की को गर्भधारण करवाना

विवाह का लायसेंस माना जाता है। यदि एक वर्ष में लमसेना ऐसा कर पाता है तो उसका विवाह कर दिया जाता है अन्यथा उसे भगा दिया जाता है। सहरियाओं में लमसेना प्रथा नहीं है लेकिन घर जवाई प्रथा है। घर जवाई न केवल घर संभालता है बल्कि ससुराल की सम्पत्ति पर भी उसका अधिकार होता है। पुत्र न होने की दशा में घर जवाई रखने की आवश्यकता होती है। और कभी–कभी पुत्र गोद लेकर भी वंश को बचाने का प्रयत्न किया जाता है।

सहरिया जनजाति ने हिन्दू विवाह पद्धति तथा रीति–रिवाजों एवं आचरणों को तो कुछ हद तक आत्मसात करने का प्रयास कर किया है किन्तु आज भी वे अपने समाज, रीति–रिवाज एवं मान्यताओं के क्षेत्रियपन के बंधनों से जुड़े हुए हैं। इसीलिए उन्होंने जन्म से लेकर मृत्यु तक के अपने जीवनकाल की लगभग प्रत्येक पद्धति को शत–प्रतिशत आत्मसात किया हुआ है। जबकि आधुनिक मानव सभ्यता ने तो अपनी जीवन–शैली ही नही वरन आधुनिक रीति–रिवाजों को ही प्राथमिकता दे दी है और पुरानी सभ्यता को तो मात्र ''एक पुराना जमाना'' या ''प्राचिन काल की सभ्यता'' का नाम दे दिया है।

गहनों में अनेक प्रकार की धातुओं का प्रयोग होता है पत्थरों से लेकर प्लेटिनम तक के जेवर जो स्त्री और पुरुष दोनों धारण करते है आदिवासी समाज में उनके आसपास मिलने वाली धातुओं और वस्तुओं से ही आभूषण बनाये जाते रहे है. आदिवासी समाज में पत्थर, हड्डी, कोड़ी, और जमीन से मिलने वाले उपरत्न इस्तेमाल होते है.

विवाह संबंध – विभिन्न जनजतियों में विवाह के रस्मोरिवाज भी अलग– अलग हैं। वैवाहिक संबंध प्रायः अंतर्जातीय नहीं होते।

एक ही गोत्र के सदस्यों के बीच विवाह संबंध का पूर्ण निषेध प्रचलित है। विवाह में धन की भी भूमिका होती है। छोटानागपुर में वर पक्ष द्वारा कन्यापक्ष को कन्या – धन देने का रिवाज परंपरा से समर्थित है। हो समाज में इस प्रथा को गोनांग कहते हैं। यह एक प्रकार से दहेज की प्रथा ही है।

छोटानागपुर में विवाह – संस्था की कुछ अपनी रीतियाँ हैं। यथा– देवर और साली से विवाह को सामाजिक मान्यता प्राप्त है। विधवा विवाह काफी प्रचलित है। वधु मूल्य का चलन है, किन्तु, कहीं–कहीं लेन–देन प्रायः नहीं होता। हो जनजाति में ममेरी और फूफेरी बहन से विवाह के उदहारण भी मिलते हैं। खड़िया जनजाति में फूफेरे–चचेरे भाई से विवाह संबंध बनते हैं, जेठसाली या भैंसूर से विवाह मान्य नहीं है। सौरिया पहाड़िया जनजाति में गोत्र नहीं होता, किन्तु निकट संबंधियों में विवाह संबंध नहीं होते। देवर– भाभी का विवाह हो सकता है।

उत्तर – पूर्वी राज्यों में भी विवाह– संस्था की अपनी स्थानीय परम्पराएँ और रीति –रिवाज हैं। मणिपुर में पुरूम, चिरू तथा चोटे जनजातियों में सगोत्र तथा उपसगोत्र जैसे बहिर्विवाह समूह होते हैं विवाह का निर्धारण और नियंत्रण इन्हीं समूहों के आधार पर होता है। भाई तथा बहन को अपनी– अपनी जोड़ी दो अलग सगोत्रों में चुननी पड़ती है। असाम के कछार क्षेत्र में रहने वाली दिमासा कछार जनजाति में वंश का निर्धारण पिता के पिता से या माता की माता से नहीं बल्कि पिता की माता और माता के पिता से लिया जाता है। यह मातृसत्तात्मक और पितृसत्तात्मक व्यवस्था का मिला– जुला रूप है।

जनजातीय समुदायों में परिवार और विवाह की विभिन्न धारणाएँ और प्रथाएँ हैं। छोटानागपुर में 1. क्रय विवाह, 2. सेवा विवाह, 2.

हरण विवाह, 4. हठ विवाह और 5. सह पलायन विवाह की पद्धतियां हैं। उनका विस्तृत अधययन इस अध्ययन का उद्देश्य नहीं है, इसलिए अलग–अलग समुदायों की विवाह – विषयक मान्यताओं और रीति– रस्मों का विवेचन अभीष्ट नहीं है। केवल समानताओं के आधार पर सामान्य विशेषताओं का निर्देश ही किया जा सकता है। जनजातियों में विवाह की प्रथाएँ रोचक और वैविध्यपूर्ण हैं। प्रायः एक विवाह का चलन है, लेकिन बहुविवाह का सम्पूर्ण निषेध नहीं है। कुछ इलाकों में बहुपति प्रथा भी प्रचलित है। बांझपन तथा परपुरूष संबंध के आधार पर आसानी से तलाक दिया जा सकता है।

आदिवासी परंपराएँ

प्राचीनकाल में आदिवासियों ने भारतीय परंपरा के विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया था और उनके रीति रिवाज और विश्वास आज भी हिंदू समाज में देखे जा सकते हैं, तथापि यह निश्चित है कि वे बहुत पहले ही भारतीय समाज और संस्कृति के विकास की प्रमुख धारा में मिल गए थे। आदिवासी समूह हिंदू समाज के अनेक महत्वपूर्ण पक्षों में समान है,कुछ समूहों में कई महत्वपूर्ण अंतर भी हैं। समसामयिक आर्थिक शक्तियों तथा सामाजिक प्रभावों के कारण भारतीय समाज के इन विभिन्न अंगों की दूरी अब कम हो चुकि है।

आदिवासियों की सांस्कृतिक भिन्नता को बनाए रखने में कई प्रयत्नों का योग रहा है। मनोवैज्ञानिक धरातल पर उनमें से अनेक में प्रबल ''जनजाति–भावना'' (ट्राइबल फीलिंग) है। सामाजिक–सांस्कृतिक–धरातल पर उनकी संस्कृतियों के गठन में केंद्रीय महत्व है। असम के नागा आदिवासियों की नरमुंडप्राप्ति प्रथा बस्तर के मुरियों की घोटुल संस्था, टोडा समूह में बहुपतित्व आदि का उन समूहों की संस्कृति में बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान है। परंतु ये संस्थाएँ और प्रथाएँ भारतीय समाज की प्रमुख प्रवृत्तियों के अनुकूल नहीं हैं। आदिवासियों की संकलन–आखेटक–अर्थव्यवस्था तथा उससे कुछ अधिक विकसित अस्थिर और स्थिर कृषि की अर्थव्यवस्थाएँ अभी भी परंपरास्वीकृत प्रणाली द्वारा लाई जाती हैं। परंपरा का प्रभाव उनपर नए आर्थिक मूल्यों के प्रभाव की अपेक्षा

अधिक है। धर्म के क्षेत्र में जीववाद, जीविवाद, पितृपूजा आदि हिंदू धर्म के और समीप लाते है।

आज के आदिवासी भारत में हिन्दू–संस्कृति–प्रभावों की –ष्टि से आदिवासियों के चार–धाम मुख्य धार्मिक स्थलों में से एक है।हिन्दू–संस्कृतियों का स्वीकरण इस मात्रा में कर लिया है कि अब वे केवल नाममात्र के लिए आदिवासी रह गए है।

संत सुरमल दास भील – भीलो के धार्मिक गुरू मतंग ऋषि – आदिवासी गुरु

बैगाओं के प्रमुख देवता बूढ़ा देव हैं। मान्यता है कि वे साल वृक्ष पर रहते हैं उनको मुर्गे नारियल तथा मदिरा चढाई जाती है गांव की भूमि के देवता ठाकुर देव हैं तथा बीमारियों में सुरक्षा के लिये दुल्हादेव की पूजा होती हैं ये लोग सर्प को भी देवता के समान पूजते हैं। 5

बैगा सामाजिक दृष्टि से धुरगोड़ा के समान ही हैं, बैगा समाज के छः विवाह पा्तियॉ प्रचलित है –

1. मंगनी विवाह या चड़ विवाह
2. उठवा विवाह
3. चोर विवाह
4. पैठूल विवाह
5. लमसेना विवाह

विवाह उम्र लड़कों का 14–18 वर्ष तथा लड़कियों का 13–16 वर्ष माना जाता है। विवाह प्रस्ताव वर पक्ष की ओर से होता है। मामा बुआ के लडके लड़कियों के बीच आपस में विवाह हो जाता है। वर पक्ष द्वारा बधू को ''खर्ची'' (बधू धन) के रूप में चावल, दाल,

हल्दी, तेल, गुड़, व नगद कुछ रमक दिया दिया जाता हैं विवाह की रस्म बुजुर्गों की देखरेख में समपन्न होता है। लमसेना (सेवा विवाह) सह–पलायन पेढू विवाह (घूस पैठ) गुरावर (विनिमय) को समाज स्वीकृति प्राप्त है। पुनर्विवाह (खडोनी) भी प्रचलित हैं।

मौनी व्रत :– कुछ बैगा परिवार के लोग मौनीवृत दीपावली के बाद परीवा के दिन मनाते हैं पूरे दिन शांत रहते हैं तथा अपने पशुओं को सजा कर खेत ले जाते हैं, शाम को पूजा कर वृत व मौन तोडते हैं।

हरियारी अमावश :– इस त्यौहार को सावन की अमावश्या को मनाया जाता है। इस त्यौहार को मनाने का उ ेश्य यह प्रार्थना करना है कि ईश्वर हमारे खेतों और पशुओं की रक्षा करें।

गौर चौथ :– यह व्रत कुआंरी लडकियॉ रखती है तथा शिव पार्वती की पूजा करती हैं।

खिचरहाई :– यह त्यौहार मकर संक्रांति के दिन मनाया जाता है इस त्यौहार के दिन लोग नदी में स्थान करते हैं। और देवताओं को जल चढ़ातें हैं इस त्यौहार में खिचड़ी खानें एवं दान करने का महत्व है।

बैगा जनजाति के लोग निगुर्ण ब्रम्ह की उपासना करते हैं निगुर्ण ब्रम्ह का अर्थ है माया से मुक्त होना एवं इसे महादेव अथवा बड़ादेव के नाम से पुकारतें हैं। आदिवासियों के बड़कादेव अथवा बड़ादेव के नाम से पुकारते हैं। आदिवासियों के बड़का देव अव्यक्त सर्वशक्तिमान और अरूप होते हैं।

आदिवासियों को विश्वास कि बडका देव की सत्ता सगुण रूप में प्रकृति की विभिन्न शक्ति युक्त वस्तुओं में व्याप्त है।

बैगा जनजाति के लोग अन्य देवताओं की भी पूजा करते हैं इनमें से भी कुछ शुभ देवता कुछ अशुभ देवता हैं। शुभ देवता के रूप में धरती माता, सूर्य नारायण, अग्निदेवता, जलदेवता, गाय, वृक्ष (पीपल एवं बगरद) की पूजा करते हैं। बैगाओं की मान्यता है कि ये देवता विभिन्न मौंकों पर उनकी मदद करते हैं। अशुभ देवियों की पूजा विभिन्न रोगों से बचने हेतु करते हैं। बूढ़ी माई, कलशहाई माई, मरही, माई आदि।

बैगा जनजाति के लोग ग्राम देवी के रूप में ''खैरमाई'' की पूजा करते हैं। खैरमाई को ठकुराईन के नाम से भी पुकारते हैं। खेर भाई की वेदी आस पास खम्भे लगातें हैं, इनमें सबसे बडा खम्भा बडका देव का होता है जिसमें चिमटा लगाते हैं इसके बांई ओर एक खम्भा लगाते हैं जिनमें चूडियॉ पहनाते हैं। उसके अलावा दूरपतियॉ देवा का एवं उसके लंगूर का खम्भा होता है। विभिन्न मान्यताओं के अनुसार ''धमसान देवी'' बगेसर देवी के भी खम्भे लगायें जाते हैं।

विभिन्न देवी देवताओं के नाम पर आदिवासी लोग अपनें मंदिर को दुल्हादेव का मंदिर, बंगेसर मंदिर, द्योढ़ी, बूढ़ीदाई आदि नामों से पुकारते हैं। 6

उक्त के अलावा हिन्दु संस्कृति से बहुत अधिक घुल मिल जायें के कारण भगवान राम सीता, शिव पार्वती आदि की भी पूजा करते हैं। बैगा जनजाति के लोग जादू टोने पर भी बहुत ज्यादा विश्वास करतें हैं।

बैगा जनजाति के लोग दिशाशूल भी मानते हैं। जैसे पूर्व दिशा में सोमवार व शनिवार तथा ज्येष्ठ नक्षत्र में नहीं जाते, दक्षिण दिशा में गुरूवार को एवं उत्तर दिशा में मंगल एवं बुधवार को नहीं जाते हैं। लेकिन रविवार को घी सोमवार को दूध मंगल को गुड,

बुध को तिल, गुरू को दही, शुक्र को जौं की वस्तु तथा शनिवार को उडद दाल को सेवन करने से दिशाशूल के दोष से मुक्त मानते हैं।

बैगा जनजाति के लोग सुबह के भोजन को ''बांसी'' दोपहर के भोजन को ''पेज'' तथा रात के भोजन को ''बिहार'' कहते हैं। कोदों, कुटकी का भी प्रयोग करते है। त्यौहारों अथवा अवसर पर मुर्गा, भजिया, पूडी, खीर, आदि भी बनातें हैं। मेहमानों के आनें पर बरा विशेष रूप से बनाते हैं एवं शराब भी पीते हैं। शतप्रतिशत बैगा परिवार मांसाहार का सेवन करते हैं।

फिल्म और धारावाहिक – इज्जत फिल्म – 1938 , एकलव्य फिल्म, एकलव्य धारावाहिक, भारत का वीर पुत्र महाराणा प्रताप, टांट्या भील – शॉर्ट फिल्म , भीमा नायक – शॉर्ट फिल्म, सेनापति फिल्म, कन्नप तमिल फिल्म

निहाली – कोरकू जनजाति के लोग मध्यप्रदेश में सतपुड़ा पर्वतमाला के जंगलों से लगे ख्खछिन्दवाड़ा मवासी ,बैतूल जिले की भैंसदेही और चिचोली तहसील में, होशंगाबाद जिले में, भिण्ड जिले में,खण्डवा जिला के खालवा तहसील के समस्त ग्राम एवं सीहोर जिले के दक्षिणी हिस्से में भी पाये जाते हैं।

((हरदा जिले की टिमरनी और खिड़किया तहसील के गाँवों में निवास करती है। इसके अतिरिक्त कोरकू महाराष्ट्र में अकोला, मेलघाट(धारणी तथा चिखलदरा) तथा मोर्शी तालुका अमला में भी रहते हैं।ख1,ख्2,

बैगा (जनजाति)

बैगा – बैगाओं में विधवा विवाह, लमसेना प्रथायें पाई जाती हैं। बैगा लोगों का जीवन अत्यंत सादा होता है बैगा विवाह के

अवसर पर हाथी पर बैठना अवश्य पसंद करता है परंतु आज की दरिद्रावस्था में वह खटिया का हाथी बनाकर आत्म संतोष करता है।

बैगाओं के गॉव सघन वनों के बीच चौरस जमीन खोजकर बसा लिये जाते हैं गांव के सभी मकान एक दूसरे से सटाकर इस प्रकार बनाये जाते हैं कि वे अलग इकाई नहीं लगते हैं। यह संयुक्त अधिवास चारों ओर से बॉस या केतकी की बाडी से घेर दिया जाता है गॉव की सीमा को अत्यंत साफ रखा जाता है। गॉव से बाहर से आनें वाले लोगों को ठहरने के लिये एक चट्टी अलग से बना दी जाती है।

बैगाओं के प्रमुख लोक नृत्य कला विवाह में विलमा नाच, दशहरा में झटपट नाचते हैं छिरता इनकी नृत्य नाटिका है इनके प्रमुख लोकगीत ददरिया, सुआगीत, विवााह गीत, माता–सेवा, फाग आदि हैं। इनके प्रमुख वा। यंत्र मांदर ढोल, टिमकी, नगाडा, किन्नरी टिसकी आदि है।

बैगा जनजाति के लोग हिन्दू धर्म को माननें वाले होते हैं, ये हिन्दुओं के द्वारा मनाये जाने वाले सभी त्यौहारों जैसे दीपावली, दशहरा, होली, रक्षाबंधन, आदि मनाते हैं। इसके अलावा भी बैगा परिवारों द्वारा अन्य त्यौहार मनाये जाते हैं जैसे–

वेदी की पूजा :– यह पूजा वर्ष आरम्भ होने के पूर्व होती है इस पूजा के लिये एक कटोरी में थोडा–थोडा धान कोदो, कुटकी, तिल आदि की फसल बोने हेतु बीज लेकर ठाकुर जी की शरण में जाते हैं। ठाकुर जी को मुर्गे की बलि देने की जगह नारियल सुपाडी ठाकुर जी चढ़ाने लगे हैं। इस बीज को ठाकुर जी का प्रसाद मानकर खेत जोतते समय अपने बीज में मिला लेते हैं।

बैगा युवतियाँ बैगा, भारत के मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ एवं झारखण्ड प्रदेशों में पायी जाने वाली जनजाति है। मध्य प्रदेश के मंडला डिंडोरी तथा बालाघाट जिलों में बैगा लोग बहुत बड़ी संख्या में रहते हैं। बिझवार, नरोतिया, भरोतिया, नाहर, राय भैना और काढ़ भैना इनकी कुछ उपजातियाँ हैं। सन् १९९१ की जनगणना के अनुसार उनकी संख्या 248,949 थी।

सहरिया– सहरिया जनजाति का एक कलाकार स्वांग नृत्य के दौरान सहरिया भारत की एक प्रमुख जनजाति है।

निवास क्षेत्र ये जनजाति मध्य प्रदेश के मध्य भारत के पठार में निवास करती है। ग्वालियर–चम्बल संभाग के जिलों जैसे श्योपुर, शिवपुरी, ग्वालियर में सहरिया आदिवसियों की बड़ी आबादी है। यह जनजाति राजस्थान के बारन जिले में भी पाई जाती है।

सहरिया एक प्रिमिटिव ट्राइब है और इनके लिए स्वास्थ्य सेवाएं पहुँचाना आज भी एक चुनौती है. कुपोषण एक बेहद गंभीर समस्या है जिससे सहरिया ग्रस्त हैं. हाल के वर्षों में सरकार ने गैर–सरकारी संगठनों के साथ मिल कर सहरिया आदिवासी बहुल गाँवों में कुपोषण के निदान और स्वास्थ्य सम्बन्धी मसलों पर बेहतर काम के लिए कोशिश की है।

भारिया दक्षिण मध्यप्रदेश के छिंदवाड़ा शहर से लगभग ७५ किलोमीटर दूरी पर स्थित यह विशालकाय घाटी काधरातल लगभग ३ फीट नीचे है। इस विहंगम घाटी में गोंड और भारिया जनजाति के आदिवासी रहते हैं।इन आदिवासियों के लिए प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधाएँभी उपलब्ध नहीं हैं, किंतु ये आदिवासी आमजनों से ज्यादा तंदुरुस्त हैं। येआदिवासी घने जंगलों, ऊँची–नीची घाटियों पर ऐसे चलते हैं, मानो किसी सड़क परपैदल चला जा रहा हो। आधुनिकीकरण से कोसों दूर

पातालकोट घाटी के आदिवासी आजभी अपने जीवन–यापन की परम्परागत शैली अपनाए हुए हैं। रोजमर्रा के खान–पान से लेकर विभिन्न रोगों के निदान के लिए ये आदिवासी वन संपदा पर ही निर्भरकरते हैं। भुमका वे आदिवासी चिकित्सक होते हैं तो जड़ी–बूटियों से विभिन्नरोगों का इलाज करते हैं। इनका मुख्य भोज्य पदार्थ पेज है इनके मुख्य देवता बूढादेब दूल्हादेव नागदेवता प्रमुख देवतायों की पूजा करते है विवाह– मंगनी विवाह लमसेना विवाह राजी–वाजि विवाह प्रमुख है नृत्य– भड़म कर्रमा शैतम शैला प्रमुख नृत्य है।

जनसंख्या की दृष्टि से भारत का विश्व में दूसरा स्थान है चीन के बाद सबसे अधिक जनसंख्या हमारे देश में ही निवास करती है विश्व के 2.2 प्रतिशत क्षेत्रफल में भारत है इसकी जनसंख्या विश्व का 15 प्रतिशत है जनजातीय समूह की जनसंख्या का अनुपात इसमें महत्वपूर्ण है। सन् 1961 में जनजातीय जनसंख्या लगभग 3 करोड़ थी। जो कि उस समय की कुल आबादी का 6 प्रतिशत थी। यही जनसंख्या 1971 में 3 करोड़ 80 लाख हो गई, जो आबादी के अनुपात से एक प्रतिशत अधिक अर्थात 7 प्रतिशत थी सन् 1981 की जनगणना में यह प्रतिशत बढ़कर कुछ आबादी 7.5 प्रतिशत और 1991 में 7.94 प्रतिशत हो गई है। स्पष्ट है कि जनजातीय जनसंख्या कुल जनसंख्या के अनुपात में निरंतर वृद्धि की ओर उन्मुख है जैसा कि यह तालिका दर्शाती है –

वर्ष	कुल जनंसख्या	अनुसूचितजनजाति	प्रतिशत
1961	4,39,2247,71	28988834	6.6
1971	5,47,9498,09	37972921	6.93

1981	6,82,8100,51	51552159	7.55
1991	8,46,3026,68	67196432	7.94
2001	1,02,8737,436	166655464	16

भारतीय संविधान में अनुसूचित जनजातियों की संख्या 212 बतायी गयी है। 1941 में अनुसूचित जनजातियाँ की लगभग ढाई करोड़ थी 1951 में इनकी जनसंख्या लगभग 1 करोड़ 91 लाख रह गई इस कमी का कारण भारत का विभाजन है। जिसके परिणाम स्वरूप कुछ जनजातियों की जनसंख्या 2 करोड़ 99 लाख थी जो 1971 में 4.11 करोड़ हो गयी। 1981 की जनगणना के अनुसार भारत में जनजातीय जनसंख्या 5.16 करोड थी जबकि 1991 में यह बढ़कर 6.78 करोड़ हो गयी। वर्तमान में यह 8 करोड़ से अधिक ही है।

भारत के सभी राज्यों में से 3 राज्य ऐसे हैं जहां पर जनजातियां नहीं है। इसी प्रकार केन्द्र शासित 7 प्रदेशों में भी 3 प्रदेशो ऐसे है जहां पर जनजातियों की संख्या नहीं के बराबर है। इस प्रकार कहा जा सकता हैं कि भारत के विभिन्न राज्यों में जनजातीय जनसंख्या का वितरण असामान्य है। भारत के अधिक जनसंख्या वाले राज्यों में मध्यप्रदेश ही वह राज्य है जिसमें सबसे अधिक जनजातीय जनसंख्या है।

भील इतिहास भीलों का अपना एक लम्बा इतिहास रहा है। कुछ इतिहासकारो ने भीलों को द्रविड़ों से पहले का भारतीय निवासी माना तो कुछ ने भीलों को द्रविड़ ही माना है। मध्यकाल में भील राजाओं की स्वतंत्र सत्ता थी। करीब 11 वी सदी तक भील राजाओं का शासन विस्तृत क्षेत्र में फैला था। इतिहास में अन्य

जनजातियों जैसे कि मीना आदि से इनके अच्छे संबंध रहे है। 6 ठी शताब्दी में एक शक्तिशाली भील राजा का पराक्रम देखने को मिलता है जहां मालवा के भील राजा हाथी पर सवार होकर विंध्य क्षेत्र से होकर युद्ध करने जाते हैं। जब सिकंदर ने मिनांडर के जरिए भारत पर हमला किया इस दौरान शिवी जनपद का शासन भील राजाओं के हाथो में था। भील पूजा और हिन्दू पूजा में काफी समानतऐ मिलती।

इडर में एक शक्तिशाली भील राजा हुए जिनका नाम राजा मांडलिक रहा । राजा मांडलिक ने ही गुहिल वंश अथवा मेवाड़ के प्रथम संस्थापक राजा गुहादित्य को अपने इडर राज्य मे रखकर संरक्षण किया । गुहादित्य राजा मांडलिक के राजमहल मे रहता और भील बालको के साथ घुड़सवारी करता , राजा मांडलिक ने गुहादित्य को कुछ जमीन और जंगल दिए , आगे चलकर वही बालक गुहादित्य इडर साम्राज्य का राजा बना । गुहिलवंश की चौथी पीढ़ी के शासक नागादित्य का व्यवहार भील समुदाय के साथ अच्छा नहीं था इसी कारण भीलों और नागादित्य के बीच युद्ध हुआ और भीलों ने इडर पर पुनः अपना अधिकार कर लिया । बप्पा रावल का लालन – पालन भील समुदाय ने किया और बप्पा को रावल की उपाधि भील समुदाय ने ही दी थी । बप्पारावल ने भीलों से सहयोग पाकर अरबों से युद्ध किया । खानवा के युद्ध में भील अपनी आखरी सांस तक युद्ध करते रहे।

बाबर और अकबर के खिलाफ मेवाड़ राजपूतो के साथ कंधे से कंधा मिलाकर युद्ध करने वाले भील ही थे ।

गुजरात के डांग जिले के पांच भील राजाओं ने मिलकर अंग्रेजो को युद्ध में हरा दिया,लश्करिया अंबा में सबसे बड़ा युद्ध हुए, इस

युद्ध को डांग का सबसे बड़ा युद्ध कहा जाता है। डांग के यह पांच भील राजा भारत के एकमात्र वंशानुगत राजा है और इन्हें भारत सरकार की तरफ से पेंशन मिलती हैं, आजादी के पहले ब्रिटिश सरकार इन राजाओं को धन देती थी।

राजस्थान में मेवाड़ भील कॉर्प है।

भील लोग आम जनता की सुरक्षा करते थे और यह भोलाई नामक कर वसूलते थे । शिसोदा के भील राजा रोहितास्व भील रहे थे । अध्याय प्रथम वागड़ के आदिवासी नररचय एवं अवधारणा – मध्यप्रदेश में मालवा पर भील राजाओं ने लंबे समय तक शासन किया , आगर ,झाबुआ,ओम्कारेश्वर,अलीराजपुर पर भील राजाओं ने शासन किया । इंदौर स्थित भील पल्टन का नाम बदलकर पुलिस प्रशिक्षण वि।ालय रखा , मध्यप्रदेश राज्य गठन के पूर्व यहां भील सैना प्रशिक्षण केंद्र था। मालवा की मालवा भील कॉर्प थी।

छत्तीसगढ़ का प्रमुख शहर भिलाई का नामकरण भील समुदाय के आधार पर ही हुआ है।

महाराष्ट्र में कई भील विद्रोह हुए जिनमें खानदेश का भील विद्रोह प्रमुख रहा ।

1564 में तालिकोट का युद्ध अहमदाबाद और विजयनगर के मध्य हुआ , इस युद्ध में सुर्यकेतू के सेनापति ने उसके साथ विश्वासघात किया था , सूर्य केतु ने अपने पुत्र के एक भील सरदार के हाथो में सौंप दिया ख18,।

सिंधु घाटी सभ्यता – सिंघु घाटी सभ्यता पर हो रहे शोध के दौरान वह से भगवान शिव और नाग के पूजा करने के प्रमाण मिले है साथ ही साथ बैल ,सूअर ,मछली , गरुड़ आदि के साथ

– साथ प्रकृति पूजा के प्रमाण मिले है उस आधार पर शोधकर्ताओं के अनुसार सिंधु घाटी सभ्यता के लोग भील प्रजाति के ही थे। भील प्रजाति अपने आप में एक विस्तृत शब्द है जिसमें निषाद , शबर , किरात , पुलिंद , यक्ष , नाग और कोल , आदि सम्मिलित है । इतिहासकारों ने माना कि करोड़ों वर्ष पूर्व भील प्रजाति के लोग यही पर वानर के रूप जन्मे और निरंतर विकासक्रम के बाद वे होमो सेपियन बने , धीरे – धीरे यही लोग एक जगह बस गए और गणराज्य स्थापित किया , इनके शासक हुआ करते थे , सरदार के आज्ञा के बगैर कोई कुछ नहीं कर सकता था । भील प्रजाति के लोग धनुष का उपयोग करते थे , समय के साथ उन्होंने नाव चलना सीख ली और वे हिंदेशिया की तरफ आने वाले पहले लोग थे , ये भील प्रजाति के लोग मिश्र से लेकर लंका तक फैले हुए थे , इन्होंने ही सिंधु घाटी सभ्यता बसाई , जब फारस , इराक में बाढ आई तब वह के लोग भारत की तरफ आए , यहां के मूलनिवासियों ने उनकी सहायता करी , लेकिन उन लोगो ने भारत पर कब्जा जमाना शुरू कर दिया , भील प्रजाति के शासकों के साथ छल – कपट कर उन्हें धोखे से हरा दिया फिर यही भील प्रजाति के लोग धीरे – धीरे बिखर गए ।

आदिवासी त्योहार

मेघनाथ – फाल्गुन के पहले पक्ष में यह पर्व गोंड आदिवासी मनाते हैं। इसकी कोई निर्धारित तिथि नही है। मेघनाद गोंडों के सर्वोच्च देवता हैं चार खंबों पर एक तख्त रखा जाता है जिसमें एक छेद कर पुनः एक खंभा लगाया जाता है और इस खंबे पर एक बल्ली आड़ी लगाई जाती है। यह बल्ली गोलाई में घूमती है। इस घूमती बल्ली पर आदिवासी रोमांचक करतब दिखाते हैं। नीचे

बैठे लोग मंत्रोच्चारण या अन्य विधि से पूजा कर वातावरण बनाकर अनुष्ठान करते हैं। कुछ जिलों में इसे खंडेरा या खट्टा नाम से भी पुकारते हैं।

हरेली या हरीरी :– किसानों के लिए इस पर्व का विशेष महत्व है। वे इस दिन अपने कृषि उपयोग में आने वाले उपकरणों की पूजा करते हैं। श्रावण माह की अमावस्या को यह पर्व मनाया जाता है। मंडला जिले यह इसी माह की पूर्णिमा को तथा मालवा क्षेत्र में अषाढ़ के महीने में मनाया जाता है। मालवा में इसे"हर्यागोधा" कहते हैं। स्त्रियां इस दिन व्रत रखती हैं।

गंगा दशमी – सरगुजा जिले में आदिवासियों और गैर आदिवासियों द्वारा खाने, पीने और मौज करने के लिए मनाया जाने वाला यह उत्सव जेठ (मई–जून) माह की दसवीं तिथि को पड़ता है।

संजा – संजा अश्विन माह में 16 दिन तक चलने वाला कुआंरी लड़कियों का उत्सव है। लड़कियां प्रति दिन दीवार पर नई–नई आकृतियाँ बनाती हैं और सायं एकत्र होकर गीत गाती हैं।

बुन्देलखण्ड क्षेत्र की लड़कियों का ऐसा ही एक पर्व है मामुलिया। किसी वृक्ष की टहनी या झाड़ी (विशेषकर नींबू) को रंगीन कुरता या ओढ़नी पहनाकर उसमें फूलों को उलझाया जाता है। सांझ को लड़कियां इस डाली को गीत गाते हुए किसी नदी या जलाशय में विसर्जित कर देती हैं।

काकसार – स्त्री व पुरूषों को एकान्त प्रदान करने वाला यह पर्व अबूझमाड़िया आदिवासियों का प्रमुख पर्व है। इसकी विशेष बात यह है कि युवा लड़के–लड़कियां एक दूसरे के गांवों में नृत्य करते पहुंचते हैं। वर्षा की फसलों में जब तक बालियां नही

फूटती अबूझमाड़िया स्त्री–पुरूषों में एकान्त में मिलना वर्जित होता है।काकसार उनके इस व्रत को तोड़ने का उपयुक्त अवसर होता है। काकसार में लड़के और लड़कियां अलग–अलग घरों में रात भर नाचते और आनन्द मनाते हैं। कई अविवाहित युवक–युवतियों को अपने लिए श्रेष्ठ जीवन साथी का चुनाव करने में यह पर्व सहायक सिद्ध होता है।

रत्नावा –मंडला जिले के बैगा आदिवासियों का यह प्रमुख त्यौहार है। बैगा आदिवासी इस पर्व के संबंध में अपने पुराण पुरूष नागा–बैगा से बताते हैं। इस बारे में बड़ी रोचक कथा प्रचलित है– एक बार मोहती और अन्हेरा झाड़ियों में लगी शहद से एक बूंद शहद जमीन पर जा गिरी।

नागा–बैगा ने उसे उठाकर चख लिया। चखते ही सारी मधुमक्खियां बाघ बन गई। बैगा जान बचाकर भागा। जब वह घर पहुंचा, तो देखा कि सारा घर मधुमक्खियों से भरा है। उसने मधुमक्खियों को वचन दिया कि वह हर नौवें वर्ष उनके पूजन का आयोजन करेगा तब ही उसका छुटकारा हुआ।

लारूकास –गोंडों का नारायण देव के सम्मान में मनाया जाने वाला यह पर्व सुअर के विवाह का प्रतीक माना जाता है। आज कल यह पर्व शनैः–शनैः लुप्त होता जा रहा है। इस उत्सव में सुअर की बलि दी जाती है। परिवार की समृद्धि और स्वास्थ्य के लिए इस तरह का आयोजन एक निश्चित अवधि के बाद करना आवश्यक होता है।

बंडी – जनवरी से अप्रैल के बीच दक्षिण मध्य प्रदेश के अनेकों क्षेत्रों में जहां गोंड और उनकी उपजाति रहती है मड़ई का आयोजन किया जाता है यहां 10 से 12 दिन चलता है मड़ई के दौरान देवी के समक्ष बकरे की बलि दी जाती है उसी दौरान

आदिवासी अपनी औकात देव के प्रति व्यक्ति का प्रदर्शन करते हैं मड़ई के दिनों में रात्रि को नृत्य किया जाता है।नीरजा के नौ दिनों में लड़कियां घड़ल्या भी मानती हैं। समूह में लड़कियां, एक लड़की के सिर पर छिद्रयुक्त घड़ा रखती है जिसमें दीपक जल रहा होता है। फिर दरवाजे–दरवाजे जाती हैं और अनाज या पैसा एकत्र करती है। अविवाहित युवक भी इस तरह का एक उत्सव "छला" के रूप में मनाते हैं।

सुआरा– बुंदेलखण्ड क्षेत्र का "सुआरा" पर्व मालवा के घड़ल्या की तरह ही है। दीवार से लगे एक चबूतरे पर एक राक्षस की प्रतिमा बैठाई जाती है। राक्षस के सिर पर शिव–पार्वती की प्रतिमाएं रखी जाती है। दीवार पर सूर्य और चन्द्र बनाए जाते हैं। इसके बाद लड़कियां पूजा करती हैं और गीत गाती हैं। नई फसल पकने पर दीपावली के बाद यह पर्व मनाया जाता है कहीं–कहीं यह छोटी दीपावली कहलाती है !

रानोता –यह बैगा आदिवासियों का प्रमुख त्योहार है इस पर्व का संबंध नागा वेगा से है इस अवसर पर मधुमक्खियों की पूजा की जाती है !

करमा– हरियाली आने की खुशी में यह त्यौहार मुख्य रूप से उरांव मनाते हैं जब धान रोपने के लिए तैयार हो जाते हैं तब यह उत्सव मनाया जाता है और करमा नृत्य किया जाता है !

सरहुल–यह उरांव जनजाति का महत्वपूर्ण त्यौहार है इस अवसर पर प्रतीकात्मक रुप से सूर्य देव और धरती माता का विवाह रचाया जाता है मुर्गे की बलि दी जाती अप्रैल के आरंभ में साल वृक्ष के फलने पर यह त्यौहार मनाया जाता है !

विशेषताएं – नंदनाप्रिंट साड़ीया – नीमच की भील महिलाए नंदनाप्रिंट साड़ियां पहनती है

भीलो के प्रमुख मुद्दे

भील प्रदेश – भील जनजाति करीब 30 वर्षों से भी अधिक समय से भील प्रदेश राज्य बनाने के लिए आंदोलन कर रही है , भील प्रदेश काफी पुराना मामला है , पहले जन्हा जंहा भीलों का शासन था , अथवा भीलों की जनसंख्या अधिक थी वह क्षेत्र भील प्रदेश कहलाता था , लेकिन जैसे जैसे भीलों का राजपाठ छीना गया , वैसे ही भील प्रदेशों के नाम बदल दिए गए । प्राचीन समय में भील देश विस्तृत क्षेत्र में फैला था । भील देश हिमालय क्षेत्र , उत्तराखंड, उत्तरप्रदेश ,बिहार , नेपाल ,बांग्लादेश , राजस्थान , मध्यप्रदेश , झारखंड , छत्तीसगढ़ , गुजरात , मध्यप्रदेश , पूर्वी मध्यप्रदेश, कर्नाटक व आंध्र प्रदेश के बड़े भाग शामिल थे ।

भील रेजिमेंट – भील भारत देश में एक भील रेजिमेंट चाहते है ,

सिंगाही एक समय उत्तरप्रदेश का सिंगाही क्षेत्र भील शासकों के खेरगढ़ राज्य की राजधानी हुआ करता था , खेरगढ उस दौरान नेपाल तक फैला था , हाल ही में इस क्षेत्र से खुदाई के दौरान भील युग कालीन मूर्तियां प्राप्त हुई जो उस दौरान के भील इतिहास को बयां करती है , लेकिन सरकार उस क्षेत्र संबंधित विकास कार्य नहीं कर रही है ।

सिंधु घाटी सभ्यता – सिंधु घाटी सभ्यता पर हो रहे शोध से पता चला है कि , सिंधु घाटी सभ्यता भील और अन्य आदिवासियों की सभ्यता थी , भीलों ने हजारों वर्ष पूर्व विशाल किले , महल , घर,

नहरे , कुएं और अन्य विकास कार्य कर लिए थे , लेकिन सरकार स्कूल पाठ्यक्रम में यह सब सामिल नहीं कर रही है ।

आदिवासी क्षेत्र जनहा आदिवासियों की आबादी अधिक है , उस क्षेत्र को संविधान के अनुसार , आदिवासी क्षेत्र घोषित किया जाए, ताकी मूलनिवासी लोगो का सही मायने में विकास हो सके , उनके अधिकारों की रक्षा हो सके ।

भील आन्दोलन – 1632 का भील विद्रोह = 1632 के समय भारत में मुगल सत्ता स्थापित थी , उस दौरान प्रमुख रूप से भीलों ने मुगलों का विद्रोह किया ।

1643 = 1632 के बाद भील और गोंड जनजाति ने मिलकर मुगलों के खिलाफ 1643 में विद्रोह किया ।

1857 के पूर्व भीलों के दो अलग–अलग विद्रोह हुए। महाराष्ट्र के खानदेश में भील काफी संख्या में निवास करते हैं। इसके अतिरिक्त उत्तर में विंध्य से लेकर दक्षिण पश्चिम में सहाद्रि एवं पश्चिमी घाट क्षेत्र में भीलों की बस्तियाँ देखी जाती हैं। 1816 में पिंडारियों के दबाव से ये लोग पहाड़ियों पर विस्थापित होने को बाध्य हुए। पिंडारियों ने उनके साथ मुसलमान भीलों के सहयोग से क्रूरतापूर्ण व्यवहार किया। इसके अतिरिक्त सामन्ती अत्याचारों ने भी भीलों को विद्रोही बना दिया। 1818 में खानदेश पर अंग्रेजी आधिपत्य की स्थापना के साथ ही भीलों का अंग्रेजों से संघर्ष शुरू हो गया। कैप्टेन बिग्स ने उनके नेताओं को गिरफ्तार कर लिया और भीलों के पहाड़ी गाँवों की ओर जाने वाले मार्गों को अंग्रेजी सेना ने सील कर दिया, जिससे उन्हें रसद मिलना कठिन हो गया। दूसरी ओर एलफिंस्टन ने भील नेताओं को अपने पक्ष में करने का प्रयास किया और उन्हें अनेक प्रकार की रियायतों का

आश्वासन दिया। पुलिस में भर्ती होने पर अच्छे वेतन दिये जाने की घोषणा की। किंतु अधिकांश लोग अंग्रेजों के विरुद्ध बने रहे।

1819 में पुनः विद्रोह कर भीलों ने पहाड़ी चौकियों पर नियंत्रण स्थापित कर लिया। अंग्रेजों ने भील विद्रोह को कुचलने के लिए सतमाला पहाड़ी क्षेत्र के कुछ नेताओं को पकड़ कर फाँसी दे दी। किंतु जन सामान्य की भीलों के प्रति सहानुभूति थी। इस तरह उनका दमन नहीं किया जा सका। 1820 में भील सरदार दशरथ ने कम्पनी के विरुद्ध उपद्रव शुरू कर दिया। पिण्डारी सरदार शेख दुल्ला ने इस विद्रोह में भीलों का साथ दिया। मेजर मोटिन को इस उपद्रव को दबाने के लिए नियुक्त किया गया, उसकी कठोर कार्रवाई से कुछ भील सरदारों ने आत्मसमर्पण कर दिया।

1822 में भील नेता हिरिया भील ने लूट–पाट द्वारा आतंक मचाना शुरू किया, अतरू 1823 में कर्नल राबिन्सन को विद्रोह का दमन करने के लिए नियुक्त किया। उसने बस्तियों में आग लगवा दी और लोगों को पकड़–पकड़ कर क्रूरता से मारा। 1824 में मराठा सरदार त्रियंबक के भतीजे गोड़ा जी दंगलिया ने सतारा के राजा को बगलाना के भीलों के सहयोग से मराठा राज्य की पुनर्स्थापना के लिए आह्वान किया। भीलों ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया एवं अंग्रेज सेना से भिड़ गये तथा कम्पनी सेना को हराकर मुरलीहर के पहाड़ी किले पर अधिकार कर लिया। परंतु कम्पनी की बड़ी बटालियन आने पर भीलों को पहाड़ी इलाकों में जाकर शरण लेनी पड़ी। तथापि भीलों ने हार नहीं मानी और पेडिया, बून्दी, सुतवा आदि भील सरदार अंग्रेजों के खिलाफ संघर्ष करते रहे। कहा गया है कि लेफ्टिनेंट आउट्रम, कैप्टेन रिगबी एवं ओवान्स ने समझा बुझा कर तथा भेद नीति द्वारा विद्रोह को दबाने का प्रयास किया। आउट्रम के प्रयासों से

अनेक भील अंग्रेज सेना में भर्ती हो गये और कुछ शांतिपूर्वक ढंग से खेती करने लगे। उन्हें तकाबी ऋण दिलवाने का आश्वासन दिया।

भील विद्रोह पर रवीन्द्रनाथ की बड़ी बहन स्वर्ण कुमारी ने विद्रोह उपन्यास की रचना

एक भील कन्या

भीलों के पास समृद्ध और अनोखी संस्कृति है। भील अपनी पिथौरा पेंटिंग के लिए जाना जाता है। घूमर भील जनजाति का पारंपरिक लोक नृत्य है।ख63,ख64, घूमर नारीत्व का प्रतीक है। युवा लड़कियां इस नृत्य में भाग लेती हैं और घोषणा करती हैं कि वे महिलाओं के जूते में कदम रख रही हैं।

कला – भील पेंटिंग को भरने के रूप में बहु–रंगीन डॉट्स के उपयोग की विशेषता है। भूरी बाई पहली भील कलाकार थीं, जिन्होंने रेडीमेड रंगों और कागजों का उपयोग किया था।

अन्य ज्ञात भील कलाकारों में लाडो बाई , शेर सिंह, राम सिंह और डब्बू बारिया शामिल हैं।

भोजन– भीलों के मुख्य खा। पदार्थ मक्का , प्याज , लहसुन और मिर्च हैं जो वे अपने छोटे खेतों में खेती करते हैं। वे स्थानीय जंगलों से फल और सब्जियां एकत्र करते हैं। त्योहारों और अन्य विशेष अवसरों पर ही गेहूं और चावल का उपयोग किया जाता है। वे स्व–निर्मित धनुष और तीर, तलवार, चाकू, गोफन, भाला, कुल्हाड़ी इत्यादि अपने साथ आत्मरक्षा के लिए हथियार के रूप में रखते हैं और जंगली जीवों का शिकार करते हैं। वे महुआ (मधुका लोंगिफोलिया) के फूल से उनके द्वारा आसुत शराब का उपयोग करते हैं। त्यौहारों के अवसर पर पकवानों से भरपूर

विभिन्न प्रकार की चीजें तैयार की जाती हैं, यानी मक्का, गेहूं, जौ, माल्ट और चावल। भील पारंपरिक रूप से सर्वाहारी होते हैं।

आस्था और उपासना –भीलों के प्रत्येक गाँव का अपना स्थानीय देवता (ग्रामदेव) होते है और परिवारों के पास भी उनके जतीदेव, कुलदेव और कुलदेवी (घर में रहने वाले देवता) होते हैं जो कि पत्थरों के प्रतीक हैं। श्भाटी देवश और भीलट देव उनके नाग–देवता हैं। बाबा देव उनके ग्राम देवता हैं। बाबा देव का प्रमुख स्थान झाबुआ जिले के ग्राम समोई में एक पहाड़ी पर है।भील बड़े अंधविश्वासी होते है। करकुलिया देव उनके फसल देवता हैं, गोपाल देव उनके देहाती देवता हैं, बाग देव उनके शेर भगवान हैं, भैरव देव उनके कुत्ते भगवान हैं। उनके कुछ अन्य देवता हैं इंद्र देव, बड़ा देव, महादेव, तेजाजी, लोथा माई, टेकमा, ओर्का चिचमा और काजल देव।

उन्हें अपने शारीरिक, मानसिक और मनोवैज्ञानिक उपचारों के लिए अंधविश्वासों और भोपों पर अत्यधिक विश्वास है।

फागुनी रंगों से लदे सखूआ का त्यौहार सरहुल

1. भूमिका
2. परिचय

भूमिका फाल्गुनी रंगों से सजा– संवरा चौत का महिना आया और सखूआ के पेड़ फूलों से लद गए। पर्व– त्योहारों के ताने–बानों से सुवासित झारखंडी आदिवासियों के जीवन चक्र में और एक ऋतुपर्व आ गया – सरहुल। इस पर्व के नाम मात्र से जीवन समर्थक, प्रकृति प्रेमी, नैसर्गिक गुणों के धनी और पर्यावरण के स्वभाविक रक्षक आदिवासियों का मन–दिल रोमांचित हो उठता

है। उन फूलों की भीनी–भीनी महक सारे वातावरण को सुरभित कर पर्व के आगमन का संकेत दे जाती है।

परिचय सरहुल चौत महीने के पांचवे दिन मनाया जाता है। इसकी तैयारी सप्ताह भर पहले ही शुरू हो जाती है। प्रत्येक परिवार से हंडिया बनाने के लिए चावल जमा किए जाते हैं। पर्व के पूर्व संध्या से पर्व के अंत तक पहान उपवास करता है। एक सप्ताह पूर्वसूचना के अनुसार पूर्व संध्या गाँव की 'डाड़ी' साफ की जाती है। उसमें ताजा डालियों डाल की जाती है। उसमें ताजा डालियाँ डाल दी जाती हैं जिससे पक्षियाँ और जानवर भी वहाँ से जल न पी सकें।

पर्व के प्रातः मुर्गा बांगने के पहले ही पूजार दो नये घड़ों में 'डाड़ी' का विशुद्ध जल भर कर चुपचाप सबकी नजरों से बचाकर गाँव की रक्षक आत्मा, सरना बुढ़िया, के चरणों में रखता है। उस सुबह गाँव के नवयुवक चूजे पकड़ने जाते हैं। चेंगनों के रंग आत्माओं के अनुसार अलग–अलग होते है। किसी – किसी गाँव में पहान और पूजार ही पूजा के इन चूजों को जमा करने के लिए प्रत्येक परिवार जाते हैं।

दोपहर के समय पहान और पूजार गाँव की डाड़ी झरिया अथवा निकट के नदी में स्नान करते हैं। किसी – किसी गाँव में पहान और उसकी नदी में स्नान करते हैं। किसी – किसी गाँव में पहान और उसकी पत्नी को एक साथ बैठाया जाता है। गाँव का मुखिया अथवा सरपंच उनपर सिंदुर लगाता है। उसके बाद उन पर कई घड़ों डाला जाता है। उस समय सब लोग " बरसों,बरसों" कहकर चिल्लाते हैं। यह धरती और आकाश की बीच शादी का प्रतीक है।

उसके बाद गाँव से सरना तक जूलूस निकला जाता है। सरना पहूंचकर पूजा–स्थल की सफाई की जाती है। पूजार चेंगनों के पैर धोकर उन पर सिंदुर लगाता है और पहान को देता है। पहान सरना बुढ़िया के प्रतीक पत्थर के सामने बैठकर चेंगनो को डेन के ढेर से चुगाता है। उस समय गाँव के बुजुर्ग वर्ग अन्न के दाने उन पर फेंकते हुए आत्माओं के लिए प्रार्थनाएँ चढाते हैं कि वे गाँव की उचित रखवाली करें। उसके बाद पहान चेंगनों का सिर काट कर कुछ खून चावल के ढेर पर और कुछ सूप पर चढ़ता है। बाद में उन चेंगनो को पकाया जाता है। सिर को सिर्फ पहान खा सकता है। कलेजे यकृत आदि आत्माओं में नाम पर चढ़ाये जाते हैं। बाकी मांस चावल के साथ पकाकर उपस्थित सब लोगों के बीच प्रसाद के रूप में बाँटा जाता है।

ईश्वर की सर्वोच्च सत्ता ख्याल रख कर उनके नाम पर अलग सफेद बलि चढ़ायी जाती है जो पूर्णता और पवित्रता का प्रतिक है। अन्य आत्माओं के नाम पर अलग – अलग रंगों के चिंगने चढ़ाये जाते हैं। पहान पूर्व की पर देखते हुए ईश्वर है। हे पिता, आप ऊपर हैं, "यहाँ नीचे पंच है और ऊपर परमेश्वर है। हे पिता आप ऊपर हैं हम नीचे। आप की आंखे हैं, हम अज्ञानी हैं। चाहें अनजाने अथवा अज्ञानतावश हमने आत्माओं को नाराज किया है, तो उन्हें संभाल कर रखिए। हमारे गुनाहों को नजरंदाज कर दीजिए।" प्रसाद भोज समाप्त होने के बड पहान को समारोह पूर्वक गाँव के पंचगण ढोते हैं। इस समय पहान सखूआ गाछ को सिंदुर लगाता और अरवा धागा से तीन बार लपेटता है जो अभीष्ट देवात्मा को शादी के वस्त्र देने का प्रतीक है। कई जगहों में पहान सखूआ फूल, चावल और पवित्र जल प्रत्येक घर के एक प्रतिनिधि को वितरित करता है। उसके बाद सब घर लौटते हैं। पहान को एक भी व्यक्ति के कंधे पर बैठाकर हर्सोल्लास गाँव

लाया जाता है। उसके पाँव जमीन पर पड़ने नहीं दिए जाते हैं, चूंकि वह अभी ईश्वर का प्रतिनिधि है। घर पहुँचने पर पहान की पत्नी उसका पैर धोती है और बदले में सखूआ फूल, चावल और सरना का आशीष जल प्राप्त करती है। वह फूलों को घर के अंदर, गोहार घर में और छत में चुन देती है। पहान के सिर पर कई घड़े पानी डालते वक्त लोग फिर चिल्लाते हुए कहते हैं, – 'बरसों, बरसो'।

दुसरे दिन पहान प्रत्येक परिवार में जाकर सखूआ फूल सूप से चावल और घड़े से सरना जल वितरित करता है। गाँव की महिलाएँ अपने–अपने आंगन में एक सूप लिए खड़ी रहती हैं। सूप में दो दोने होते हैं। एक सरना जल ग्रहण करने के लिए खाली होता है दूसरे में पाहन को देने के लिए हंडिया होता है। सरना जल को घर में और बीज के लिए रखे गए धन पर छिड़का जाता है। इस प्रकार पहान हरेक घर को आशीष देते हुए कहता है, "आपके कोठे और भंडार धन से भरपूर होन, जिससे पहान का नाम उजागर हो।" प्रत्येक परिवार में पहान को नहलाया जाता है। वह भी अपने हिस्से का हंडिया प्रत्येक परिवार में पीना नहीं भूलता है। नहलाया जाना और प्रचुर मात्रा में हंडिया पीना सूर्य और धरती को फलप्रद होने के लिए प्रवृत करने का प्रतीक है। सरहुल का यह त्यौहार कई दिनों तक खिंच सकता है चूंकि बड़ा मौजा होने से फूल, चावल और आशीषजल के वितरण में कई दिन लग सकते हैं।

सरहूल पर्व में सखूआ के फूलों का ही प्रयोग अपने में चिंतन का विषय है। आदिवासी जन जीवन में सखुए पेड़ की अति महत्ता है। सखुए की पत्ती, टहनी, डालियाँ, तने, छाल, फल आदि सब कुछ प्रयोग में लाये जाते हैं। पत्तियों का प्रयोग पत्तल दोना,

पोटली आदि बनाने में होता है। दतवन, जलावन, छमड़ा बैठक, सगुन निकालने, भाग्य देखने आदि में सखुए की डाली, टहनी, लकड़ी का ही प्रयोग किया जाता है। सखुए की पत्ती, डाली लकड़ी आदि के बिना आदिवासी जन– जीवन की कल्पना करना असम्भव–सा है। जन्म से लेकर मृत्यु के बाद भी सखुए वृक्ष का विशेष स्थान है ऐसा ही सटीक विचार आदिवासी जनजीवन के पारखी मीकर रोशनार ने अपनी पुस्तक "द फ्लाइंग हॉर्स ऑफ धर्मेस" में रखा है। इसी लिए सखुए का पेड़ आदिवसियों के लिए सुरक्षा, शांति, खुशहाल जीवन का प्रतीक माना गया है, तो उचित ही है।

सरहुल पर्व में प्रयुक्त कुछ प्रतीकों पर गौर किया जाए तो आदिवासियों की प्रकृति प्रेमी अध्यात्मिकता, सर्वव्यापी ईश्वरीय उपस्थिति का एहसास, ईश्वरीय उपासना में सृष्टि की सब चीजों, जीव– जन्तुओं आदि का सामंजस्यपूर्ण सहअस्तित्वा का मनोभाव निखर उठता है। उदारहण के तौर पर प्रत्येक परिवार से चावल जमा किया जाना और प्रतिनिधियों की उपस्थिति उनकी सहभागिता एवं सामुदायिक आध्यात्मिकता के एकत्व भाव को दर्शाता है। डाड़ी की सफाई एवं पूजा के लिए जल ले जाने तक उसकी रक्षा करना ईश्वर के प्रति उनकी श्रद्धा और निष्ठा का परिचायक है।

जीवन के श्रोत, पवित्र ईश्वर को वे विशुद्ध जल ही चढ़ा सकते हैं। नया घड़ा, सबकी नजरों से बचाकर सरना तक पहूँचाना, रास्ते में किसी से बातें नहीं करना, पहान द्वारा उपवास करना आदि उनकी पवित्रता के मनोभावों की ही दर्शाते हैं। कई चेंगनों की बलि गाँव के बच्चें– बच्चियों का प्रतीकात्मक चढ़ावा है जिसके द्वारा उनकी सुरक्षा और समृद्धि की कामना की जाती है।

सर्वोच्च ईश्वर के लिए मात्र सफेद बलि भी पवित्रता और पूर्णता का बोध कराती है। पहान और उसकी पत्नी की प्रतीकात्मक शादी, जल उड़ेला जाना, हंडिया पिलाना आदि धरती और आकाश अथवा सूर्य की शादी, अच्छी वर्षा की कामना, उर्वरा और सम्पन्नता की कामना का प्रतिक है। फूल, चावल आर सरना जल खुशी, पूर्णता, जीवन और ईश्वर की बरकत का बोध कराते हैं जिसके लिए पहान प्रत्येक परिवार में प्रर्थना करता है। पहान को समारोह के साथ ढोकर सरना से गाँव तक लाना ईश्वर को ही आदर देना है जिसमें अपनी निष्ठा, श्रद्धा, भक्ति और समर्पण दर्शाकर जाति की निष्ठा, भक्ति और समर्पण को दर्शाया जाता है। सरना जल से बीज के लिए सुरक्षित धान को आशीष देना भी ईश्वर में उनकी निष्ठा और उसकी बरकत में निर्भरता को दर्शाता है। इस प्रकार देखा जाए तो सरहुल मात्र फूलों, खुशियों और बहारों को पर्व नहीं है। यह आदिवासियों की संस्कृति एवं धर्म की मूल आध्यात्मिकता को ही व्यक्त करने का पर्व है। इस पर्व के बाद ही वे अन्य फूलों को घर में ला सकते हैं, बीज बोना शुरू कर सकते हैं, अन्य पत्तियों का प्रयोग कर सकते है।

वर्त्तमान में दूषित पर्यावरण, उजड़ते जंगलों के कुप्रभावों को देखते हुए समस्त मानवता के सामने स्थित चिंता हम सबों की भी चिंता है। भावी पीढ़ी के लिए स्वच्छ वातावरण, विशूद्ध पर्यावरण दे सकने के लिए आवश्यक है कि आदिवासियों की मौलिक मनोवृति अपनायी जाए। प्रकृति और पर्यावरण को विशूद्ध रखने का नैसर्गिक गुण ही उनकी विरासत है। उनकी संस्कृतिक पहचान है। उनके आस्तित्व का मूल अवयव है। इस सत्विकत्थ्य को समग्रमानवता की सार्थकता के लिए अनुपम उपहार बना सकें, तो ऋतु पर्वों का सिरोमणि – सरहुल, हम सबके लिए नवजीवन,

आशा, खुशी, सम्पन्नता, पवित्रता और एकता का त्यौहार बनकर आएगा।

त्यौहार – कई त्यौहार हैं, अर्थात। भीलों द्वारा मनाई जाने वाली राखी,दिवाली,होली । वे कुछ पारंपरिक त्योहार भी मनाते हैं। अखातीज, दीवा(हरियाली अमावस)नवमी, हवन माता की चालवानी, सावन माता का जतरा, दीवासा, नवाई, भगोरिया, गल, गर, धोबी, संजा, इंदल, दोहा आदि जोशीले उत्साह और नैतिकता के साथ।

कुछ त्योहारों के दौरान जिलों के विभिन्न स्थानों पर कई आदिवासी मेले लगते हैं। नवरात्रि मेला, भगोरिया मेला (होली के त्योहार के दौरान) आदि।

किले – रामपुर किला – इस किले का निर्माण राजा राम भील ने कराया था , यह किला मध्यप्रदेश में स्थित है ।

लखैयपुर गढ़ – यह गढ़ बिहार के लखैयपुर में राजा कोल्ह भील ने बनवाया था , यह किला 500 एकड़ भूमि में फैला है । किले के नजदीक जलेश्वर मंदिर है जहां हमेशा ही ज्योतिर्लिंग पानी में रहता है ।

कुंतित किला – फाफामाऊ के भील राजा का किला

कानाखेडा का किला – सरदार भागीरथ भील का किला

राजा प्रथ्वी भील का किला – यह किला राजा प्रथ्वी भील द्वारा झालावाड़ क्षेत्र में बनवाया गया था , राजस्थान सरकार ने इस किले को संरक्षित सूची मै रखा है ।

जनजाति की उत्पत्ति एवं विकास (गौंड, कोरकू) –

गौंड :– गौंड जनजाति के विकास एवं उत्पत्ति के विषय में अनेक मिथ्य कथायें एवं किवंदतियां भी प्रचलित हैं। जिनसे ज्ञात होता है कि इनका प्रादुर्भाव महादेव जी और पार्वती जी की कृपा से हुआ है।

एक गौंडी कथा में गंगा जी को महादेवजी की पुत्री कहा गया है जिन्हें गौंड 'गंगाइन' देवी कहते है। महोदवी जी व गौरा देवी ने अपनी पुत्री गंगाइन का विवाह दौगुन देव से किया जब 'गंगाइन' विदा हुई तो महादेव जी ने उनके साथ दो गण भेजे जिन्हें पृथ्वी का भ्रमण करने में सहयोग दिया। यही गण इन आदिवासियों के पुरखे माने जाते हैं।

एक अन्य कथा में इनकी मान्यता है कि सर्वप्रथम जब संसार में सर्वत्र जल ही जल था तब जल की सतह पर एक कमल का फूल खिला जिस पर महादेव जी बैठे थे महादेव जी ने सर्वत्र जल ही जल देखकर पृथ्वी की रचना का विचार किया और बहुत दूर से मिट्टी मंगवाकर धरती की रचना की इस प्रकार गौंड जनजाति की अनेक कथायें महादेव जी से जुड़ी है।

आदिवासी गीत/ नृत्य

1. मुंडारी नाच
2. उराँव नाच

मुंडारी नाच गोधूली के समय से घंटे– दो–घंटे बीत गए हैं। अखाड़े के वृत्त पर बैठे बीसों दर्शकगण नृत्य– दल पर आंखे गड़ाए हुए है। पूर्णिमा के चन्द्रमा को कोई पूछता नहीं। एक ओर के छायेदार पेड़ों पर भी बिरले ही किसी की नजर जाती है। फिर भी शीतल चन्द्रिका किंचित भी तिरष्कृत न होकर अवनि, तरूओं, अखाड़े के सब जीवों पर अपना सुखद, कोमल छटाएँ प्रसारित

का चाँदी का मुलम्मा दे रही है। युवक– युवतियों की दो – तीन कतारें जो हैं गलबहिंयाँ– बद्ध होकर पंखे– जैसे फैलतीं, मानो चूल पर चक्र पर लगाती। मृदंग का गर्जन और तन्मय चाल, हाथों संकेतमय चलन और नाच के "भले– भले" बोल से वातावरण गूँज राह है, सन्नाटा टूट रहा है और दूली बेहतर उड़ रही है। हाँ, अब नृत्य का समय है..... घंटो नाचो– दिन के धंधे से तो रात भर नाचो ..... पुरखों का नाच है, इसको जारी रखना संतानों का धर्म है। "यह है छोटानागपुर – नाच का संकेतमात्र वर्णन।

छोटानागपुर के जितने प्रकार के गीत होते हैं, उतने ही प्रकार के नाच भी होते हैं। चूंकि गाना बारहों मास जारी रहता, नर्तन भी इसका पिंड छुड़ाये नहीं छोड़ता। पर, हाँ अगहन के अन्नपूर्ण अवकाशों में और कुछ पश्चात, नाचगान का बखूबी रोब जगा रहता है और जेठ– असाढ़ के अन्न रहित और स्न्कोच्मय दिनों में भूखे पेट नाचना, दूभर सा लगता हैय पर पहुंचे हुए रिझवारों को रोके कौनय उनकी डाल बराबर गलती है। गीत – वर्ग के राग बहूत सुन्दर दुहराए जा सकते हैं। मन का ऊबना तो दूर रहा, उल्टे, उत्तरोतर र्स, जोश और सरगर्मी सब बढ़ते जाते हैंः यहाँ तक कि नाचते– गाते कभी– कभी कोई भावुक जवान आणि सुध–बुध खोकर थर्राने लगता हैं ताल–बेताल डेगने लगता है– " उसपर भूत सवार हो गया।" इस अवसर पर भूत का भगाना और जवान की सूच वापस लाना, केवल एक मजबूत ठोकर से किया जा सकता है, अक्सर कोई मोटा चाबुक भी प्रयोग किया जाता है।

परन्तु लाचार होकर कहना पड़ता है कि हमारे उपलब्ध प्रतिष्ठा प्राचीन आदिवासी रचयिता और संगीतज्ञ अतीत के विस्मृति कानन

में खो गए। हमारा ख्याल है कि हमारे गायक– महारथी बड़ी तादाद में हुए होंगे– उनकी अवशिष्ट कृतियाँ यह साक्षी दे रही हैं। आशा है हमारी एक ऐतिहासिक खोज–म कमिटी इन विस्मृत महानुभावों का उद्धार कर झारखण्ड का मुख उज्जवल कर देगी। देशी संगीत– संघ के न होते हुए भी निम्नलिखित विदेशी महोदयों ने हमारी नितांत भलाई कर हमें चिर– ऋणी कर दिया। हमारे संगीत – संग्रह का प्रमुख श्रेय है श्रद्धेया केशरी फादर होफमन ये.स.को जिन्होनें संगीत– विशारद मान्यवर फादर हिप्प ये. स.ओर फादर आमन ये. स. की सहायता से मुंडारी संगीत को वर्गीकरण पर सूसंपादित कर दिया। उराँव और खड़िया और मुंडारी संग्रहकर्त्ताओं में रायबहादुर बाबू सरत चन्द्र राय और डब्ल्यू जी.आर्चर साहब के नामों का हमें विशेष गर्व है।

खड़िया और उराँव भाषाओँ में कुछ अनभिज्ञ होने के कारण लेखक सिर्फ मुंडारी गीतों के व्याख्यान दे सकते हैं। भाग्यवश, मुंडारी संगीत की विवेचना और स्वरलिपि भी काबिल फादर हिप्प और आमन ने बड़े ठिकाने के साथ आकर दिया है। याद रहे. एक कौमी कला की वार्ता दूसरी कौमी कलाओं पर भी लागू है।

मुंडारी संगीतों का सम्पूर्ण सम्पूट सुनना है कि मन फड़क, दिल कड़क और चित्त भड़क जाता है पर मजा यह कि गान से गवैयों का भी काफी परिचय मिलता है – जैसा गायन चुटकुला और भड़कीला होता है, वैसे ही गायक हंसमुख, चुस्त और चुलबुले रहते हैं। पर इनका चूलबूलापन सहज और भोला होता है। भले ही हिन्दू राग, क्लिष्ट, पौराणिक और अध्यात्मिक हो पर आदिवासी राग बनावट और गायन की –दृष्टि में सरल और संक्षिप्त रहता है। यह उनकी जीवन की प्रतिछाया है।

ताल तो इतना सरल है कि आवर्त में साधारण "विभाग" (या) या (ही) पाये जाते हैं, हाँ कभी– कभी ताल भी मिलता है। गमक का भी खूब प्रयोग होगा है, जिससे गायन में काम आते हैं। नाच (अस्थिर) राग, गंभीर या स्थिर राग की अपेक्षा बहुत अधिक है। सुखांत और दुखांत सरगम काफी मिलते हैं। मुंडारी गीतों में लालित्य ओर कलनाद सोलहों आने मौजूद हैं, तो क्यों गायक, श्रोतागण और नाचनेवाले इसकी खूबी पर बिनकौड़ी के दाम न बिक जाते? गीत में दो अंग होते हैं जो बराबर आवर्तों के होते। गाते समय यदि स्वरभंग या तालभंग हो तो बाजे की कलापूर्ण ठनकती ठोंक से ताल ठीक कर देते हैं, अथवा मात्रा या स्वर को दीर्घ – हर्श्व कर लते हैं। नगाड़ा और "दूमंग" (बंदर, पृदंग) ही ऐसे वा। हैं जो गीत के प्राण समझे जाते हैं।

पहले कहा गया है कि गीत, नृत्य और वा। संगीत इसके आवश्यक अंग हैं। वाद्य से ताल और गीत से स्वर ग्रहण का अंगों की गति ही नृत्य कहलाता। यह हर्सोल्लास के आधिक्य से होता है। झारखण्ड नृत्य में सिर्फ धर्मिकोल्लास अथवा अभिदानोल्लास की मात्रा नहीं रहती, वरन सामाजिक आनन्दोत्सव की भी थोड़ी– बहुत व्यंजन होती है। किसी विद्वान ने कहा है कि यहाँ के नृत्य आदिवासी – धंधों के भी ।ोतक होते हैय अर्थात खेती बारी की क्रियाओं के रूपक, निशान या लक्षण होकर आते। पर यह मत विवादास्पद है, क्योंकी दुसरे विद्वान इन नृत्यों को केवल प्रसन्नता– प्रकाशन के विधान ही समझते हैं। हिन्दू– नृत्य के समान आदिवासी नाच, लास्य और तांडव में विभाजित नहीं होता। (नृत्य जब कोमल और मधुर होता, तब लास्य कहा जाता है। प्रायः स्त्रियों से किया जाता है। जब उत्कट होता है, तब तांडव कहलाता है – यह प्रायः पुरूषों से नाचा जाता है।) इससे नहीं सोचना चाहिए कि इस देश में कोमल और उत्कट नाच नहीं होते

है। फिर स्वर, नेत्र मूखकृति और अंग से "भाव" का दिखाना थोड़ी मात्रा में होता है। यहाँ नाच खासकर आनन्द, मनोरंजन अथवा मन बहलाव की सहज युक्ति है जीसी आदिवासी परंपरा से खूब पटती है।

जतरा गीत– नाच अगहन के आगे ही होकर आते हैं।

यों मुंडाओं के नाच–मंडल का साल समाप्त हो जाता है। नाचों की श्रेणियां, अंगों की विभिन्न गतियों पर निर्भर है। कोई– कोई नृत्य खड़े–बड़े संपन्न किए जाते (तिंगु–सूसून को) – म कोई कमर लचका–लचका कर (उगूंद– सूसून को) खड़े– नाच फिर खास खड़े नाच और दौड़– नाच में विभक्त होते हैं। उदाहरणार्थ : जदुर नाच, नट दौड़– दौड़कर वृत्ताकार नृत्य तय करते और लह्सूआ खड़े होकर करते हैं।

उराँव नाच उराँव नाच – खड़िया लोगों के नाचों में ज्यादा मशहूर हैंः 1. हरियो, 2. किनभर, 3. हाल्का, 4. कू:ढिंग, 5. जदुर। और मुंडा लोगों में : 1. जरगा, 2. जदुर, 3. लह्सूआ, 4. जापी, 5. जतरा। अब इनका वर्णन तो लिखते ही बनता है, पर एक छोटे– मोटे पोथे ही में, यहाँ खान। उदाहरनार्थ, केवल उराँव नाच का उल्लेख किया जाता है।

उराँव नर्तन एक ग्राम्य मनोरंजन है, जिसपर सब जवानी–जोश के जीव लट्टू होते। धूमकूड़ियाँ के जनों का " प्रोग्राम" तो इसके बिना पूरा नहीं होता। कतिपय नाचों में जैसे शादी के "आशीषदान" डोमकच और अक्सर माथा नाचों में सिर्फ औरतें शरीक होती हैं। पर ये अपवाद से हैं। अधिकांश नाचों में सब नवजवान और अधेड़, यों कहिए तीस साल के इधर रसज्ञ रसिक, रातों रात वृत्तवत और बाँहजोरी झूम– झूम कर अखाड़े की धूली बासों उड़ाते हैं। नर्तकी के थिरकते– थिरकते रस गहरा होते जाता है।

इधर नाचने वाले उन्मत से हो जाते हैं, उधर दर्शक रंग पकड़ते हैं और वयोवृद्ध तक काबू हो जाते हैं – सच है बासी कढ़ी में उबाल आता है। नाच में बहुधा गाँव या मौजे ही के नट रहते, पर कभी–कभी पड़ोस की बी लड़के– लड़कियाँ आ जाती हैं।

सब उराँव नृत्यों में यह समानता रहती है : नाच वृत्ताकार अथवा गोल चक्कर के होना चाहिए। इसकी प्रगति बाई–दाहिनी होती है। पहले दाहिने पैर, बाद बाएँ चलते हैय सो भी सबके सब तत्काल ओर साथ –साथ चलाने का मतलब है ताल–स्वर का बैठाना और द्त्तचित्र कराना और यों आनंद की पियास बुझाना। वृत्ताकार से नाचना परंपरागत समझा जाता है। " जतना–खड़िया" नृत्य को छोड़कर हर नाच के संग बाजे का ठनकना अवश्य है। यों तो बाजे के "बोल" (खोद–मु) पर ही नाच– गीत निर्भर रहते और ताल ही से नाचों की भिन्नता का परिचय मिलता है। भले ही पैरों की गति प्रांत–प्रांत विभिन्न हों, पर बाजों का बोल बिरले बदलता है।

अधिकांश नाचों में कई बाजे काम आते हैं, जैसे मंडल, नगेडा, झांझ, सोइखो, रूंज, ठेस्का, गूगूचू। युवकगण एक लंबा दूमदार पगड़ी में फूल और मोरपंख खोंसते, अंगों पर मालाओं के आभूषण लगात, कमर पर रंगदार और चौड़े लंगोटे काछ्ते हैं जो घूँघरूओं के साथ खनकते रहते हैं। ऐसे बने–ठने साज–बाज में इतराए चलना, अंगों को मटकाना, पैरों को कलापूर्वक चलाना, मानो मीठा दूध पीना है। इसके अलावे मोर पंख का गुच्छा, याक की पूँछ, "साईलो से भी अपने आप को संवारते हैं। युवतियों को तो इतने साजों से परेशानिं है। बस, अपने सर्वोत्तम गहने– जेवरों का दर्शन कराती और फूलों की काफी खबर लेती है।

1. **त्यौहारिक नाच –** (क) फगूआ और सरहुल (ख) करम

2. **जतरा –** यह नाच टोलियों में किया जाने वाला है इसके विभाग हैं – (क) जतरा (ख) खड़िया (ग) लूझसे (झूमैर, (ग) चिर्दी (जेठ जतरा)।

3. **वैकल्पिक सामाजिक नाच –** करम, सरहुल, जदुर, डोमकच, जेठ जतरा धुरिया अंगनी ।

4. **वैवाहिक नाच –** इन नाचों का पूरा पंचाग (कलेंडर) देना सहज नहीं है। क्योंकी इस विषय में प्रांत– प्रांत में मतभेद है। यों, माघ (जनवरी–फरवरी) को जब मांडर थाने में जदूरा नाच जारी है, गुमला सबडिविजन में सरहुल और जशपुर रियासत में डोमकच की चहल–पहल रहती है। फिर, जब जेठ (मई–जून) में जतरा मांडर में धूम मचाए रहता है, गुमला में सरहुल, जतरा और जशपुर में सरहुल, धुरिया और जतरा की वाह–वाह होती रहती है। हाँ, भादो (अगस्त–सितंबर) में सर्वत्र करम ही करम है। दुसरे– दुसरे मासों का हाल दूसरा ही है। पर मोटे तौर से कहा जा सकता है कि जेठ में जतरा– खड़िया, बरसात में करम और आगहन में चिर्दी (अगहन) खड़िया नृत्य होते हैं। चिर्दी– खड़िया और जतरा– खड़िया में केवल में केवल गीत के राग फरक होते हैं।

अब रहा नाचों का कुछ वर्णन। पर सब का नहीं हो सकता। जदुरा और जतरा ही लीजिए। इन दोनों को तो मुंडा और खड़िया जातियों भी खूब खेलती हैं, पर मुंडा जदुरा और उराँव जदूरा में कुछ अंतर है। जदूरा मुंह करके खड़ी हो जाती हैं। हर लड़की कतार की अन्य दो लड़कियों में अपनी बांहों जोड़ती है। इन दोनों पक्तियों के बीच बाजेवाले "केशरी" आ जाते हैं जो लड़कियों की ओर ताकते हैं। (कभी– कभी दो ही कतारें रहतीं – बाजेवालों की और नाचनेवालों की)।

अब युवक एक गीत का "ओर" (पहले दो चरण) अलाप लेते हैं। जहाँ युवतियाँ एक ही बार सुनकर दुहरा गई तो बस, नाच लग गया। पर यदि प्रथम बार में वे "फेल" हो गई तो युवक सफलता प्राप्त होने तक दुहराते जाते हैं। अब "लेले धुर्र र्र र्र....." की भयानक ध्वनि जवानों के कंठ से गूँज उठती है, जिसके बाद "कीर्तन" या "चढ़ावन" (गीत के अंतिम दो चरण) गाया जाता है। साथ ही लड़के बाजों पर ठोकरें जमाते हैं और कदम आगे बढ़ते हैंय जिसपर युवतियाँ, कीर्तन दुहराती हुई, तीन कदम पिछड़ती हैं। अब संजिदें (बाजेवाले) उनके पास एक कदम तक निकट आकार तीन कदम पीछे हटते हैं (यदि बाजेवाले) उनके पास एक कदम तक निकट आकर तीन कदम पीछे हटते हैं (यदि बाजेवालों के पीछे नाचने वालों के एक कतार लड़कियों के समान, सामने – पीछे आगे– पीछे होते हैं। फिर नर्तकियां दो कदम आगे बढ़ती हैं)। ऐसे ही कदम आगे– पीछे करते हैं । फिर नर्तकियाँ दो कदम आगे बढ़ती हैं)। ऐसे ही रह रहकर सब चरणों को पारी – पारी "ओर–कीर्तन" गाते हुए, हिसाबपूर्वक कदम आगे– पीछे करते हुए, गोल चक्कर लगाते हुए कलाविद नट जदूरा नाच करते हैं। पर इसको को देखकर ही समझना चाहिए।

डॉ. कामिनी जैन

जनजातीय समाज में परम्परागत चिकित्सा

मनुष्य शुरुआत से ही अपने भोजन आश्रय और चिकित्सा के लिए प्रकृति पर ही निर्भर रहा है वर्तमान में चिकित्सा प्रणाली में अंतर होने के उपरांत भी चिकित्सा पद्धतियों का आधारभूत उद्देश्य मनुष्य के स्वास्थ्य तथा कल्याण की कामना ही है। जनजाति समाज में आज भी चिकित्सा पद्धति जीवित एवं सक्रिय है तथा व्यापक पैमाने पर आज भी इसका उपयोग होता ही है स्वास्थ्य जीवन का एक अवश्य आयाम है, इसके अभाव में मानव जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है और इसलिए स्वास्थ्य पर चर्चा एक चुनौतीपूर्ण विषय है हालांकि स्वास्थ्य सभी समुदायों और क्षेत्रों के जीवन का प्रमुख आधार है और जनजाति समुदाय के लिए इसकी महत्ता कहीं अधिक है। इसके दो प्रमुख कारण प्रतीत होते हैं पृथक्करण और अंधविश्वास विविध सरकारी और गैर सरकारी प्रयासों के बावजूद जनजातीय स्वास्थ्य की गुणवत्ता आज भी कई चुनौतियों से युक्त है। विविध अध्ययन और जनजातीय स्वास्थ्य से जुड़े दस्तावेज उनकी स्वास्थ्य की दशा और दिशा को प्रस्तुत करते हैं। इसके कई उदाहरण जनसंचार के साधनों के माध्यम से भी प्रस्तुत किए जाते हैं। आवश्यकता है कि जनजाति क्षेत्रों में स्वास्थ्य की परिस्थितियों को व्यापक रूप से कर उनके स्थायी समाधान खोजे जाए और विविध सुविधाओं की उपलब्धता के उपयोग और महत्व को भी बताया जाए तभी वास्तविकता में जनजाति क्षेत्रों की स्वास्थ्य की स्थिति में परिवर्तन

का एक मार्ग तैयार किया जा सकता है जहां कई जनजातियां विकास की ओर अग्रसर है, वहीं कुछ जनजाति आज भी अपने परंपरागत रीति–रिवाजों और धार्मिक संस्कारों के साथ आधुनिक विकास की दौड़ में पीछे है। आज भी हर तरह के बीमारी के लिए जड़ी बूटियों पर निर्भर है और उसी से अपना इलाज करते हैं यह वनो के साथ आंख खोलते हैं वनों के साथ सोते हैं। ये लोग जंगलों में निवास करते हैं तथा वनोपज पर आश्रित होने के कारण जंगली जड़ी बूटियों झाड़–फूंक और टोने टोटके के अच्छे जानकार जानकारी अच्छे होते हैं इन जनजातियों का प्रकृति के साथ अद्‌भुत सामंजस्य होता है यही कारण है कि इनकी परंपरागत चिकित्सा पद्धति रही है।

चिकित्सा कि यह पद्धतियां जनजाति के लोक चिकित्सक को परंपरागत रूप में पूर्वजों से प्राप्त होती है इस चिकित्सा ज्ञान को हस्तांतरण पीढ़ी दर पीढ़ी जनजातियों में होता आ रहा है वैसे इसमें थोड़ा बदलाव आया है। अब पुराने पीढ़ी के जनजातीय लोग नई पीढ़ी को अपना ज्ञान नहीं देते हैं इसके पीछे की धारणा को बताते हुए बैगा जनजाति के वै। कहते हैं कि धार्मिक मान्यता के कारण पुरानी पीढ़ी परम पारंपरिक औषधि ज्ञान नई पीढ़ी को नहीं दिया जा रहा है मान्यता के मुताबिक किसी औषधि के बारे में अन्य किसी को बताने से उसका प्रभाव कम हो जाता है इसके पीछे औषधि पौधे के प्रति धार्मिक आस्था पूजा और नियम के बंधन भी जुड़े हैं इसलिए जनजातियों को इससे अनिष्ट होने का डर रहता है दूसरी ओर नई पीढ़ी भी इस ज्ञान को प्राप्त करना नहीं चाहती है क्योंकि यह रोजगार परक नहीं है और युवाओं को रोजगार चाहिए चिकित्सा पद्धति की जनजाति लोक चिकित्सक को परंपरागत रूप से पूर्वजों में विरासत से प्राप्त होती आ रही है। वन संपदा और प्राणियों आदि के संबंध में यह दक्ष होते हैं

पाठ डिंडोरी जिले के बैगा जनजाति की करें या बेतूल जिले की गोंड जनजाति की जड़ी बूटी झाड़–फूंक टोने टोटके के अच्छे जानकार हैं हमारे जीवन में वनों का महत्वपूर्ण स्थान है वहां जहां एक और जनजातियों के लिए आजीविका के स्रोत उपलब्ध कराते हैं वहीं उनकी जीवन रक्षा में भी अहम भूमिका निभाते हैं जंगलों से जनजातियों को न केवल वनोपज प्राप्त होता है बल्कि सदियों का अक्षय भंडार वहीं से मिलता है। बीमार पड़ने पर अस्पताल जाने की बजाय सिरहा, गुनिया, देवार, भुनका,औसा अथवा इसी प्रकार के अन्य अपने परंपरागत चिकित्सकों के पास जाते हैं चिकित्सक बीमारी के लक्षणों के आधार पर उसकी चिकित्सा परंपरागत झाड़–फूंक तंत्र मंत्र पूजा अनुष्ठान अथवा जड़ी बूटियों के प्रयोग करते हैं लेकिन वर्तमान में इस परंपरा को थोड़ा बदलाव आया है विकास के नाम पर बाहरी समाज के लोग उनकी परंपरा को प्रभावित करने की कोशिश कर रहे हैं जनजातीय समाज के द्वारा शहरों में संपर्क आने से खासकर उनका चिकित्सा पद्धति में बदलाव आया है जंगलों की अवैध कटाई और जंगलों में जनजातियों के प्रवेश पर प्रतिबंध ने भी उनकी स्वास्थ्य नीति को काफी हद तक प्रभावित किया है बड़ी जड़ी बूटियों के साथ–साथ गंभीर बीमारी के लिए शहर के चिकित्सकों पास जाने लगे हैं जनजातियों के परंपरागत ज्ञान को कम करने मानते हैं कि अभी भी प्रतिशत केवल 15 से 20 है लेकिन जल्दी परंपरागत ज्ञान को नहीं सहेजा गया तो यह विलुप्त हो सकता है देखा जाए तो झाड़–फूंक तंत्र मंत्र पूजा अनुष्ठान एक प्रकार की मनोवैज्ञानिक चिकित्सा है। इससे कभी–कभी सकारात्मक परिणाम सामने आते हैं लेकिन इस प्रकार की चिकित्सा का कोई वैज्ञानिक आधार अथवा तर्क प्रायः नहीं होगा। लेकिन जड़ी बूटियों के इलाज की पद्धति विश्वसनीय है

और कई बार मुफीद भी जड़ी बूटियों की जानकारी भी आदिवासियों को पूर्वज पीढ़ियों से परंपरागत रूप से प्राप्त होती है वैसे इस ज्ञान को गिने–चुने लोग ही अर्जित कर पाते हैं जनजाति समाज साक्षरता का प्रतिशत अपेक्षाकृत काफी कम है इसलिए आधुनिक चिकित्सा अथवा विकसित माने जाने वाले समाज द्वारा परंपरागत जाती चिकित्सा चिकित्सा पद्धतियों को अविश्वास या संदेह की –दृष्टि से देखा जाता है परंतु सच यह है कि जनजातियों का औषधीय ज्ञान अनेक बार चमत्कृत करता है जो आज ही बरकरार है।

जैसे हड्डी टूटने पर हड़जुड़ी की पत्तियों का पेस्ट बनाकर उस पर बांधने और खाने से हड्डी कुछ ही दिन में जुड़ जाती है शरीर में कहीं भी चोट लगने पर ये लोग तुरंत कुरकुट के पत्तों को पीसकर उसका लेप लगाते हैं। जिससे उस स्थान का घाव भर जाता है और उसमें टांके लगाने की जरूरत नहीं पड़ती है मलेरिया बुखार आने पर पीपल की दातुन करते हैं उसकी पीक थूक दे बाकी को गुटक ले सारी मलेरिया बुखार ठीक हो जाता है। दांत के लिए चितावर की देढ पत्ती दांत में दबाकर रखे तो दांतों में लगे कीडे मर जाते हैं प्रकार आंक के दूध को दो–तीन बूंद लगाने से दांत का दर्द ठीक हो जाता है। पलाश की जड़ की दातुन करने से छाल का मंजन करने से पायरिया की बदबू ठीक हो जाती है। दाढ़ी के बाल झड़ने पर शराब बनाने वाले मटके की कालीख को एकत्र कर एक स्थान पर लगाने से दूसरे दिन ही बाल आने लगते हैं। सर्प काटने पर इंद्रावन की जड़ को खिलाने से तथा करौंदा की जड़ों को पानी में उबालकर पिलाने से राहत की जड़ों को चबाने से सर्प का जहर उतर जाता है जिस स्थान पर सर्प ने काटा होता है उस स्थान पर ब्लड खुरजकर उस स्थान पर रस्सी बांध देते हैं जिस स्थान पर सर्प

ने काटा है उचित स्थान पर मुर्गी के चूजे की गुदा लगाते हैं सच्ची जा मर जाता है यह क्लियर तब तक जाती है जब तक कि जहर करना बंद नहीं है सांप के जहर करते ही चीजों का मरना बंद हो जाता है।

जनजातीय लोग चिकित्सकों के इस गुण, ज्ञान और उनकी चिकित्सीय योग्यता की पुष्टि 'चाणक्य सूत्र' में श्लोक में भी किया गया है श्लोक के मुताबिक कोई अक्षर अमान्य शक्ति रहित नहीं होता कोई मूल जड़ी बूटी अनौषधिक यानी औषधि गुण से रहित नहीं होती ठीक उसी प्रकार कोई भी मनुष्य अयोग्य नहीं होता इन का उचित प्रयोग करने वाले ही प्रायः नहीं मिलते इस कथन को स्पष्ट है कि यदि जनजाति लोक चिकित्सक अनपढ़ है शास्त्रों का ज्ञाता नहीं है तब भी उनके औषधीय ज्ञान और चिकित्सीय योग्यता पर विश्वास का कोई तर्क नहीं हो सकता है। आवश्यकता है कि जनजातीय समाज को ज्यादा से ज्यादा शिक्षित कर अपने स्वास्थ्य के प्रति जागरूक करना चाहिए सरकार द्वारा चलाए जा रहे नियमों से अवगत कराते हुए उनके लाभ महत्व को समझाना चाहिए।

नृत्य और उत्सव उनके मनोरंजन का मुख्य साधन लोक गीत और नृत्य हैं। महिलाएं जन्म उत्सव पर नृत्य करती हैं, पारंपरिक भोली शैली में कुछ उत्सवों पर ढोल की थाप के साथ विवाह समारोह करती हैं। उनके नृत्यों में लाठी (कर्मचारी) नृत्य, गवरीध्राई, गैर, द्विचकी, हाथीमना, घुमरा, ढोल नृत्य, विवाह नृत्य, होली नृत्य, युद्ध नृत्य, भगोरिया नृत्य, दीपावली नृत्य और शिकार नृत्य शामिल हैं। वा।यंत्रों में हारमोनियम , सारंगी , कुंडी, बाँसुरी , अपांग, खजरिया, तबला , जे हंझ , मंडल और थाली शामिल हैं। वे आम तौर पर स्थानीय उत्पादों से बने होते हैं।

भील लोकगीत

1. सुवंटिया – (भील स्त्री द्वारा)
2. हम सीढ़ो– भील स्त्री व पुरूष द्वारा युगल रूप में

पशुपक्षी पालन :– कोरकू आदिवासी पशुपक्षी पालन में विशेष परांगत होते हैं पशुपालन आदिवासी समाज की आजीविका का साधन भी होता है ये गाय, बैल, खोती के लिए पालते है तथा भैंस, बकरी, मुर्गी स्वयं के उपयोग के लिए पालते है। आदि से इन्हें पर्याप्त लाभ होता है अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार ये पशुओं व मुर्गीयों का पालन पोषण करते हैं व क्रय विक्रय भी करते है ये पशुपक्षी पालन में रूची रखते हैं। कुछ स्थानों में सप्ताहिक बाजारों में मुर्गी लड़ाई, मनोरंजन एवं कोतूहल प्रकट करता है शासन द्वारा भी इन्हें इन कार्यो के लिए पर्याप्त अनुदान व प्रोत्साहन दिया जाता है। आदिवासियों के बारे में कहा जाता है कि वह अश्चर्य जनक ढंग से शिकार में दक्ष और सिद्धहस्त होते है इनकी शिकार के तरीके भी अजूबे होते है ये दो स्थिति में शिकार करते हैं खाने के कमी होने पर या मनोरंजन के लिए परंतु आजकल वनप्रणियों को बचाने के लिए लिए शिकार पर कड़ा प्रतिबंध लगाया गया है। निशाने लगाने में प्रायः यह कुशल होते हैं इनकी दक्षता का पता इससे भी लगाया जाता है कि इन्हें शिकार के पीछे दौड़ना नहीं पड़ता, शिकार के लिए फंदा डालना आदिवासियों की बहुत कौशल पूर्ण युक्ति है। व्यक्तिगत शिकार के अतिरिक्त विशेष अवसर पर गांव के गांवो अपने शस्त्र लेकर आसपास के जंगलों में घुस पड़ते है सामूहिक शिकार भी आदिवासी करते है।

पूजा – पद्धति छोटानागपुर की प्रत्येक जनजाति की पूजा– पद्धति अपने– अपने परम्परागत विधिविधान के अनुसार निर्धारित

है। मुख्यतः मातृ देवी और पितर देवता की पूजा होती है। प्रकृति पूजन के कई पर्व मनाये जाते हैं। साल वृक्ष, करम वृक्ष, पीपल वृक्ष और पहाड़ की भी पूजा होती है। धर्मांतरण के कारण जातियों का एक वर्ग भिन्न पूजा– पद्धतियों में विश्वास करने लगा है। अब हिन्दू और ईसाई आदिवासी अपने–अपने विश्वासों के अनुरूप मंदिर और चर्च भी जाते हैं। किन्तु अभी भी छोटानागपुर की जनजातियों की एक बड़ी संख्या मूल सरना धर्म की प्रथाओं के अनुसार पूजा–अर्चना करती है।

मृत्यु संस्कार अलग– अलग जनजातियों अलग–अलग तरीके से मृतक संस्कार करती हैं। मुख्यतः इस क्रिया में दो तरीके विशेष प्रचलित हैं। कहीं मृतक को जलाया जाता है और कहीं मिट्टी में गाड़ दिया जाता है। झारखण्ड की मुख्य और बड़ी जनसंख्या वाली जनजातियों के परिचयात्मक अध्ययन– क्रम में इस विषय पर विचार किया जा रहा है।

अखरा, मेला, जतरा जनजातीय संस्कृति में अखरा एक खास महत्त्व है। निश्चय ही उसका अर्थ हिंदी का अखाड़ा कतई नहीं है। वह एक ऐसी जगह है जो एक साथ गाँव के मनोरंजन केंद्र के रूप में भी पहचानी जाती है और पंचायत –स्थल भी बन जाती है।

जनजातीय समाज ग्रामीण परिवेश का समाज है। उसका परिचय नागर सभ्यता से बहुत बाद में हूआ है। आज भी आदिवासी क्षेत्रों में ऐसे अनेक गाँव हैं जहाँ नई रोशनी नहीं पहुंची है। संचार माध्यमों की अभूतपूर्व क्रांति के मौजूद दौर में भी ऐसे गाँव बने और बचे हुए हैं जहाँ पहूँचना तो दूर, त्वरित संदेश पहूँचाना भी कठिन है। सदियों से मेला या जतरा जनजातियों के लिए सामुदायिक संगम के केंद्र की तरह बने हुए हैं। उनका उपयोग

सामाजिक व्यवस्था, आर्थिक विनियम और सांस्कृतिक मनोरंजन के लिए भी होता आया है। यह ध्यान देने की बात है कि जतरा या मेला किसी एक जनजाति के सदस्यों के लिए सीमित हिन् होता, बल्कि वहाँ कई कबीलों और समुदायों के लोग शिकार में भी सुलभ हूआ करता है जब फागुन के महीने में प्रत्येक जनजाति के लोग शिकार के लिए जंगल जाते हैं इस अवसर को विभिन्न जनजातियों में अलग– अलग नाम से पुकारते हैं। यह उस प्राचीन परंपरा का अवशेष है जब दुर्गम क्षेत्रों में निवास करने वाली जनजातियों को खतरनाक वन्य जन्तुओं से आत्मरक्षा के लिए सामूहिक प्रयत्न करना पड़ता था। कुछ इलाकों में जनी शिकार की प्रथा है। जिसका अवसर बारह वर्षों में एक बार आता है और जिसमें जनजातीय महिलाएँ पुरूष वेष में शिकार के लिए निकलती हैं।

युवा गृह यह एक ऐसा सामाजिक संगठन है जो जनजातीय क्षेत्र से बाहर की दुनिया में जिज्ञासा, उत्सुकता, कौतूहल और विस्मय के भाव से चर्चित रहा है। विभिन्न समुदायों में इसे अलग–अलग नामें से पुकारा जाता है। यह एक प्रकार के प्रशिक्षण केंद्र के तरह काम करता है, गूरूकूल की तरह, जहाँ जनजातियों के किशोरों और किशोरियों को सह शिक्षा के लिए किसी अनुभवी ग्रामवासी की देख–रेख में रखा जाता है। मध्य प्रदेश के बस्तर क्षेत्र में इस तरह के युवा गृहों को घोटुल कहते हैं। उराँव क्षेत्रों में घूमकूड़ियाँ, उत्तर प्रदेश जनजातियों में इसे रंगबंग कहा जाता है और मुंडा–हो जनजाति क्षेत्रों में गीतिओरा तथा नगा क्षेत्र में इखूइन्चि कहते हैं।

इस सामाजिक संगठन की लोकप्रियता और उपादेयता सदियों की यात्रा में अपने प्रयोजन की कसौटियों पर खरी उतरी है। जब से तथाकथित सभ्य समाज ने जनजातियों के जीवन में अपनी

कुंठाओं के साथ ताक – झांक शुरू की तो घोटुल – प्रथा प्रवादों के घेरे में आई। यूं भी मानव– सभ्यता का इतिहास बतलाता है कि विभिन्न ऐतिहासिक दबावों में सामाजिक संगठन अस्तित्व में आते हैं और कालान्तर में अपनी प्रासंगिकता खोकर नष्ट हो जाते हैं। घुमकुडिया या घोटुल– प्रथा का आज के सामाजिक और सांस्कृतिक माहौल में कारगार होना संभव ही नहीं है। आज जिन्दगी की चुनौतियों से लड़ने के लिए जिस तरह का प्रशिक्षण उपयोगी हो सकता है, उसकी बराबरी में यह आदिम संस्था समर्थ नहीं हो सकती है। कुछ इसी तरह का हाल युवा गृहों की परिकल्पना का भी है। परिणामतः यह परंपरा जनजातीय जीवन की कई अन्य परम्पराओं की तरह समाप्तप्राय हो चुकी है।

धार्मिक विधियाँ

1. **पालकन्सना**

2. **सात की संख्या**

पालकन्सना यह पूर्णरूपेण एक कुडूख अनुष्ठान है जिसका पालन सभी महत्त्वपूर्ण अवसरों पर किया जाता है। इस अनुष्ठान में अकेले धर्मेस को संबोधित किया जाना जाता है और उसे अंडा की बलि चढ़ायी जाती है। इस अनुष्ठान के पालन के दो उ ोश्य हैं। प्रथम, यह आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए हैय अच्छा स्वास्थ्य एवं संतान, पालतू पशु में वृद्धि तथा खुशियाँ एवं समृद्धि, वंश की भलाई, परिवार एवं गोत्र की निरंतरता इन्हीं आशीर्वाद पर निर्भर है। द्वितीयतः बुराई एवं शैतानी कर्म करने वालों के बुरे प्रभाव से बचाव के लिए यह किया जाता है

इस अनुष्ठान के लिए किस पुरोहित की आवश्यकता नहीं होती। कोई भी पुरूष कुडूख सदस्य जो अनुष्ठान को सम्पन्न कर सकता है। वह पारम्परिक कुडूख उत्पति का मिथक उच्चरित करता है, यह याद करते हुए कि पृथ्वी की रचना थोड़ी सी मिट्टी से हुई, विश्वव्यापी आग की वर्षा हुई, जिसमें भैया– बहन को छोड़ कर सभी नष्ट हो गए। धर्मस ने उन्हें खोज कर निकाला और कृषि की कला सिखाई, दिन और रात की रचना उनके काम करने और विश्राम करने के लिए की। उन्हें प्रजनन के रहस्य में दीक्षित किया और पालकन्सन की रहस्यमय विधि बतलाई।

सम्पूर्ण कार्यवाही का प्रारंभ ब्रह्माण्ड एवं पृथ्वी के सात कोनों का रहस्यमय चित्र क्रमशः रानू के चूर्ण अथवा चावल का आटा, चूल्हे

की मिट्टी और लकड़ी की कोयले से सफेद, लाला तथा काले रंगों में बनाने के साथ होता है चित्र के केंद्रीय वृत्त के बीच में एक मुट्ठी अरवा चावल रखा जाता है जिस पर एक अंडा खड़ा कर रखा जाता है। अंडे के ऊपर 'भेलवा' की एक चीरी टहनी टिका कर रखी जाती है। सफेद, लाल और काले रंग इन्द्रधनुष के प्रतीक हैं जो सृष्टि में सबसे बड़ा धनुष है। किसी भी दुष्ट शक्तियों के विरूद्ध यह धर्मस का अत्यंत कारगर हथियार है। अंडा जीवन का एक शुद्ध स्रोत है। यह अपने आप में पूर्ण है – आत्मनिर्भर, 'निर्महीं' (बिना मुख के) (तिर्की : 27) इस प्रकार यह जीवन का एक उन्नत प्रतीक है। धर्मेस को अर्पित करने हेतु यह सबसे उचित बलि की वस्तु हैं, जिसका का वह अंतिम स्रोत है। इस प्रकार उसे अंडे का अर्पित किया जाना स्वयं के जीवन को शुद्धता एवं स्व–समर्पण के साथ अर्पित करने का प्रतीक है।

चावल आदिवासियों का मुख्य भोजन है। अतः यह जीवन का प्रतीक है। इसे परमसत्ता के आशीर्वाद के रूप मं समझा जाता है जो उन्हें समृद्धि एवं तंदुरूस्ती प्रदान करते हैं। जब इसे बलि के रूप में अर्पित करने के लिए प्रयोग में लाया जाता है यह जीवन के विकल्प के रूप में ठहरता है।

प्रतीक रूप में देने के लिए चीरी हुई भेलवा की टहनी से, एक साथ सम्पन्न करने के लिए भी अंडा फोड़ दिया जाता है जो बुरी –ष्टि के फोड़े जाने और डायन प्रथा ओझा जैसे असामाजिक तत्वों के बुरे मुंह को चीर दिए जाने का प्रतीक है। यह क्रिया इन लोगों द्वारा खुली छोड़ी गई आत्माओं के बुरे षडयंत्र के विध्वंस का भी प्रतीक है। इस अनुष्ठान के संपन्न करने से यह विश्वास किया जाता है कि जिस व्यक्ति के बदले यह अनुष्ठान किया गया उसकी फसल, उसके पशुओं और बच्चों को कोई हानि नहीं

होगी। भेलवा बीज का तेल अम्लीय एवं ज्वलनशील है। आँखों में इसकी एक बूँद निश्चित रूप से स्थायी अंधेपन का कारण हो सकती है। इसी कारण बलि के अंडे के ऊपर भेलवा की टहनी का उपयोग होता है, प्रतीकात्मक रूप में दुष्टता के सभी प्रकारों को नष्ट करने की इसकी भयानक शक्ति को बतलाने के लिए।

सात की संख्या समुद्र को मथने के बाद इसके अशांत जल में एक छोटा बीज डालने से पृथ्वी के वर्त्तमान स्वरूप में बढ़ जाने के द्वारा परमसत्ता ने पृथ्वी का निर्माण किया। उसने (परमसत्ता ने) किलकिला पक्षी को सोलह समुद्र की अकूत गहराई के पार केंचुओं की दुनिया से यह बीज लेन के लिए भेजा। पृथ्वी का स्वरूप 'सत्ते–पत्तीस' (सात भाग अथवा कोने) हो गया। यही कारण है कि कुडूख लोगों के लिए संख्या सात महत्त्वपूर्ण है। यह सम्पूर्ण संख्या है। यह ईश्वर – सकेंद्रित विचारों तथा प्रेरणा का ाोतक है जो नर एवं नारी का अपना ध्यान धर्मस और उनकी सृष्टि की ओर ले जाता है (कैम्पियन : 9) सैम संख्या की अपेक्षा कुडूख लोग विषम संख्या को प्राथमिकता देते हैं संभवतः संख्या सात से इनके संबंध के कारण जो विषम संख्या है और इसे पूर्ण संख्या माना जाता है, जैसा कि ऊपर कहा गया है

सामाजिक एवं धार्मिक प्रथाएँ

1. भूमिका
2. नामकरण
3. विवाह
4. कांडरसा भंडा
5. मड़वा
6. तेल एवं हल्दी

7. वधु का तीर
8. भाषा

भूमिका झारखण्ड की सामाजिक एवं धार्मिक प्रथाएँ अन्य राज्यों की सामाजिक एवं धार्मिक प्रथाओं की तुलना में सीधा एवं सरल कहा जाता है। इस भाग में सामाजिक एवं धार्मिक प्रथाओं के विशेष बातों का जिक्र किया गया है जैसे बच्चों के नामकरण एवं शादी– विवाह की विधि कैसे होती है? किन – किन चीजों का इस्तेमाल किया जाता है? इन सब की जानकारी दी गई है।

नामकरण प्रत्येक शिशु को किसी पूर्वज की देख–रेख और संरक्षण में एक नाम दिया जाता है। नामकरण समारोह के इस दिन एक बुजुर्ग धन की पत्तियों से निर्मित पत्तल और कांसे के एक कटोरे में पानी लेकर अपना आसन ग्रहण करता है। वह एक–एक करके चार दानों के छिलके अपने नाखून से उतारता है। वह कटोरे में पानी के शांत सतह पर चावल का पहला दाना धीरे से डालता है। यह परमसत्ता का बोध कराता इसी प्रकार वह 'पंचों' (बुजुर्गों) के नाम पर चावल का दूसरा दाना, चावल का तीसरा दाना शिशु के नाम से डालता है। यदि चावल के अंतिम दो दाने तैरते हुए जुड़ जाएँ तो शिशु का नाम उस पूर्वज के नाम पर रखा जाता है जिसके नाम से चौथा दाना डाला गया है। यदि ये दो डेन जुड़ने में असफल हों तो किसी अन्य पूर्वज के नाम से यह प्रक्रिया दोहराई जाती है जब तक कि अंतिम दो दाने मिल जाएँ। किसी पूर्वज के नाम पर जब शिशु का नामकरण एक बार हो जाता है, तब वह इस पृथ्वी पर जीवन की समस्त परिस्थितियों में परवर्ती (पूर्वज) की देख भाल और संरक्षण में रहता है और यहाँ के जीवन के बाद अंततः एक–दुसरे के साथ मिलन हो जाता है। प्रथम चावल प्रतीक है कि अंततः शिशु

परमसत्ता की सम्पति है, जबकि दूसरा चावल प्रगट करता है कि पूर्वजगण इस रहस्य के साक्षी हैं। शिशु तथा दाने दोनों ही जीवन और समृद्धि के प्रतीक है, अतएव आदिवासियों के लिए ये अत्यंत उत्कृष्ट सम्पति हैं (तिर्की 1983 : 46) उपरोक्त समारोह दर्शाता है की परमसत्ता, पूर्वजों एवं जीवित समुदाय के बीच मेल और एकता है।

विवाह केंद्रीय विवाह समारोह में वधु एवं वर एक दुसरे के माथे में 'सिंदरी' (सिन्दूर) लगाने के द्वारा अपने आपसी सहमति अभिव्यक्त करते हैं कुडूख विवाह में, वधु के परिवार के आंगन में एक जाता (चक्की) रख दिया जाता है। पत्थर पर पुआल के तीन या पांच गट्ठर रखे जाते हैं और उनके ऊपर एक जुआ टिका दिया जाता है। सामने में वधु को जाता के पत्थर के ऊपर खड़ा कर दिया जाता है जबकि पीछे खड़ा वर उसकी एड़ी पर अपने पैरों के अंगूठे और दूसरी अंगुली से चिपटकर दबाव डालता है। एक लम्बे कपड़े के द्वरा उन्हें आम जनता से पर्दा कर दिया जाता है। उनके मात्र सिर और पैर देखे जा सकते हैं। वर के सम्मुख एक सिन्दूर–पात्र रखा जाता है जिसमें वह अपनी अनामिका (रिंग फिंगर) डूबाकर वधु की मांग में तीन बार सिन्दूर लगाता है। इसी प्रकार वधु अपने बारी में वर के माथे में सिन्दूर लगाती है। इस अनूष्ठान के साथ दम्पति एक–दुसरे से विवाहित हो जाते हैं। इस अनुष्ठान की महत्ता ने केवल क्रियाओं के सरल प्रतीक में निहित है अपितु प्रतीकों की मौलिक गुणवत्ता में भी, जिसके माध्यम से क्रियाएँ कार्य करती हैं।

सिन्दूर लहू का विकल्प है और लहू गहरे मेल एवं प्रेम में एक साथ साझेदारी किया जाने वाला जीवन का आधारभूत प्रतीक है। आदिवासियों के बीच इसका अन्य कोई प्रतीकात्मक मूल्य नहीं है।

संथाल और मुंडा पारंपरिक विवाह की रस्म में वधु तथा वर की छोटी (कानी) अंगुली से लहू की थोड़ी सी मात्रा निकली जाती है जिसे मिलाकर एक – दुसरे के माथे पर लगाया जाता है। ऊपर वर्णित चक्की (जाता) दर्शाती है की वधु परिवार के लिए भोजन बनाने के अपने मुख्य घरेलू कर्त्तव्य के रूप में इस पर प्रतिदिन कार्य करने जा रही है। इसी प्रकार जुआ दर्शाती है कि वर को अपनी पत्नी और बच्चों के भरण– पोषण केलिए एक गृहस्थ के रूप में खेत में हल चलाना और फसल उगाना है। पुआल एक घर की छत को दर्शाता है जो एक परिवार को धुप, वर्षा, सर्दी इत्यादि से आश्रय प्रदान करती है पर्दा के रूप में इस्तेमाल किया जाने वाला लंबा कपड़ा भी एक अच्छे अश्राययुक्त घर की चार दीवारों को दर्शाता है। इस प्रकार उपरोक्त सभी प्रतीकों को एक साथ लेने पर वे 'आर्थिक प्रतीकों' के रूप में खड़े होते हैं, इस बात पर बल देते हुए किविवाह का अर्थ एक घर स्थापित करना है यह प्रक्रिया, जैसे कि वे थे, किसी का ध्यान उन सबकी ओर आकृष्ट करना है जो जीवन में अत्यंत बुनियादी हैं। इसी कारण कूडूख लोग 'एड्पा बेंजा, कुबी बेंजा' इत्यादि बोलते हैं (एक घर की आशीष के लिए, एक कूआँ इत्यादि) 'बेंजा' शब्द का अर्थ विवाह होता है।

कांडरसा भंडा यह एक साधारण मिट्टी का घड़ा होता है जो ऊपरी सिरे पर इसके गले के आसपास धान की बालियों की चुन्नट से निर्मित मुकूट द्वारा श्रृंगारित होता है। घड़ा में अरवा चावल, हल्दी, दूब घास और सरसों के बीज होते हैं (राय 1972 (1928) – 112) । दो बत्तियों वाला एक छोटा मिट्टी का दिया आड़ा रखा जाता है ताकि उनके सिरे बाहर की ओर निकले हों। मिट्टी के दिये के खाली स्थान में रखे उरद की डाल तथा तेल में डूबे बत्तियों द्वारा ईंधन प्राप्त करने वाले प्रत्येक बत्ती के दोनों सिरे

जलाए जाते हैं। यह "कंड़सा भंडा" (विवाह कलश) विशेष तौर पर महिलाएँ इसे अपने सिरों पर रख भव्य अवसर को चिन्हित करने ले लिए नाचती हैं। अन्य मिलते– जुलते अवसरों पर भी नृत्य में इसका प्रयोग होता है।

विवाह में "कंड़सा भंडा" (विवाह कलश) वधु और वर दोनों कूलों के पूर्वजों का प्रतीक है (भगत : 10) इस प्रतिक के द्वारा उन्हें विवाह में भाग लेने के लिए आमंत्रित दिया जाता है। धान के चुन्नट वाले डंठल का अर्थ मिलन की निकटता है जो भविष्य में प्रचुरता लाएगी, जिसे धान की सिन्दूर बालियों में देखा जा सकता है। "कंड़सा भंडा" (विवाह कलश) में वह सबकुछ समाहित है जो जीवन और दम्पति को खुशहाल बनाने के लिए आवश्यक है तथा महिलाओं द्वारा इसे अपने सिरों पर रखकर नाचना समृद्धि, खुशहाली एवं मिलन, सामाजिक एकता और आदिवासी– भाईचारा का प्रतिक है।

मड़वा वे नौ छोटे शाल (सराई, सखूआ) के पौधे हैं जिनके ऊपरी सिरे के ताजा एवं हरे पत्तों के गुच्छा को छोड़कर, छाल उखाड़ दिए जाते हैं। इनको विवाह वाले आंगन में गाड़ किया जाता है। सबसे ऊंचा वाला बीच में गाड़ा जाता है जो परमसत्ता का प्रतिनिधित्व करता है। बीच वाले के पूरब, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण वाले पौधे, गांव के पंचों (बुजुर्गों) का प्रतिनिधित्व करते हैं तथा बचे हुए चार, विवाह आंगन के चार कोनों पर एक नये परिवार के घर के चार दीवारों का प्रतिनिधित्व करते हाँ (तिर्की : 92) । इस 'मड़वा' के सहारे एक विवाह – कुज का निर्माण किया जाता है। कट जाने पर भी 'शाल' कभी मरता नहीं और हमेशा नए कोपलों के साथ नया बढ़ जाता है क्योंकि इसकी जड़ जीवित ही रहती है। इस कारण जो विवाह कर रहे हैं उनके

बच्चों के लिए भी यह प्रतीक ठहरता है। वे गूणात्मक रूप में बढ़ेगें और कभी नहीं मरेंगे और इस प्रकार उनका गोत्र वंश इस संसार में सदा जारी रह सकता है ।

तेल एवं हल्दी वधु एवं वर को किसी नैतिक अशुद्धियों से शुद्ध करने के लिए हल्दी का गाढ़ा घोल (पेस्ट) मला जाता है(तिर्की : 49)। यह विशेषकर वधु के शरीर को स्वस्थ एवं मजबूत बनाने के लिए भी किया जाता है क्योंकी स्वस्थ बच्चे वहन करने के लिए इसे चुस्त और मजबूत होना आवश्यक है उन्हें तेल भी लगाया जाता है। इस प्रकार इनका लगाया जाना उन्हें ह्रष्ट– पुष्ट बनाने दे लिए होता है। धार्मिक स्तर, कुडूख परम्परा के अनुसार एक 'बारंडा' नाम की आत्मा है जिसे न अच्छा और न बुरा कहा जा सकता है। वह वर का रूप धारण कर वधु से विवाह कर ले सकता है और इस प्रकार उलझन पैदा कर सकता है। जो भी हो, वह हल्दी से बचता है (भगत) । यह एक कारण है की हल्दी का लेप विवाह में क्यों प्रयुक्त होता है।

वधु का तीर वर के घर में प्रत्येक वधु अपने साथ एक तीर लाती है। वधु चाहती है की उसका पति इस अस्त्र के द्वारा सभी शत्रूओं में उसकी रक्षा करे। इसका अर्थ यह की उसका पति उसके और परिवार के लिए विभिन्न शिकार अभियान के दौरान शिकार ले आ सके (कैम्पियन 1980:53) स्तर पर यह दुष्ट आत्मा आथवा दुष्ट शक्ति के अनिष्ट से उसे बचाता है (भगतः 15, कुजूर 1989:234)।

भाषा भाषा प्रत्येक प्रणाली का एक अंग है। किसी भी समाज की पौराणिक भाषा अत्यंत प्रतीकत्मक होती है। इस संदर्भ में कुडूख लोगों के विश्वास है की 'धर्मेश' (परमसत्ता) ने 'भैया–बहिन' (प्रथम पूर्वज माता– पिता) को कुडूख भाषा के माध्यम से स्वयं सम्प्रेषित

किया। उसने उन्हें 'पालकन्सना' नामक धार्मिक विधि सिखाई जिसे 'डंडाकूटना' 'भाई भाख खंडना' भेलवाफाड़ी' भी कहते हैं। विभिन्न अवसरों पर धर्मेस अनुष्ठान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है और जो भाषा प्रयोग की जानी है वह मात्र कुडूख ही, क्योंकि धर्मस ने प्रथम कुडूख पूर्वजों से इसी भाषा में बात की इस प्रकार इसका आधार ईश्वरीय है अतएव यह पवित्र है।

आदिवासी ध्वज

आदिवासी समाज के लोग अपने धार्मिक स्थलों, खेतों, घरों आदि में एक विशिष्ट प्रकार का झण्डा लगाते है, जो अन्य धमों के झण्डों से अलग होता है। आदिवासी झण्डें में सूरज, चांद, तारे इत्यादी सभी प्रतीक विद्यमान हैं। आदिवासी के झण्डे सभी रंग के होते है। वो किसी रंग विशेष से बंधे हुये नहीं होते। आदिवासी प्रकृति पूजक होते है। वे प्रकृति में पाये जाने वाले सभी जीव, जन्तु, पर्वत, नदियां, नाले, खेत इन सभी जीवीत वस्तुओं की पूजा करते है। आदिवासी मानते है कि प्रकृति की हर एक वस्तु में जीवन होता है। भारत ही नहीं अपितु पूरे विश्व के आदिवासी कहे जाने वाले आदिवासीयों के झण्डों में सूरज, चांद, तारे आदि कहीं ना कहीं बने हुये होते है।

आदिवासी का झण्डा

आदिवासी राजा

महाराजा प्रताप धवलदेव, रोहतास गढ़

नागल कोल, रेवा रियासत

मदरा मुण्डा

मदन साह, जबलपुर

कोल राजा, कोरबा रियासत

महाराजा भीकमदेव, नायला

महाराजा पन्ना मीणा, आमेर(जयपुर)

प्रमुख आदिवासी व्यक्ति

बिरसा मुण्डा

जयपाल सिंह मुंडा

राम दयाल मुंडा

गंगा नारायण सिंह

कार्तिक उरांव

रानी दुर्गावती

राघोजी भांगरे

एकलव्य

दुर्जन सिंह

टंट्या भील

राणा पूंजा

नाग्या कातकरी

कप्तान छुट्टनलाल

सोदान पटेल

आदिवासी साहित्य की उपलब्धता

गैर–आदिवासी साहित्य की अध्ययन परंपरा आदिवासी साहित्य को दो श्रेणी में विभाजित करती है –

वाचिक परंपरा का आदिवासी (लोक) साहित्य

लिखित (शिष्ट अथवा आधुनिक) आदिवासी साहित्य

ऑरेचर

आदिवासी साहित्यकार इस विभाजन को स्वीकार नहीं करते। वे मानते हैं कि चूंकि उनका जीवनदर्शन किसी भी विभाजन के पक्ष में नहीं है, उनके समाज में समरूपता और समानता है, इसलिए उनका साहित्य भी विभाजित नहीं है। वह एक ही है। वे अपने साहित्य को 'ऑरेचर' कहते हैं। ऑरेचर अर्थात् ऑरल लिटरेचर। उनकी स्थापना है कि उनके आज का लिखित साहित्य भी उनकी वाचिक यानी पुरखा साहित्य की परंपरा का ही साहित्य है। ऑरेचर की अवधारणा सबसे पहले युगांडा के आदिवासी लेखक पियो जिरिमू ने प्रस्तुत की थी जिसे दुनिया के अधिकांश आदिवासी लेखकों और साहित्यकारों ने स्वीकार किया। इनमें अफ्रीका के न्गूगी वा थ्योंगो और भारत की वंदना टेटे प्रमुख हैं। हालांकि गैर–आदिवासी साहित्यिक और अकादमिक जगत में अभी भी वाचिक साहित्य की स्वीकार्यता ज्यादा है।

आदिवासी साहित्य की अवधारणा

आदिवासी साहित्य की अवधारणा को लेकर तीन तरह के मत हैं–

1. आदिवासी विषय पर लिखा गया साहित्य आदिवासी साहित्य है।
2. आदिवासियों द्वारा लिखा गया साहित्य आदिवासी साहित्य है।
3. 'आदिवासियत' (आदिवासी दर्शन) के तत्वों वाला साहित्य ही आदिवासी साहित्य है।

पहली अवधारणा गैर–आदिवासी लेखकों की है। परंतु समर्थन में कुछ आदिवासी लेखक भी हैं। जैसे, रमणिका गुप्ता, संजीव, राकेश कुमार सिंह, महुआ माजी, बजरंग तिवारी, गणेश देवी आदि गैर–आदिवासी लेखक, और हरिराम मीणा, महादेव टोप्पो, आईवी हांसदा आदि आदिवासी लेखक।

दूसरी अवधारणा उन आदिवासी लेखकों और साहित्यकारों की है जो जन्मना और स्वानुभूति के आधार पर आदिवासियों द्वारा लिखे गए साहित्य को ही आदिवासी साहित्य मानते हैं।

अंतिम और तीसरी अवधारणा उन आदिवासी लेखकों की है, जो 'आदिवासियत' के तत्वों का निर्वाह करने वाले साहित्य को ही आदिवासी साहित्य के रूप में स्वीकार करते हैं। ऐसे लेखकों और साहित्यकारों के भारतीय आदिवासी समूह ने 14–15 जून 2014 को रांची (झारखंड) में आयोजित दो दिवसीय राष्ट्रीय सेमिनार में इस अवधारणा को ठोस रूप में प्रस्तुत किया, जिसे 'आदिवासी साहित्य का रांची घोषणा–पत्र' के तौर पर जाना जा रहा है और अब जो आदिवासी साहित्य विमर्श का केन्द्रीय बिंदु बन गया है।

''आदिवासियों के आदिवासियत को न तो आप वर्गीकृत कर सकते हैं न ही किसी मानक से नाप सकते हैं क्योंकि यह तो विरासत में मिला हुआ वह गुण है जिसे कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता और न ही इसे कोई खारिज कर सकता है। किसी व्यक्ति की आदिवासियत को आप इस बात से भी नहीं तय कर सकते हैं कि उसमें आदिवासी खून कितना है।''

– अनिता हेइस (सिडनी), रीड–गिल्बर्ट, केरी संपादित पुस्तक ''व्हाइ डज ए ब्लैक वूमेन राइट?' (2000) में शामिल 'द स्ट्रेंथ ऑफ अस ऐज वूमेनः ब्लैक वूमेन स्पीक' लेख (पृ. 51) में

आदिवासी साहित्य का रांची घोषणा–पत्र

आदिवासी साहित्य की बुनियादी शर्त उसमें आदिवासी दर्शन का होना है जिसके मूल तत्त्व हैं –

1. प्रकृति की लय–ताल और संगीत का जो अनुसरण करता हो।
2. जो प्रकृति और प्रेम के आत्मीय संबंध और गरिमा का सम्मान करता हो।
3. जिसमें पुरखा–पूर्वजों के ज्ञान–विज्ञान, कला–कौशल और इंसानी बेहतरी के अनुभवों के प्रति आभार हो।
4. जो समूचे जीव जगत की अवहेलना नहीं करें।
5. जो धनलोलुप और बाजारवादी हिंसा और लालसा का नकार करता हो।
6. जिसमें जीवन के प्रति आनंदमयी अदम्य जिजीविषा हो।
7. जिसमें सृष्टि और समष्टि के प्रति कृतज्ञता का भाव हो।

8. जो धरती को संसाधन की बजाय मां मानकर उसके बचाव और रचाव के लिए खुद को उसका संरक्षक मानता हो।

9. जिसमें रंग, नस्ल, लिंग, धर्म आदि का विशेष आग्रह न हो।

10. जो हर तरह की गैर–बराबरी के खिलाफ हो।

11. जो भाषायी और सांस्कृतिक विविधता और आत्मनिर्णय के अधिकार पक्ष में हो।

12. जो सामंती, ब्राह्मणवादी, धनलोलुप और बाजारवादी शब्दावलियों, प्रतीकों, मिथकों और व्यक्तिगत महिमामंडन से असहमत हो।

13. जो सहअस्तित्व, समता, सामूहिकता, सहजीविता, सहभागिता और सामंजस्य को अपना दार्शनिक आधार मानते हुए रचाव–बचाव में यकीन करता हो।

14. सहानुभूति, स्वानुभूति की बजाय सामूहिक अनुभूति जिसका प्रबल स्वर–संगीत हो।

15. मूल आदिवासी भाषाओं में अपने विश्व–दृष्टिकोण के साथ जो प्रमुखतः अभिव्यक्त हुआ हो।

आदिवासी साहित्य का भाषायी मानचित्र आदिवासी साहित्य वाचिक तौर पर अपनी मूल आदिवासी भाषाओं में बहुत समृद्ध और विपुल है। भारत में लिखित आदिवासी साहित्य की शुरुआत बीसवीं सदी के आरंभिक दौर में होती है जब औपनिवेशिक दिनों में आदिवासी समुदाय आधुनिक शिक्षा के संपर्क में आते हैं। विशेषकर, झारखंड और उत्तर–पूर्व के आदिवासी इलाकों में। तब से लेकर आज तक अंग्रेजी और हिंदी, बांग्ला, ओड़िया, असमी, मराठी आदि अन्य भारतीय भाषाओं में आदिवासी साहित्य लेखन

निरंतर प्रगति पर है और हर वर्ष सौ से अधिक आदिवासी रचित पुस्तकें विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित हो रहा है।

भारत में आदिवासी साहित्य पांच भाषा परिवार के भाषाओं में वाचिक और लिखित रूप में उपलब्ध है –

आस्ट्रो–एशियाटिक भाषा परिवार
चीनी–तिब्बती भाषा परिवार
द्रविड़ भाषा परिवार
अंडमानी भाषा परिवार
भारोपीय आर्य भाषा परिवार

आस्ट्रो–एशियाटिक भाषा परिवार यह आदिवासी भाषा परिवार मुख्य रूप से भारत में झारखंड, छत्तीसगढ, उड़ीसा और पश्चिम बंगाल के ज्यादातर हिस्सों में बोली जाती है। संख्या की –ष्टि से इस परिवार की सबसे बड़ी भाषा संथाली या संताली है। इस परिवार की अन्य प्रमुख भाषाओं में हो, मुंडारी, भूमिज, खड़िया, सावरा इत्यादी प्रमुख भाषाएं हैं।

चीनी–तिब्बती भाषा परिवार इस परिवार की ज्यादातर भाषाएं भारत के सात उत्तर–पूर्वी राज्यों में बोली जाती है। जिनमें नगा, मिजो, म्हार, मणिपुरी, तांगखुल, खासी, दफला, आओ आदि भाषाएं प्रमुख हैं।

द्रविड़ भाषा परिवार यह भाषा परिवार भारत का दूसरा सबसे बड़ा भाषायी परिवार है। इस परिवार की सदस्य गैर–आदिवासी भाषाएं ज्यादातर दक्षिण भारत में बोली जाती हैं। जिसमें तमिल, कन्नड़, मलयालम और तेलुगू भाषाएं हैं। परंतु द्रविड़ परिवार की आदिवासी भाषाएं पूर्वी, मध्य और दक्षिण तक के राज्यों में बोली जाती हैं। गोंडों की गोंडी, उरांव, किसान और धांगर समुदायों की

कुडुख और पहाड़िया की मल्तो या मालतो द्रविड़ परिवार की प्रमुख आदिवासी भाषाएं हैं।

अंडमानी भाषा परिवार जनसंख्या की –ष्टि से यह भारत का सबसे छोटा आदिवासी भाषायी परिवार है। इसके अंतर्गत अंडबार–निकाबोर द्वीप समूह की भाषाएं आती हैं, जिनमें अंडमानी, ग्रेड अंडमानी, ओंगे, जारवा आदि प्रमुख हैं।

भारोपीय आर्य भाषा परिवार भारत की दो तिहाई से अधिक गैर–आदिवासी आबादी हिन्द आर्य भाषा परिवार की कोई न कोई भाषा विभिन्न स्तरों पर प्रयोग करती है। जैसे, संस्कृत, हिन्दी, बांग्ला, गुजराती, कश्मीरी, डोगरी, पंजाबी, उड़िया, असमिया, मैथिली, भोजपुरी, मारवाड़ी, गढ़वाली, कोंकणी आदि भाषाएं। परंतु राजस्थान, गुजरात, मध्य प्रदेश आदि राज्यों के भीलों की वर्तमान भीली, भिलाला और वागड़ी, इसी भारोपीय भाषा परिवार के अंतर्गत आती है।

आदिवासी साहित्य आदिवासी साहित्य से तात्पर्य उस साहित्य से है जिसमें आदिवासियों का जीवन और समाज उनके दर्शन के अनुरूप अभिव्यक्त हुआ हो। आदिवासी साहित्य को विभिन्न जगहों पर विभिन्न नामों से जाना जाता है। यूरोप और अमेरिका में इसे नेटिव अमेरिकन लिटरेचर, कलर्ड लिटरेचर, स्लेव लिटरेचर और अफ्रीकन–अमेरिकन लिटरेचर, अफ्रीकन देशों में ब्लैक लिटरेचर और ऑस्ट्रेलिया में एबोरिजिनल लिटरेचर, तो अंग्रेजी में इंडीजिनस लिटरेचर, फर्स्टपीपुल लिटरेचर और ट्राइबल लिटरेचर कहते हैं। भारत में इसे हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में सामान्यतः 'आदिवासी साहित्य' कहा जाता है।

भारत के प्रमुख आदिवासी साहित्यकार

1. मेन्नस ओड़ेअ
2. सुशीला सामद
3. जयपाल सिंह मुंडा
4. रघुनाथ मुर्मू
5. लको बोदरा
6. प्यारा केरकेट्टा
7. एलिस एक्का
8. कानूराम देवगम
9. आयता उरांव
10. तेमसुला आओ
11. ममांग दई
12. राम दयाल मुंडा
13. बलदेव मुंडा
14. रोज केरकेट्टा
15. दुलाय चंद्र मुंडा
16. पीटर पॉल एक्का
17. वाल्टर भेंगरा 'तरुण'
18. नारायण
19. हरिराम मीणा
20. जसिंता केरकेट्टा
21. महादेव टोप्पो
22. वाहरू सोनवणे
23. ग्रेस कुजूर
24. उज्ज्वला ज्योति तिग्गा
25. निर्मला पुतुल

26. काजल डेमटा
27. सुनील कुमार 'सुमन'
28. केदार प्रसाद मीणा
29. जोराम यालाम नाबाम
30. वंदना टेटे
31. सुनील मिंज
32. ग्लैडसन डुंगडुंग
33. अनुज लुगुन
34. रूपलाल बेदिया
35. गंगा सहाय मीणा
36. ज्योति लकड़ा
37. नीतिशा खालखो
38. अनु सुमन बड़ा
39. हीरा मीणा
40. अरुण कुमार उरांव
41. सुंदर मनोज हेम्ब्रम
42. सरदार सिंह मीणा
43. जमुना बीनी
44. नुअस केरकेट्टा
45. जनार्दन गोंड
46. नजुबाई गावित
47. के. एम. मैत्री
48. सुशीला धुर्वे
49. उषाकिरण आत्राम
50. मोती रावण कंगाली

51. महेंद्रनाथ सरदार

52. लुस्कु सामाद

भील शब्द की उत्पत्ति वील से हुई है जिसका द्रविड़ भाषा में अर्थ होता हैं धनुष।

भारत भील भारत के बड़े क्षेत्र में बसे हुए है , भीलों की अधिक आबादी मध्यप्रदेश , राजस्थान , गुजरात और महाराष्ट्र में है । भील आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, त्रिपुरा , पश्चिम बंगाल और उड़ीसा समेत कई राज्यो में बसे है ।

बंगाल बंगाल के मूलनिवासी भील, संथाल, मुंडा और शबर जनजातियां है । यही आदिवासी लोग सबसे पहले बंगाल प्रांत में बसे थे वहीं भील राजाओं ने बंगाल में अपना शासन स्थापित किया।

पाकिस्तान पाकिस्तान में करीब 40 लाख भील निवास करते है। पाकिस्तान में जबरन भिलों को इस्लाम धर्म में परिवर्तित किया जा रहा है । कृश्ण भील पाकिस्तान में प्रमुख आदिवासी हिन्दू नेता है।

उप–विभाग भील कई प्रकार के कुख्यात क्षेत्रीय विभाजनों में विभाजित हैं, जिनमें कई कुलों और वंशों की संख्या है। इतिहास में भील जनजाति को कई नाम से संबोधित किया है जैसे किरात कोल शबर और पुलिंद आदि ।

भील जनजाति की उपजातियां व भील प्रजाति से संबंधित जातियां

बॉरी – यह भील जनजाति पश्चिम बंगाल , बंगाल में निवास करती है , इस जाति की उपजातियां है ।

बर्दा – बर्दा समूह गुजरात , महाराष्ट्र और कर्नाटक में निवास करता है । यह भिलो का समूह है ।

गरासिया – गरासिया मुख्यत राजस्थान में बसते है , यह भीलों की एक शाखा है ।

ढोली भील – भील उपशाखा

डुंगरी भील –

डुंगरी गरासिया

भील पटेलिया –

रावल भील –

तड़वी भील – औरंगजेब के समय लोगो को मुस्लिम बनाया गया, तडवी दरसअल भील मुखिया को कहते है , तडवी भील मुख्यता महाराष्ट्र में निवास करते है ।

भागलिया

भिलाला – भिलाला , भील आदिवासियों की उपशाखा है ।

पावरा – यह भील जनजाति की उपशाखा गुजरात में निवास करती है ।

वासरी या वासेव

वसावा – गुजरात के भील

महाराष्ट्र भील मावची

कोतवाल उनके मुख्य उप–समूह हैं ।

खादिम जाति – यह भील जाती राजस्थान के अजमेर में निवास करती हैं ।

एकलव्य – एकलव्य एक महान धनुर्धर थे , उनके पिता श्रृंगवेरपुर के राजा थे , और वे अपने पिता के बाद राजा बने । वर्तमान में एकलव्य नाम से कई संस्थान चल रहे है , वे आधुनिक तीरंदाजी शेली के निर्माता रहे ।

संत सुरमाल दास भील – संत सुरमल जी खराड़ी , आदिवासी भील धर्म के प्रमुख गुरु थे , उनसे संबंधित एक पुस्तक प्रकाशित हुई है।

गुहराजा – निषाद राज जिन्होंने राम भगवान की सहायता करी ।

माता शबरी – माता शबरी एक राजकुमारी थी , उनके पिता राजा थे , माता शबरी रामभक्त थी , राजकुमारी शबरी की शादी भील राजकुमार से हुई थी ।

क्रांतिकारी सरदार हेमसिंह भील – बाड़मेर के सरदार पाकिस्तानी सेना से युद्ध किया ।

टंट्या भील – मराठो के हार के बाद अंग्रेजी सत्ता से संघर्ष।

नानक भील – अंग्रेजो का विरोध , शिक्षा का प्रचार किया ।

सरदार हिरीया भील – अंग्रजों का विरोध मराठो ने सहयोग मांगा।

कृशण भिल – पाकिस्तान में प्रमुख राजनेता ।

गुलाब महाराज – संत थे , अंगेजो के खिलाफ असहकर आंदोलन शुरू किया , सामाजिक कार्य किया ।

काली बाई – आधुनिक एकलव्य कहीं जाती है , शिक्षा और गुरु के लिए बलिदान दिया , अंग्रेज और महारावल का विरोध ।

भीमा नायक – 1857 के प्रथम स्वतंत्रता सेनानी ।

गोविन्द गुरु – प्रमुख समाजसुधारक ।

ठक्कर बापा – आदिवासियों के मसीहा ।

मोतीलाल तेजावत – राजस्थान के प्रमुख ब्रिटिश विद्रोही ।

भागोजीनायक – महाराष्ट्र देशवासी एक भील सरदार

शिक्षा का क्षेत्र राजेन्द्र भारूड – भील आदिवासी समाज के महाराष्ट्र में पहले आईएएस अफसर

कला प्रेमी

कृष्ना भील – पाकिस्तान के प्रमुख गीतकार , वे मारवाड़ी , पंजाबी और उर्दू समेत अन्य भाषओं में गीत गाते थे

दिवालीबेन भील – गाईका , गुजरात

लाडो भील – पिथोरा पेंटिंग ,

मध्यप्रदेश

भूरी बाई भील – पिथोरा पेंटिंग

तगाराम भील – अलघोजा वादक , राजस्थान

राजनीति नेता

भीखाभाई भील –

खेल क्षेत्र

भील राजवंश

राजा पुरुरवा भील – राजा पुरुरवा भील पुष्कलावती देश के राजा थे , यह वर्तमान में पाकिस्तान में है। यही आगे चलकर महावीर स्वामी कहलाए ।

राजा विश्वासु भील – नीलगिरी के पहाड़ी क्षेत्र पूरी के राजा, इन्हे ही भगवान जगन्नाथ जी की मूर्ति प्राप्त हुई थी ।

राजा हिरण्य धनु एक भील राजा।

राजा सुबाहु – इनका शासन हिमालय क्षेत्र में था , इनकी राजधानी श्रीनगर गढ़वाल थी , इन्होंने पांडवो की सहायता करी।

राजा बेजू भील – बैजू भील का इतिहास वैधनाथ धाम से जुड़ा है वे संथालो के राजा थे ।

यलम्बर – यह नेपाल के भील प्रजाति के किरात राजा थे , उन्होंने नेपाल में किरात वंश की नींव रखी ।

राजा धन्ना भील 850 ईसा पूर्व मालवा के शासक थे। ख35,ख36, वे बहादुर , कुशल और शक्तिशाली राजा थे । उनके वंशजों ने 387 वर्ष मालवा पर राज किया इस दौरान मालवा का विकास हुआ ।

उन्हीं के वंश में जन्मे एक भील राजा ने 730 ईसा पूर्व के दौरान दिल्ली के शासक को चुनौती दी , इस प्रकार मालवा उस समय एक शक्ति के रूप में वि।मान था।

राजकुमार विजय – यह भील प्रजाति के पूलिंद राजा थे , इनका शासन वर्तमान के बंगाल में था ।, उस समय भारत बंगाल एक थे, राजकुमार विजय का उल्लेख महावंश आदि इतिहास ग्रन्थों में हुआ है। परम्परा के अनुसार उनका राज्यकाल 543–505 ईसापूर्व

में था, वे श्रीलंका आए , श्रीलंका में उन्होंने सिंहल और क्षत्रिय स्त्री से विवाह किया जनके फलस्वरूप वेदा जनजाति की उत्पत्ति हुए , यह जनजाति भारत से ही चलकर श्रीलंका तक पहुंची यह इतिहासकारों का मानना है।

राजा खादिरसार भील – जैन ग्रंथों के अनुसार राजा खादिरसार मगध के राजा थे , राजा खादिरसार की पत्नी का नाम चेलमा था, प्रारंभ में राजा खादिरसार बौद्घ धर्म के अनुयाई थे , परन्तु रानी चेलामा के उपदेश से प्रभावित होकर उन्होंने जैन धर्म अपना लिया और महावीर स्वामी जी के प्रथम भक्त बन गए।

राजा गर्दभिल्ल – उज्जैन के शासक , इनके उतराधिकारी सम्राट विक्रमादित्य हुए जिन्होंने शक शकों को पराजित किया , उनके नाम से ही कुल 14 राजाओं को विक्रमादित्य की उपाधि दी गई ।

राजा देवो भील – यह ओगाना – पनारवा के शासक थे इनका समयकाल बापा रावल के समय से मिलता है , बप्पा रावल के बुरे दिनों में इन्होंने बेहद सहायता करी , अरबों को युद्ध में खदेड़ा ।

राजा बालिय भील – यह ऊंदेरी के शासक थे और बप्पा रावल के मित्र थे , अरबों के खिलाफ इन्होंने बप्पा रावल का साथ दिया ।

राजा बांसिया भील – बांसवाड़ा के संस्थापक

राजा विंध्यकेतु – मां कालिका के भक्त , विंध्य के राजा।

राजा चक्रसेन भील – मनोहर थाना के शासक , किले का निर्माण कराया , 1675 तक शासन किया ।

राजा चम्पा भील – राजा चम्पा भील ने चांपानेर की स्थापना की थी , वे 14वी शताब्दी में चांपानेर के शासक बने , उन्होंने चांपानेर किला बनवाया था ।

राजा राम भील – राजा राम भील रामपुरा के शासक थे , व एक शक्तिशाली शासक थे, उन्होंने मार्चिंग आक्रमणकारियों से युद्ध किया और इसमें उनकी गर्दन काट गई लेकिन उनका धड दुश्मन से लड़ता रहा ।

राजा आशा भील – राजा आशा भील अहमदाबाद के शासक थे , उन्होंने अहमदाबाद में उ ाोगों की नींव रखी , इनके समय अहमदाबाद में नए सड़क , पेयजल स्रोतों आदि का निर्माण हुआ ।

दंतारिया भील – राजा दांतारिया भील ने गुजरात के दंता नगर की स्थापना की थी

राजा भाभरदेव – प्रतापगढ़ के शासक 1531

राजा देव भील – राजस्थान के देवलिया के शासक थे , 1561 में इन्हे धोखे से मार दिया गया ख44,।

सरदार चार्ल नाईक – औरंगाबाद स्थित ब्रिटिश सेना पर 1819 में आक्रमण कर दिया , लेकिन ब्रिटिशों के साथ हुए युद्ध में वे शहीद हो गए

श्री दोशरा भील – यह एक भील शासिका थी , इनका शासन मालवा से लेकर गुजरात के विराटनगर तक था

राजा चौरासी मल – बागर वागड़ प्रमुख 1175

सरदार मंडालिया भील – भिनाय ठिकाना प्रमुख 1500 से 1600 के आस पास

राजा सांवलिया भील – ईडर के शासक , इन्होंने ईडर की सीमा पर सांवलिया शहर बसाया

फाफामाऊ के राजा – फाफामाऊ , दिल्ली के समीप जगह है जहां पर भील राजा का आधिपत्य था

बिलग्राम – उत्तरप्रदेश के हरदोई जिले के बिलग्राम क्षेत्र को भीलों ने है बसाया था , यह क्षेत्र भीलग्राम के नाम से विख्यात था और राजा हिरण्य के समय अस्तित्व में था , करीब 9 वी से 12 शताब्दी के बीच भील राजाओं पर बाहरी आक्रमणकारियों ने आक्रमण किया और क्षेत्र उनसे पा लिया।

माला कटारा भील – माथुगामडा क्षेत्र (डूंगरपुर) के शासक।

राजा कुशला कटारा भील– कुशलगढ़ के संस्थापक

कोल्ह राजा – यह बिहार के गया में लखैयपुर के राजा थे , इन्होंने लखैयपुर गढ़ का निर्माण करवाया था जो कि 500 एकड़ से भी अधिक क्षेत्र मै फैला था। भील राजा कोल्ह की पत्नी को नाम

लखिया देवी था उन्हीं के नाम के आधार पर उनकी रियासत का नाम लखैयपुर रखा गया । यह किला गाव के दक्षिण पश्चिम दिशा में है यही मुहाने नदी किनारे जलेश्वर मंदिर स्थित है ,जन्हा ज्योतिर्लिंग हमेशा पानी में डूबा रहता है । इस विशाल किले से एक सुरंग, नदी के नजदीक बने तालाब तक जाती है जनहा रानी और अन्य स्त्रियां स्नान के लिए जाती थी।

केसर भील सरदार – मलवाई के शासक जिनकी हत्या दीपसेन ने 1480 कें –चें करी।

अर्जुन भील – सरतर के भील सरदार।

पासा भील – पल्लीपति यानी एक लाख भील धनुर्धर के राजा थे।

सरदार कम्मल – चूंडा की सहायता करी।

राजा बत्तड़ भील – गुजरात में मोड़ासा रियासत के राजा जिन्होंने सर काट जाने के बाद भी अल्लुद्दिन खिलजी की सेना से युद्ध किया।

नाहेसर के भील सरदार को रावत नाम की उपाधि प्रदान की गई थी

सोदल्लपुर का दल्ला रावत भील काफी प्रभावशाली था । सन् 1872–73 में उसका बाँसवाड़ा रावत से बराड़ विषय पर विरोध हो गया ।

मंदिर आदिवासी भिल कुल दैवत येडुबाई देवी मंदिर, निसर्गगढ – आदिवासी भिल कुल दैवत येडुबाई देवी मंदिर, निसर्गगढ महाराष्ट्र राज्य में पिंपलदरी जिला अहमदनगर तहसील अकोले के मुला नदी स्थित है। जो भिल समुदाय का नैसर्गिक कुलदेवता है। नैसर्गिक सौंदर्य में मुला नदि के तीर के पास वाले पहाड़ में ऊंचाई पर मध्य जगह स्थित है। हर साल चौत्र पूर्णिमा आदिवासी भील समुदाय की ओर से निसर्गगढ़ पिंपलदरी में यात्रा भरी जाती है। यात्रा में 10 से 20 लाख भिल समुदाय के लोग महाराष्ट्र राज्य से अन्य राज्यों से यहां दर्शन के लिए आते हैं। यहां पर

आदिवासी भील समुदाय की सभ्यता का दर्शन होता है। यात्रा सात दिन चलती है।

नील माधव – राजा विश्ववासु भील को नील भगवान की मूर्ति प्राप्त हुए , उन्होंने नीलगिरी की पहाड़िया में मूर्ति स्थापित करी , वर्तमान में इस जगह को जगन्नाथ धाम कहा जाता है यह ओडिशा में है।

भादवा माता मंदिर – भादवा माता मंदिर नीमच जिले मै है , भादवा माता भीलों की कुलदेवी है , रुपा भील के स्वप्न में साक्षात् मां ने दर्शन दिए ।

जालपा माता मंदिर – राजगढ़ में पहाड़ी पर जालपा माता मंदिर है।, यह मंदिर भील शासकों ने बनवाया था ।

शबरी धाम – गुजरात में स्थित है

एकलव्य मंदिर – गुड़गांव में स्थित है ।

आमजा माता – उदयपुर में स्थित है , भीलों की कुलदेवी है ।

जटाऊँ शिव मंदिर – इस मंदिर का निर्माण 11 वी सदी में भीलवाड़ा में भील शासकों ने करवाया था ।

सप्तश्रृंगी – महाराष्ट्र में भील और मराठा की कुल देवी ।

तुंडेश्वर महादेव – यह महादेव मंदिर देवप्रयाग में स्थित है , तुंडा भील ने यह तपस्या की थी।

भिलट देव – भीलों के प्रमुख देवता।

भगवान गेपरनाथ मंदिर – यह मंदिर कोटा जिले में स्थित है , यह एक शिव मंदिर है , इस मंदिर का निर्माण भील राजाओं ने और उनके शेव गुरु द्वारा किया गया था ।

आदिवासी राजा

एकलव्य – राजा हिरण्य धनु के पुत्र ,महान धनुर्धर एवं शिव भक्त, श्रृंगवेरपुर के राजा , निषाद भिल राजा ।

प्रमुख क्रांतिकारी

बिरसा मुंडा – मुंडा विद्रोह के जननायक

टंट्या भील – भारत के रोबिन्हुड

झलकारी बाई – रानी लक्ष्मीबाई की सेनापति

सिद्धू मुर्मू और कान्हू मुर्मू – संताल विद्रोह के नायक

तिलका माँझी – पहाड़िया विद्रोह के नायक

गंगा नारायण सिंह – भूमिज विद्रोह और चुआड़ विद्रोह के महानायक

दुर्जन सिंह – चुआड़ विद्रोह के नायक

बुधू भगत

तेलंगा खड़िया

गुजरात में आदिवासी बाबा पिथोरा देव को उनके भगवान मानते है।

डॉ. कामिनी जैन

आदिवासी दिवस

विश्व आदिवासी दिन विश्व आदिवासी दिवस आबादी के अधिकारों को बढ़ावा देने और उनकी सुरक्षा के लिए प्रत्येक वर्ष 9 अगस्त को विश्व के आदिवासी लोगों का अंतर्राष्ट्रीय दिवस मनाया जाता है। यह घटना उन उपलब्धियों और योगदानों को भी स्वीकार करती है जो मूलनिवासी लोग पर्यावरण संरक्षण जैसे विश्व के मुद्दों को बेहतर बनाने के लिए करते हैं। यह पहली बार संयुक्त राष्ट्र की महासभा द्वारा दिसंबर 1994 में घोषित किया गया था, 1982 में मानव अधिकारों के संवर्धन और संरक्षण पर संयुक्त राष्ट्र कार्य समूह की मूलनिवासी आबादी पर संयुक्त राष्ट्र कार्य समूह की पहली बैठक का दिन।खासकर इसे भारत के आदिवासियो द्वारा धूम धाम स मनाया जाता है,जिसमे रास्तो में रैली निकाली और मंच में झामाझम कार्यक्रम मनाया जाता है।

इतिहास–, विश्व के आदिवासी लोगों का अंतर्राष्ट्रीय दिवस पहली बार संयुक्त राष्ट्र की महासभा द्वारा दिसंबर 1994 में घोषित किया गया था, जिसे हर साल विश्व के आदिवासी लोगों (1995–2004) के पहले अंतर्राष्ट्रीय दशक के दौरान मनाया जाता है। 2004 में, असेंबली ने ''ए डिसैड फॉर एक्शन एंड डिग्निटी'' की थीम के साथ, 2005–2015 से एक दूसरे अंतर्राष्ट्रीय दशक की घोषणा की। ख1, आदिवासी लोगों पर संयुक्त राष्ट्र के संदेश को फैलाने के लिए विभिन्न देशों के लोगों को दिन के अवलोकन में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। गतिविधियों में शैक्षिक फोरम और कक्षा की गतिविधियाँ शामिल हो सकती हैं ताकि एक सराहना और आदिवासी लोगों की बेहतर समझ प्राप्त हो सके।

23 दिसंबर 1994 के संकल्प 49214 द्वारा, संयुक्त राष्ट्र महासभा ने निर्णय लिया कि विश्व के आदिवासी लोगों के अंतर्राष्ट्रीय दशक के दौरान अंतर्राष्ट्रीय आदिवासी लोगों का अंतर्राष्ट्रीय दिवस हर साल 9 अगस्त को मनाया जाएगा। पहली बैठक के दिन, 1982 में मानव अधिकारों के संवर्धन और संरक्षण पर संयुक्त राष्ट्र कार्य समूह की आदिवासी आबादी पर अंकन का दिन है।

आदिवासी चिन्ह एवं प्रतीक

प्रतीक बांग्लादेश के एक चकमा लड़के रेवांग दीवान द्वारा कलाकृ ति को संयुक्त राष्ट्र स्थायी मुद्दे पर –श्य पहचानकर्ता के रूप में चुना गया था। यह विश्व के आदिवासी लोगों के अंतर्राष्ट्रीय दिवस को बढ़ावा देने के लिए सामग्री पर भी देखा गया है। यह हरे रंग की पत्तियों के दो कानों को एक दूसरे का सामना करते हुए दिखाई देता है और एक ग्रह पृथ्वी जैसा दिखता है। ग्लोब के भीतर बीच में एक हैंडशेक (दो अलग–अलग हाथ) की तस्वीर है और हैंडशेक के ऊपर एक लैंडस्केप बैकग्राउंड है। हैंडशेक और लैंडस्केप बैकग्राउंड को ग्लोब के भीतर ऊपर और नीचे नीले रंग से समझाया गया है।

1. भूमिका	टोटेमवादी (गण चिन्हात्मक) कुलध्वंश
2. परिचय	पाँव धोना
3. सामाजिक रीति–रिवाज	आम की पत्तियाँ

परिचय प्रतीकात्मकता को एक प्रकार की भाषा, कुछ कहने का एक तरीका के रूप में समझा जा सकता है। इसमें एक प्रकार का प्रतीकात्मक व्यवहार निहित है, एक संस्थागत प्रतीकात्मक तत्व की उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति में निहित है (बीटी 1997(1964: 202)। आशा है की आदिवासी प्रतीकात्मकता पर

आने वाले विचार – विमर्श में यह स्पष्ट होगा। यह दस्तावेज झारखण्ड एवं छत्तीसगढ़ मूल के कुछ मुख्य आदिवासी समूहों के सन्दर्भ में लिखा गया है। यहाँ दर्शाए गए कुछ अवलोकन अन्य आदिवासियों (मूल निवासी), अथवा देश के आदिवसियों पर भी लागू हो सकते हैं परन्तु किसी भी हाल में वे सबके लिए आम नहीं हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि प्रत्येक आदिवासी समूह अनोखा है, इस कारण इसका प्रतीकात्मक व्यवहार भी अन्य आदिवासियों की तुलना विशिष्ट होने को बाध्य है।

सामाजिक रीति– रिवाज आदिवासी समाज में प्रचलित प्रमुख सामाजिक रीति–रिवाजों का यहाँ उल्लेख किया गया है। यह रिवाज उनके सदियों से चले आ रही परम्पराओं का अभिन्न हिस्सा है, जिसे उन्होंने आज भी जीवंत रखा है।

टोटेमवादी (गण चिन्हात्मक) कुलध्वंश : आदिवासी विभिन्न गोत्रों (कुलों) में विभाजित हैं। प्राचीन काल कुछ वृक्षों, पशु, मछली, चिड़िया अथवा खनिज की प्रजातियाँ कुछ व्यक्तियां कुछ असामन्य अथवा व्यक्तियों के समूह के लिए कुछ असामान्य स्थितियों में भले और सहायक साबित हुए। तदनुसार इन सहायक जीवों अथवा वस्तुओं के नाम के तहत उन लोगों ने स्वयं को समूह बद्ध करके एकत्रित कर लिया और उन्हें अपने कूलध्वंश के टोटेम (गण चिन्ह) के रूप में अपना लिया। शब्द 'टोटेम' एक उत्तरी अमेरिकी इंडियन भाषा से आता है, परंतु पशु अथवा पौधों की प्रजातियाँ एवं कभी– कभी अन्य वस्तुएँ जिन्हें एक समाज के विशेष समूह द्वारा विशिष्ट सम्मान दिया जाता है, के संदर्भ में इसका व्यापक प्रयोग किया जाता रहा है (बीटी 219) जीव अथवा वस्तु जो किसी के टोटेमवादी कूल का अंग होता है, का आदर आदर किया जाता है और उस व्यक्ति द्वारा उसे नष्ट नहीं किया जाता।

धार्मिक स्तर पर यह व्याख्या दी जाती है कि 'परमसत्ता' ने स्वयं आदिवासियों को विभिन्न टोटेमवादी गोत्रों में विभक्त होने में सहायता की (भगत 2–3, लकड़ा 1984:55)। तथापि किसी के मिथकीय पूर्वज के रूप में किसी भी टोटेम के नाम पर कोई धार्मिक पूजा नहीं होती है। एक विशेष गोत्र के सदस्य स्वयं को एक परिवार के एक ही पूर्वज के वशंज मानते हैं। यही कारण है कि वे एक ही गोत्र के अंतर्गत विवाह नहीं करते जो उनके द्वारा कौटूम्बिक – व्यभिचार माना जाता है और इस कारण वे अंतर– गोत्र विवाह का व्यवहार करते हैं। इस प्रकार आदिवसियों के बीच टोटेमवादी गोत्र प्रणाली एक विशिष्ट गोत्र समुदाय की एकता को मजबूत करता है और इसके साथ ही अन्य गोत्र समुदायों के अंतर्गत इनकी गोत्र नियमों के माध्यम से एकता का निर्माण करता है ।

पाँव धोना पृथ्वी को स्वरूप देने के बाद 'परमसत्ता' ने मिट्टी से अनेक मनुष्यों को बनाया और उनमें प्राण भर दिया। उसने अन्य सजीव वस्तुओं को भी बनाया, धरती की सतह पर पौधे और पेड़ बनाए। मनुष्य अनके गुणा बढ़ गए और पृथ्वी के समस्त छोर में भर गए। एक परम्परा के अनुसार "परमसत्ता" एक दिन अपने पालतू बाज पक्षी की सहायता से चिड़ियों का शिकार करने के लिए बाहर गए। बहरहाल, मार्ग में जाते हुए उन्होंने पाया कि मनुष्यों ने अपने मल साथ पृथ्वी को गन्दा कर दिया था। प्रतीकात्मक रूप में यह एक गंभीर क्रिया थी जिसने परम सत्ता को अत्यधिक अप्रसन्न कर दिया। अन्य परम्पराएं भी मनुष्य द्वारा परमसत्ता के विरूद्ध बुरे कर्मों एवं व्यवहार से अप्रसन्न होकर उन्होंने (परमसत्ता) सात दिन और रात तक आग की वर्षा भेजकर उन्हें नष्ट कर दिया। भईया – बहिन को छोड़ जिन्हें उनकी (परमसत्ता) परम प्रिय ने पहले अपने कोष के जुड़े में छुपाकर

रखा तथा बाद में एक खेत केंकड़ा – छेद में, सभी मनुष्य नष्ट हो गए। उसने (परम प्रिय) उन्हें (परमसत्ता) सबक सिखाने के लिए ऐसा किया क्योंकी उन्होंने (परमसत्ता) मनुष्यों को नष्ट होने के साथ ही परमसत्ता और उनकी परम प्रिय की लिए भोजन की आपूर्ति बंद हो गई तब तक उन्होंने (परमसत्ता) भईया– बहिन को अनेक दिनों की खोज और भूख के बाद खोज कर न निकाला और उनको अपने घर ले आए (लकड़ा : 39–49)। उनकी (परमसत्ता) परमप्रिय ने उनका स्वागत मातृ– स्नेह के साथ किया और सप्रेम उनके पाँव धोए। भईया – बहिन के मिल जाने के साथ, उनके परमसत्ता) और उनकी परमप्रिय के लिए भोजन पुनः उपलब्ध हो गया था। आदिवासियों जे बीच परिवार के सदस्यों, संबंधियों, मित्रों एवं अतिथियों के पाँव धोने का रिवाज, इस तरह से इस पौराणिक विवरण में, इसकी एक व्याख्या है।

जहाँ जल शुद्धिकरण का प्रतीक है, जो भी हो चूंकि यह जीवन देता था जीवन को बनाए रखता है यह जीवन प्रतीक भी है। उपरोक्त विवरण से उत्पन्न हुआ कि जो गन्दा और बुरा है उसे अग्नि जलाकर नष्ट करके शुद्ध करता है। तथापि विध्वंस के बाद, भले के लिए कुछ नया जन्म लेता है। इस प्रकार यह रूपांतरण का भी प्रतीक है।

आम की पत्तियाँ असुरों का एक समुदाय उत्पन्न हुआ जो दिन रात लोहा पिघलाते थे। यह कार्य इतना अधिक ताप एवं धुवां उत्पन्न करता था कि पृथ्वी की समस्त हरियाली मुरझाने लगी। परमसत्ता के घोड़ों ने भी अपना चारा खाना बंद कर दिया। उन्होंने (परमसत्ता) अनेक चिड़ियों (संदेशवाहक) को असुरों को यह कहने के लिए भेजा कि उन्हें या तो दिन में कार्य करना चाहिए अथवा रात्रि परंतु दिन – रात नहीं। असुर घमंडी और

जिद्दी थे। उन्होंने सन्देशवाहकों की नहीं सुनी। इसके विपरीत उन्होंने उनका अपमान किया और उनके साथ बहुत बुरी तरह से पेश आए। तब परमसत्ता स्वयं एक बालक जिसके सम्पूर्ण शरीर में घाव भरे थे, के छद्मवेश में स्वयं उनके पास चले आए। उन्होंने उनकी भट्टियों को धीमी गति से कार्य करने वाला कर दिया। जब पुछा गया तो उनहोंने उनको बताया कि भट्टियों के पुनः ठीक से काम करने के लिए एक नर–बलि की आवश्यकता है। उनहोंने उनकी (परमसत्ता) बलि के लिए स्वेच्छा से स्वयं को अर्पित किया और असुरों की स्त्रियों को निर्देश दिया कि जब वे (परमसत्ता) भट्टी के अंदर रहें तो वे (स्त्रियाँ) सात दिन और रात अपनी धौकनियां (भट्टी) को प्रचंडता से चलाते रहें। इसके बाद मिट्टी के सात नए घड़ों में पानी लाकर आप के पत्तियों के एक गुच्छे से पानी का छिडकाव कर उन्हें आप बुझा देनी चाहिए (भगत 1988:46)। उन्होंने ऐसा ही किया और देखो जिस बालक का शरीर घावों से भरा था वह भट्टी में से अपने साथ ढेर सारा सोना लिए हुए एक 'स्वर्ण – बालक' के रूप में रूपांतरित होकर बाहर निकल आया। यही कारण है की आदिवासी व्यक्तियों, पालतू पशुओं, फसलों और अपने उपयोग की आय सामग्रियों पर आम की पत्तियां से पवित्र जल का छिडकाव करते हैं ताकि उन्हें उन वस्तुओं पर परमसत्ता से बहुतायत की आशीष मिल सके जो मानवीय लोभ और घमंड को अनुचित ठहराते है, जैसे कि असुरों के उदाहरण में दर्शाया गया है।

आदिवासियों का पोषण स्तर

स्वतंत्रता के बाद से, कई सरकारी नीतियों और कार्यक्रमों द्वारा आदिवासी समुदायों की आजीविका, शिक्षा और स्वास्थ्य पर ध्यान केंद्रित करके उन्हें विकसित करने के प्रयास किये गए। छह दशकों के विशेष उपायों के बावजूद, आज भी, आदिवासी लोग भारतीय समाज के सबसे कुपोषित भाग बने हुए हैं।

नवीनतम उपलब्ध आंकड़ों से पता चलता है कि भारत के 47 लाख आदिवासी बच्चे पोषण की भीषण कमी से पीड़ित हैं, जो उनके जीवित रहने, विकास, सीखने, स्कूल में प्रदर्शन और वयस्कों के रूप में उत्पादकता को प्रभावित कर रहा है।

50 लाख गंभीर रूप से कुपोषित आदिवासी बच्चों के लगभग 80 प्रतिशत सिर्फ आठ राज्यों कर्नाटक, छत्तीसगढ़, गुजरात, झारखंड, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान और ओडिशा में रहते हैं। इन राज्यों में और अन्य राज्यों में भी जनजातीय लोगों को, जो भारतीय संविधान की पांचवीं अनुसूची से आच्छादित हैं, भूमि हस्तांतरण, विस्थापन और अपर्याप्त मुआवजे का सबसे अधिक खामियाजा भुगतना पड़ा है।

भारत के पाँच वर्ष की आयु से कम के आदिवासी बच्चों में से लगभग 40 प्रतिशत बच्चे बौने (स्टंटेड) हैं, और उनमें से 16 प्रतिशत गंभीर रूप से बौने (स्टंटेड) हैं। कम एवं मध्यम स्तर का बौनापन (स्टंटिंग) आदिवासी और गैर–आदिवासी बच्चों में समान है। लेकिन गैर–आदिवासी बच्चों (ब्छछै 2016–18) की तुलना में

आदिवासी में गंभीर बौनापन (स्टंटिंग) अधिक (16 प्रतिशत बनाम 9 प्रतिशत) है।

सामाजिक एवं आर्थिक रूप से उन्नत वर्गों के बच्चों की तुलना में आदिवासी बच्चों में कुपोषण का स्तर अधिक है। इसी तरह, आदिवासी लोगों की आय सुरक्षा, उत्पादक संसाधनों को होने वाले नुकसान और उन तक पहुंच से प्रतिकूल रूप से प्रभावित हुई है (खराब मुआवजे के साथ वन या कृषि भूमि के अधिकार)। उनके लिए ऋण ही इससे निदान की मुख्य रणनीतियों में से एक है, जिसके परिणामस्वरूप प्रभावित लोगों के सामने अस्तित्व का संकट खड़ा हो गया है।

ओडिशा (लिविंग फार्म्स) और राजस्थान (वागधारा) में प्रयास किया गया है कि जंगल के अप्रयुक्त फलों और सब्जियों को पुनः प्राप्त कर के और पुनर्जीवित करके उन्हें घरेलू चूल्हा में उपयोग में लाया जाये जिससे आहार विविधता में सुधार हो सके। सामुदायिक वनों की सुरक्षा के लिए इन दोनों प्रयासों की वकालत और समर्थन किया गया, ताकि देश के साथ–साथ स्थानीय जीविकोपार्जन के साथ–साथ पर्यावरणीय सुरक्षा के लिए वन्य भूमि का न्यूनतम प्रतिशत रखा जा सके।

साथ ही कुछ आशाजनक पहल भी हुई हैं। मध्य प्रदेश सरकार का एक ऑनलाइन पोर्टल, समग्र, स्थानीय निकायों द्वारा एक परिवार में सभी व्यक्तियों की पहचान, सत्यापन, अ।तन और वर्गीकरण में सहयोग कर रहा है और घरों को उनके उचित मूल्य की दुकानों में इलेक्ट्रॉनिक रूप से जोड़ रहा है। आंध्र प्रदेश और तेलंगाना में गर्म पके हुए भोजन के साथ गर्भवती महिलाओं और स्तनपान कराने वाली माताओं के लिए एक पूरक पोषण कार्यक्रम

ने राष्ट्रीय एकीकृत बाल विकास सेवा योजना की पहुँच को बेहतर बनाने में मदद की है।

इसी तरह, छत्तीसगढ़ में, जन स्वास्थ्य सहयोग ने ग्रामीण बिलासपुर के वन्य एवं दूर–दराज इलाकों में छह से छत्तीस महीने के बच्चों के लिए हैमलेट आधारित क्रेच पर साक्ष्य प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। उन्होंने सरकार द्वारा इस तरह के कार्यक्रम को चलाने के लिए परिचालन आवश्यकताओं, लागत, प्रशिक्षण सामग्री और स्टेशनरी की जरूरतों और एक समस्या निवारण मार्गदर्शिका भी विकसित की है।

पीआरआईए और ग्राम विकास द्वारा सरकार–एनजीओ साझेदारी मॉडल ने समुदायों और ग्राम पंचायतों को पानी और स्वच्छता संरचनाओं के निर्माण और रखरखाव और उनकी जिला योजना समितियों को सक्रिय करने के लिए छत्तीसगढ़, ओडिशा और झारखंड में एक साथ काम करने में मदद की है। भारत का फ्लोराइड नेटवर्क पीने के पानी में फ्लोराइड विषाक्तता को कम करने को पोषण संबंधी सुधारों से जोड़ता है। तरुण भारत संघ और उर्मुल ट्रस्ट, समुदायों से जल प्रबंधन के पारंपरिक ज्ञान का उपयोग करते हैं और सामुदायिक जल प्रबंधन मॉडल को राजस्थान के गंभीर जल–संकट वाले रेगिस्तानी जिलों में प्रोत्साहित करते हैं।

यूनिसेफ के अभियान में आदिवासी बच्चों में अल्पपोषण को दूर करने हेतु सकारात्मक कार्रवाई के लिए कई विभागों के साथ कई स्तरों पर सार्वजनिक वकालत जारी है।

जनवरी 2015 में, यूनिसेफ ने जनजातीय मामलों के मंत्रालय के साथ मिलकर 'भारत के जनजातीय बच्चों का पोषण' विषय पर एक राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित किया। दो दिवसीय सम्मेलन में

लगभग 300 चिकित्सकों, फ्रंटलाइन कार्यकर्ताओं, शिक्षाविदों, नागरिक समाज, नीति निर्माताओं, मीडिया और विधायकों को एक साथ लाया गया।

उन्होंने पांचवी अनुसूची वाले नौ राज्यों से संबंधित आदिवासी बच्चों के पोषण की स्थिति का जायजा लिया, जहां बच्चों में बौनेपन (स्टंटिंग) की समस्या सबसे अधिक है, जिससे इस विषय पर चर्चा की जा सके कि ' क्या और कैसे किया जा सकता है' और कैसे विभिन्न राज्यों के विभाग आपस में समन्वय, सहयोग और सहभागिता के साथ आदिवासी क्षेत्रों में पोषण संबंधी चुनौतियों का हल खोज सकते हैं । नेशनल कॉन्क्लेव के बाद नौ राज्यों में से पांच में एक राज्य कॉन्क्लेव का आयोजन किया गया ।

राज्य छात्रवृत्ति

अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की बालिकाओं को शिक्षा में उत्थान की दृष्टि से आर्थिक सहायता दी जाती है कक्षा 1 से 5 तक छात्राओं को 15 रूपये प्रतिमाह की दर से छात्रवृत्ति प्रदान की जाती है। इस योजना में आय का बंधन नही हैं ठीक इसी प्रकार अनुसूचित जाति और अनुसूचित जन जाति एवं पिछडा वर्ग के वि।ार्थियों को शिक्षा में उत्थान की दृष्टि से छात्रवृत्ति के रूप में आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है।

1. **अस्वच्छ धंधा छात्रवृत्ति :–** अस्वच्छ धंधें में लगे लोगों के बच्चों को छात्रवृत्ति से तात्पर्य ऐसे पालकों से है जो जानवरों का चमडा छिलना एवं पकाने का कार्य करते हैं या परम्परागत ढंग से मैला सफाई का कार्य करते हैं। उनके बच्चों को अस्वच्छ धंधे छात्रवृत्ति की पात्रता है। इस योजना में कक्षा 1 से 10 तक के छात्र छात्राओं को निर्धारित दर अनुसार अस्वच्छ धंधा छात्रवृत्ति के लाभ की पात्रता होती है, उन्हे प्रतिवर्ष अतिरिक्त 500 रू. तदर्थ अनुदान भी दिया जाता है।

2. **पोस्टमैट्रिक छात्रवृत्ति :–** विभाग द्वारा अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति एवं पिछडा वर्ग के वि।ार्थियों को मैट्रिकोत्तर के पाठ्यक्रमों में अध्ययन जारी रखने हेतु पात्रता अनुसार पोस्ट मैट्रिक छात्रवृत्ति की दरे निर्धारित है। इस योजना में आय का बंधन नहीं है।

3. **पोस्टमैट्रिक छात्रावासियों को आगमन भत्ता :–** विभाग द्वारा अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति एवं पिछडा वर्ग के

वि।ार्थियों को प्रथम वर्ष 500 रू. द्वितीय वर्ष 250 रू. एवं तृतीय वर्ष 200 रू. भुगतान किया जाता है साथ ही वि्युत देयकों की प्रतिपूर्ति के लिए प्रति वि।ार्थी प्रतिमाह 25 यूनिट की सीमा निर्धारित है।

4. **प्रावीण्य छात्रवृत्ति :–** विभाग द्वारा अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति एवं पिछडा वर्ग के वि।ार्थियों को जिन्होने प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर की बोर्ड परीक्षा में प्रवीण्य सूची में जिले में अधिकतम अंक प्राप्त करने वाले वि।ार्थियों को प्रवीण्य छात्रवृत्ति अगली कक्षा में प्रवेश लेने पर ही कक्षा 6 से 8 तक 400 रू. प्रतिवर्ष कक्षा 9 से 10 तक के लिए 500 रू. प्रतिवर्ष दी जाती है। इस छात्रवृत्ति के अलावा राज्य छात्रवृत्ति की भी पात्रता है।

5. **मेधावी छात्रवृत्ति :–** विभाग द्वारा अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के हाईस्कूल एवं हायर सेकेण्डरी संस्थाओं में अध्ययनरत कक्षा 10 से 12 के छात्र छात्राओं में स्वस्थ्य प्रतिस्पर्धात्मक प्रतियोगिता की भावना विकसित करने एवं शौक्षणिक स्तर में सुधार लाने की दृष्टि से मेधावी वि।ार्थियों के लिए नेहय प्रोत्साहन पुरूस्कार योजना प्रारंभ की गई है।

6. **छात्रवास शिष्यवृत्ति :–** शासन से प्रमुख सुविधा के अंतर्गत बालक को 350 रू. एवं बालिकाओं को 360 रू. प्रतिमाह की दर से 10 की शिष्यावृत्ति दी जाती है।

7. **आश्रम शिष्यवृत्ति :–**

प्रदेश के वन अंचल एवं दूरस्त क्षेत्रों में जहाँ शौक्षणिक सुविधा नहीं है आश्रम शाला की व्यवस्था की जाती है। इन आश्रमों में कक्षा पहली से आठवी तक की कक्षायें लगाई जाती है सभी

आश्रमों में छात्र–छात्राओं को निवास की सुविधा उपलब्ध है। आश्रम परिसर में ही शिक्षकों के लिए आवास सुविधा उपलब्ध है। प्रत्येक बालक को 350 एवं बालिका को 360 रू. प्रतिमाह की दर से 10 माह के लिए शिष्यावृत्ति की पात्रता होती है।

8. **छात्रगृह योजना :–**

विभाग द्वारा अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति एवं पिछडा वर्ग के वि।ार्थियों को 102 तथा मैट्रिकोत्तर कक्षाओं में अध्ययनरत उन वि।ार्थियों के लिए जिन्हे स्थानाभाव के कारण विभागीय मैट्रिकोत्तर छात्रावासों में प्रवेश नहीं मिल पाता है उनके लिए शासन ने छात्रगृह योजना संचालित की गई है जिसमें 4–5 वि।ार्थियों को किराया का भवन लेकर निवास करते हैं बाद में विभाग द्वारा शासन द्वारा स्वीकृत निर्धारित दर से आवास भत्ता दिया जाता है जिसमें 25 यूनिट बिजली तथा 10 रूपये जलप्रभार प्रतिमाह वि।ार्थियों को भुगतान किया जाता है।

9. **बलिकाओं को गणवेश योजना :–**

आदिवासी विकास खण्डों में विभागीय प्राथमिक शालाओं में अध्ययनरत अनुसूचित जाति एवं जनजाति की छात्रओं को गणवेश दिये जाने का प्रावधान है।

10. **कन्याओं को शिक्षण हेतु प्रोत्साहन योजना :–**

विभाग द्वारा अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की छात्रओं को 5 वीं उत्तीर्ण कर 6 वीं में अध्ययनरत होने पर 50 रू. प्रतिमाह एवं कक्षा 9 एवं 11 वी में अध्ययनरत छात्राओं को 100 एवं 200/– रू. प्रतिमाह की दर से प्रोत्साहन स्वरूप राशि प्रदान की जाती है।

11. अनुसूचित जाति कन्या विवाह सौभाग्यवती योजना :–

मध्यप्रदेश शासन द्वारा कन्या विवाह योजना नियम 204 के अंतर्गत गरीब वर्ग के अनुसूचित जाति परिवार की कन्या के लिए 5000 रू. नगर अनुदान राशि देने का प्रावधान इस योजना के अंतर्गत किया जाता है।

12. अनुसूचित जाति सामूहिक विवाह योजना :–

अनुसूचित जाति कन्या के विवाह के समय साहूकारों के कर्जा लेने फिजूल खर्च में कमी लाने एवं सामूहिक विवाह के माध्यम से अनुसूचित जातियों का मनोबल बढाने के उ ोश्य से यह योजना प्रारंभ की गई 12000 रू. से कम वार्षिक आय वाले अनुसूचित जाति परिवारों की कन्याओं को 500 रू. सहायता अनुदान के रूप में दिया जाता है।

13. पिछडा वर्ग सामूहिक विवाह प्रोत्साहन योजना :–

यह योजना वर्ष 1999 से लागू हुई है। पिछडा वर्ग के गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले माता–पिता को अपने बच्चों के विवाह के लिए आर्थिक कठिनाईयों का सामना करना पडता है जिसके निवारण हेतु सामूहिक विवाह प्रोत्साहन योजना अंतर्गत सामाजिक संस्थाओं के माध्यम से वर बधू दोनों में से किसी एक गरीबी रेखा के नीचे होना आवश्यक है।

14. राहत योजना :–

योजनान्तर्गत नियम 7 श्रेणी एवं ऐसी बेसहारा कन्या जिसके माता–पिता न हो जिसके पालन पोषण अन्य दूसरे व्यक्ति द्वारा किया जा रहा है, भाादी हेतु 2000 रू. अनुदान दिया जाता है। ''ग'' श्रेणी के अंतर्गत परिवार की संकटपन की

स्थिति में परिवार के मुखिया की मृत्यु होने पर दुर्घटना होने पर बीमारी के इलाज हेतु 1000 रू. अनुदान स्वरूप की जाती है। अनुसूचित जाति जनजाति ऐसे परिवार जिनकी वार्शिक आय 2400 है ऐसे परिवार को कन्या विवाह हेतु 1000 रू. अनुदान दिया जाता है।

15. **अनुसूचित जाति अत्याचार/पुनर्वास सहायता योजना :–**

विभाग द्वारा अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के प्रति सवर्णों द्वारा किये गए अत्याचार के कारण पीडित व्यक्ति को तुरंत आर्थिक सहायता उपलब्ध कराई जाती है ऐसे प्रकरण में अत्याचार की शिकायत अ.जा. अत्याचार निवारण अधिनियम के अंतर्गत थाने में दर्ज होने पर पुलिस अधिक्षक की रिपोर्ट पर कलेक्टर द्वारा स्वीकृति दी जाती है।

16. **वि।र्थी कल्याण :–** विभाग द्वारा अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति एवं पिछडा वर्ग के वि।र्थियों को आकस्मिक सहायता जैसे चिकित्सा व्यवसायिक शिक्षा में प्रवेश के लिए जिनके माता–पिता की वार्शिक आय 12000 रू. से अधिक नहीं है उन्हे लाभान्वित किया जाता है।

17. **जनुसूचित जनजाति बस्तियों का सघन विकास :–**

ऐसे नगर एवं बस्तियां जिनमें निवास करने वाले अनुसूचित जाति की जनसंख्या 50 प्रतिशत से अधिक है नगरीय अनुसूचित जाति बस्तियों के विकास के लिये म.प्र. गंदी बस्ती सुधार मण्डल के माध्यम से स्थानीय निकायों के द्वारा सामुदायिक भवन, चबूतरा निर्माण, पेयजल, कूप मरम्मत, नवीन पेयजल कूप निर्माण, वर्ग शेड, आंतरिक मार्ग (खरंजा निर्माण) अन्य ऐसे कार्य जिन्हे एन.आर.ई.पी. ने कार्य प्रारंभ करने पर प्रतिबंधित किया है। अन्य मूलभूत सुविधाओं के लिए नगर

पालिका प्राप्त प्रस्तावों के आधार पर अ.जा. बस्ति बाहुल्य ग्रामों में उक्त कार्य कराए जाते हैं।

18. **अस्वच्छ धंधों का व्यवसायीकरण :–**

80 प्रतिशत से अधिक अ.जा. बाहुल्य क्षेत्रों का निर्माण कराना एवं अस्वच्छ धंधों में लोगों की कार्यदशा में सुधार के साथ सिर पर मैला ढोने के प्रथा जड मूल से समाप्त करना व गंदी बस्ती में निवास के लिये स्वच्छ एवं उपयुक्त वातावरण निर्मित करना। जिससे सदियों से चली आ रही अस्पृश्यता की भावना समाप्त हो सके। इस योजना में 80 प्रतिशत अनुदान सुखे शौचालयों के फ्लेस शौचालयों में परिर्तित करना, कचरा मैला गाडी क्रय करना, वही बेरोजगार एवं मैला साफ करने की तकनीकी औजारों का क्रय करना, तथा सैप्टिक टैंक एवं नालियों की सफाई हेतु, मशीन, क्रय अनुदान/सफाई कामगारों को गमबूट दस्ताने एवं पंजा आदि उपलब्ध करान का प्रावधान है।

19. **अस्पृश्यता निवारणार्थ (ग्राम पंचायत पुरूस्कार) योजना :–**

ग्राम पंचायतों को अस्पृश्यता निवारण की दशा में उत्कृष्ट कार्यों के लिए पुरूस्कार दिया जाता है। इसमें अनुसूचित जातियों की बस्ती में विकास एवं वि.ुतीकरण के कार्य भी सम्मिलित है। ऐसी पंचायतों को उत्कृष्ट कार्यों का जिला स्तर पर 5000 रू. संभाग स्तर पर 10000 रू. एवं राज्य स्तर पर 20000 रू. मूल्यांकन करने के पश्चात नगद पुरूस्कार दिया **जाता है।**

20. **अस्पृश्यता निवारणार्थ प्रचार प्रसार (सदभावना शिविर) योजनाः–** अनुसूचित जातियों के विकास एवं कल्याण तथा उनके प्रति अस्पृश्यता के कलंक को मिटाने हेतु सदभावना

शिविरों का विकास खंड स्तर पर आयोजन 2 अक्टूबर गांधी जयंती अथवा 26 जनवरी गणतंत्र दिवस पर्व पर अनुसूचित जाति बाहुल्य बस्ती में किया जाता है। इन शिविरों के द्वारा ऐसी रूढियों और ब्याधियों के विरूद्ध निर्मल और सामाजिक वातावरण बनाने की एक अच्छी पहल है।

21. **अंतर्जातीय विवाह प्रोत्साहन योजना :–** इस योजना का मूल उद्देश्य समाज में अस्पृश्यता की भावना का उन्मूलन करना है। अनुसूचित जाति वर्ग के युवक अथवा युवती के द्वारा किसी सवर्ण हिंदू युवती अथवा युवती अथवा युवक के साथ विवाह करने पर नवदम्पत्ति को रू. 10000 रू. नगद एवं प्रशस्ति पत्र प्रोत्साहन स्वरूप दिया जाता है।

22. **दाई प्रोत्साहन योजना :–** ग्रामीण क्षेत्रों में प्रसूति के लिये अनुसूचित जाति परिवार की महिलाएं दाई का कार्य करती है। ऐसी महिलाओं को पारिश्रमिक प्राप्त नहीं होता है। राज्य शासन प्रसूति कराने वाली दाईयों को प्रोत्साहन के रूप में प्रति प्रसूति 15 रू. की दर से राशि देता है यह राशि मुख्य चिकित्सा अधिकारी से प्राप्त जानकारी के आधार पर कलेक्टर के द्वारा स्वीकृत की जाती है।

23. **उत्कृष्ट शिक्षा केन्द्रों की स्थापना :–** मध्यप्रदेश शासन आदिम जाति एवं अनुसूचित जाति कल्याण विभाग मंत्रालय द्वारा जुलाई 2001 से उत्कृष्ट शिक्षा केन्द्रों की योजना संचालित की गई है।

24. **मध्यान्ह भोजन कार्यक्रम :–** उमरिया जिले के 03 विकासखण्ड करकेली, पाली, मानपुर में मध्यान्ह भोजन कार्यक्रम के तहत् प्राथमिक शालाओं/अनुदान प्राप्त प्राथमिक शालाओं एवं शिक्षा

गारंटी शालाओं में दर्ज छात्र–छात्राओं को गरम भोजन (दाल,रोटी/सब्जी,रोटी) प्रदान किया जा रहा है।

25. **अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति में शिक्षा प्रोत्साहन हेतु ग्राम पंचायत को पुरूस्कारः–**

26. मध्यप्रदेश शासन द्वारा प्रदेश के आदिवासी बाहुल्य जिलों के आदिवासी विकास खंडों में स्थापित ग्राम पंचायतों को स्कूल जाने योग्य अनुसूचित जनजाति/अनुसूचित जाति वर्ग के बालक/बालिकाओं को शतप्रतिशत प्रवेश किये जाने से पंचायतों की सहभागिता सुनिश्चित करने तथा इस दिशा में सक्रिय भूमिका निर्वहन करने तथा प्रशासकीय कार्य करने वाली ग्राम पंचायतों को पुरस्कृत किया जाता है। पुरूस्कार के लिए अर्हता पूर्ण करने वाली प्रत्येक ग्राम पंचायत को 25000 रू. की राशि पुरस्कार स्वरूप दी जाती है।

27. **समेकित बाल विकास सेवा योजना (आई.सी.डी.एस.):–**

उमरिया जिले में योजना वर्ष 1999 से प्रारंभ की गई इस योजना का उ ेश्य 6 वर्ष तक के बच्चे को समुचित पूरक पोषण आहार का प्रदाय स्वास्थ्य की स्थिति में सुधार लाना उनके मनोवैज्ञानिक, शारीरिक एवं मानसिक विकास के लिए उचित आधार प्रदान करना कमजोर वर्ग की गर्भवती एवं शिशुवती महिलाओं को आंगनबाड़ीके माध्यम से लाभान्वित करना है इसके लिए समन्वित रूप से निम्न सेवाएं आंगनबाड़ीकेन्द्रों में दी जाती है –

1. पूरक पोषण आहार
2. स्वास्थ्य जांच
3. प्राथमिक स्वास्थ्य की देखभाल सेवाएं

4. टीकाकरण
5. पोषण एवं स्वास्थ्य शिक्षा
6. स्कूल पूर्व अनौपचारिक शिक्षा

इस योजना के तहत् भारत शासन के मापदण्डों के अनुसार ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में 1000 की जनसंख्या पर तथा आदिवासी क्षेत्रों में 700 की जनसंख्या पर आंगनबाड़ीकेन्द्र किये गये ळें

समेकित बाल विकास परियोजना में पोषण आहार की व्यवस्थाः–

पूरक पोषण आहार विशेष रूप से आंगनबाड़ी केन्द्रों में 06 माह के बच्चों गर्भवती एवं शिशुवती महिलाओं एवं कुपोषित बच्चों को दिया जाता है। राज्य शासन द्वारा पोषण आहार की नवीन व्यवस्था के संबंध में मध्यप्रदेश शासन, महिला एवं बाल विकास विभाग द्वारा 15/02/07 से नवीन निर्देश जारी किये गये हैं। नवीन व्यवस्था के अनुसार 6 माह से 03 वर्ष तक के बच्चों एवं 03 से 06 वर्ष तक के बच्चों तथा गर्भवती/धात्री माताओं को पूरक पोषण आहार की व्यवस्था भिन्न–भिन्न दी गई है। 06 माह से 03 वर्ष तक के बच्चों को विश्व खा। कार्यक्रम के माध्यम से विनिंग फूड प्रदाय करने का प्रावधान है। 03 वर्ष से 06 वर्ष तक के बच्चों तथा गर्भवती/धात्री माताओं को सप्ताह के अलग–अलग दिनों में अलग–अलग प्रकार का पूरक पोषण आहार दिया जाता है। नवीन पूरक पोषाहार व्यवस्था अप्रैल 07 से लागू की गई है। भारत सरकार द्वारा आंगनबाड़ी केन्द्रों में प्रदाय किये

जाने वाले पूरक पोषण आहार के लिये आवश्यक पोषक तत्व एवं कैलोरी की अधिकतम् सीमा निर्धारित की गई है।

बच्चे (06 माह से 06 वर्ष) 2 रू. प्रति बच्चा प्रतिदिन प्रोटीन 8–10 ग्राम एवं 300 कैलोरी दी जानी है। एवं गंभीर कुपोषित बच्चे (06 माह से 06 वर्ष तक) 2.70 प्रतिदिन प्रोटीन 16 से 20 ग्राम एवं 500 कैलोरी दी जाती है। इसी प्रकार गर्भवती स्त्री, धात्री माता एवं किशोरी बालिका 2.30 प्रति हितग्राही प्रतिदिन प्रोटीन 16–20 ग्राम एवं 500 कैलोरी दी जाती है।

06 माह से 03 वर्ष तक के बच्चों के लिये सप्ताह में 5 दिन विशेष प्रकार का विनिंग फूड जैसे इंण्डिया मिक्स पंजीरी रेडी–टू–ईट एनर्जी फूड का प्रदाय विस्त्र खा। कार्यक्रम के अतिरिक्त एम.पी.एग्रो के माध्यम से किया जाता है। सप्ताह के शेष एक दिन उक्त श्रेणी के बच्चों को लोकल फूड माडल के आधार पर 03–06 वर्ष तक के बच्चों को दी जानें वाली सामाग्रियों में से कोई एक उपयुक्त सामग्री जैसे– हल्वा, उबले, आलू, उबली दाल का मिश्रण, विशेष प्रकार की खिचडी एवं सत्तू इत्यादि आंगनबाड़ी केन्द्र पर प्रदाय किये जाने का प्रावधान है। यह सामग्री विभाग द्वारा प्रत्येक सप्ताह में प्रस्तावित मंगल दिवस को दी जाती है।

28. **किशोरी शक्ति योजना :–**

वर्ष 2001–2002 से किशोरी बालिका योजना क्रमांक 1 एवं 2 को समाप्त करते हुये किशोरी शक्ति योजना का संचालन करने के निर्देश प्राप्त हुये जिसमें 11 से 18 वर्ष की किशोरी बालिकाओं को प्रशिक्षण दिया जाकर स्वास्थ्य की देखभाल, व्यक्गित स्वच्छता, जॉच टीकाकरण छोटी मोटी बीमारियों का इलाज, पेट के कीडों का उपचार, आयरन, फोलिक ऐसिड की

गोलियां उपलब्ध करान विटामिन ''ए'' की कमी दूर करना, एनिमिया के संबंध में समझाइश देकर सेवाएं प्रदान करना है। यह योजना 11 विकास खंडों में संचालित की गई जिसमें विकासखंड/पंचायत स्तरीय प्रशिक्षण दिए जातें हैं।

महिला स्वास्थ्य योजना

महिलाओं के स्वास्थ्य स्तर को और बेहतर बनाने के लिए निम्न योजनायें संचालित की जा रही है –

(अ) आयुष्मती योजना :– प्रदेश सरकार द्वारा वर्ष 1991 में प्ररंभ की गई योजनान्तर्गत ग्रामीण क्षेत्र की भूमिहीन किसी महिला या बालिका के बीमार होने पर जिला चिकित्सालय में भर्ती होने पर इलाज की निःशुल्क सहायता प्रदान की जाती है जिला चिकित्सालय परिसर में ही विश्रामालय का निर्माण किया गया है ताकि रोगी के साथ आये परिजनों के लिए ठहरने की व्यवस्था की जा सके। सात दिवसों तक भर्ती रहने पर 400 रूपयें व 7 दिवस से अधिक भर्ती हरने पर 1000 रूपये तक की अतिरिक्त दवाइयों एवं पौष्टिक आहार पर व्यय किया जाता है तथा शासन निर्देश के तहत इस योजना का विकास खंड स्तर पर विस्तार किया गया है जिसके तहत् खण्ड स्तर पर स्थित सिविल अस्पताल सामुदायिक केन्द्र एवं प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र पर उक्त योजना का महिला–बालिकाओं को लाभ दिया जाता है।

(ब) दत्तक पुत्री शिक्षा योजना :– ग्रामीण एवं भाहरी क्षेत्रों में जो बालिकाऐ आर्थिक समस्या के कारण अपनी शिक्षा जारी रखने में असमर्थ है को उसकी शिक्षा जारी रखने के लिए 5 वीं कक्षा तक 30 रूपये प्रतिमाह और उसके बाद में मिडिल स्कूल 40 रू. प्रतिमाह की सहायता राशि दी जाती है।

(स) अति गरीब महिलाओं को प्रसव पूर्व आर्थिक सहायता :– अति गरीब को प्रसव के पूर्व आर्थिक सहायत के लिए यह योजना तैयार की गई है। इस योजना का उ। य अति गरीब महिलाओं

को प्रसव के पूर्व स्वयं ही देख–भाल ओर प्रसव के लिए होने वाले व्यय की कुछ हद तक पूर्ति की जाना।

योजना का कार्यक्षेत्र :– यह योजना राज्य के सभी जिलों के भाहरी एवं ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में संचालित की जावेगी।

योजना के लिए पात्रता :–

- गर्भवती महिला की आयु 19 वर्ष या अधिक हो।
- गर्भवती महिला का परिवार गरीबी रेखा के नीचे अत्यंत गरीब हो एवं अति गरीब के लिए पूर्व में कराये गये सर्वेक्षण में पंजीकृत हो अथवा पीला राशन कार्डधारी हो।
- सहायता राशि केवल प्रथम दो जीवित बच्चों तक देय होगी।

सहायता राशि :– सहायता राशि 500 रूपये होगी जो यथा संभव 6 माह पूर्व दी जावेगी।

- अशासकीय स्वयं सेवी संस्थाओं को अनुदान।
- म.प्र. शासन महिला एवं बाल विकास विभाग द्वारा निम्नानुसार महिला एवं बाल विकास से संबंधित कार्य करने वाली अशासकीय स्वयं सेवी संस्थाओं को अनुदान होता है। संस्था पंजीकृत एवं विभागीय मान्यता प्राप्त होना आवश्यक है।
- बालकों के कल्याण करने वाली संस्थायें।
- विधवाओं अनाथ परित्यक्ता महिलाओं और बच्चों के कल्याण कार्य करने वाली संस्थाएं।

- महिला एवं बाल विकास संचालनालय द्वारा अनुमोदित अन्य प्रकार की समाज सेवा करने वाली संस्थाएं। सामान्यतः अनावर्ती अनुदान लागत के 50 प्रतिशत तथा आवर्ती अनुदान 33.3 प्रतिशत दिया जा सकता है अपंगों, विकलांगों तथा नैतिक एवं सामाजिक क्षेत्र में कार्यरत संस्थाओं को आवर्ती तथा अनावर्ती अनुदान लागत के 70 प्रतिशत तक दिया जा सकता है ग्रामीण एवं शहरी दोनों क्षेत्रों में सुविधा उपलब्ध है।

1. **एकीकृत बाल विकास सेवा योजना :–** बच्चों एवं महिलाओं के सर्वांगीण विकास के लिए 6 वर्ष तक की आयु के बच्चों में कम भार, कुपोषण शिशु मृत्यु दर एवं मातृ मृत्यु दर कम करने एवं बच्चों को मनोवैज्ञानिक एवं शारीरिक विकास की पूर्ति हेतु 6 वर्ष तक के बच्चों, गर्भवती एवं शिशुवती महिलाओं को आंगनबाड़ीकेन्द्रों के माध्यम से निम्न सुविधायें दी जाती है।

   1- पूरक पोषण आहार
   2- स्वास्थ्य जांच शिक्षा प्रतिरक्षण
   3- संदर्भ सेवाएं
   4- स्वास्थ्य एवं पोषण शिक्षा
   5- स्कूल पूर्व अनौपचारिक शिक्षा

   बच्चों के संर्वागीण विकास में महिलाओं की भूमिका महत्वपूर्ण हैं अतः 15 से 45 वर्ष की महिलाओं को भी इस योजना से जोडा गया है।

2. **राष्ट्रीय मातृत्व सहायता योजना :–** गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाली परिवार की गर्भवती महिलाओं

को दो जीवित बच्चों तक प्रसव पूर्व 8 से 12 सप्ताह पूर्व चिकित्सकीय एवं पोषण सुविधा हेतु 500 रूपये की सहायता दी जाती है।

उद्देश्य :– प्रथम मृत्यु दर एवं शिशु मृत्यु दर में कमी लानाः–

पात्रता :– प्रथम प्रसव में महिला की उम्र 19 वर्ष से कम नहीं होना चाहिए प्रथम व द्वितीय बच्चों में तीन साल का अंतर होना चाहिए उपस्वास्थ्य केन्द्र में पंजीयन एवं अयारन की गोली व टी.टी. के टीके लगे होना चाहिए।

संपर्क :– ग्राम पंचायत/आंगनबाड़ी कार्यकर्ता तथा स्थानीय नगर निकाय।

3. **आयुष्मती योजना :–** प्रदेश के छः मेडिकल कालेजों के अस्पतालों एवं सभी सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र में यह योजना लागू है।

उद्देश्य :– गरीब वर्ग के ग्रामीण भूमिहीन परिवार की महिलाओं को इलाज की विशेष सुविधा व देखभाल उपलब्ध कराना ताकि शीघ्र स्वस्थ्य हो सके।

4. **किशोरी प्रशिक्षण योजना :–** ग्रामीण चरण में 15 से 18 वर्ष की 2 किशोरी बालिका प्रति आंगनबाड़ी केन्द्र से आंगनबाड़ी कार्यकर्ता एवं ए.एन.एम. को परियोजना स्तर पर कुशल प्रशिक्षण का 2 दिवसीय प्रशिक्षण दिया गया द्वितीय चरण में प्रथम चरण में प्रशिक्षण किए गए कुशल प्रशिक्षक पंचायत स्तर पर 18 बालिकाओं को निश्चित अन्तराल से एक वर्ष में 3 प्रशिक्षण देकर पंचायत की 18 किशोरी बालिकाओं को स्वास्थ्य पोषण सामाजिक,

मानसिक, शारीरिक विकास एवं आर्थिक आत्मनिर्भरता के संबंध में प्रशिक्षित करते हैं।

कुशल प्रशिक्षक के रूप के चयनित 2 किशोरी बालिकाओं को 6 माह के लिए संबंधित आंगनबाड़ी से संबंध किया जाकर 6 माह तक पूरक पोषण आहार एवं आंगनबाड़ी के द्वारा दी जाने वाली 6 सेवाओं की जानकारी देकर आंगनबाड़ी कार्यकर्ता के कार्य में भी परिपक्वता किया जाता है।

पात्रता :–

1- गरीबी रेखा की 11 से 18 वर्ष की शाला त्यागी बालिकाएं।
2- गरीबी रेखा की 11 से 18 वर्ष की गैर शाला त्यागी बालिकाएं
3- गरीबी रेखा से उपर शाला त्यागी बालिकाएं
4- गरीबी रेखा से उपर गैर शाला त्यागी बालिकाएं

5. **ग्राम्य योजना :–** गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाली ग्रामीण महिलाओं को लघु व्यवसाय हेतु 500 रूपयें की व्याज रहित ऋण उपलब्ध कराया जाता है।

पात्रता :– साप्तहिक दैनिक हाट बाजारो में दुकान लगाने वाली सभी महिलाएं नियमित कर्ज लौटा देने पर दूसरी बार एक हजार रू. ब्याज रहित ऋण की पात्रता योजना में विधवा, परित्यक्ता, तलाक सुदा तथा निराश्रित महिलाओं को प्राथमिकता दी जाती है। ऋण आसान कि तों में सप्ताहिक 10 रू. या मासिक 40 रू. या 50 रू. सुविधानुसार अदा की जा सकती है।

6. **बालिका समृद्धि योजना :–** गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले परिवार में प्रति दो बालिकाओं के जन्म पर बालिकाओं की माताओं को प्रसव पश्चात रू. 500 की आर्थिक सहायता दी जाती है।

1- कक्षा पहली से तीसरी तक 300 रू. प्रतिवर्ष कक्षा।
2- कक्षा चौथी से पांचवी तक 600 रू. प्रतिवर्ष कक्षा।
3- कक्षा 6–7 में 700 रू. प्रतिवर्ष प्रति कक्षा।
4- कक्षा 8 वीं में 800 रू. प्रतिवर्ष प्रति कक्षा
5- कक्षा 9–10 वीं में 1000 रू. प्रतिवर्ष कक्षा।

उद्देश्य :– समजा में बालिका के जन्म में भेदभाव दूर करने हेतु जागुरूकता पैदा करना।

संपर्क :– ग्राम पंचायत/आंगनबाड़ीकार्यकर्ता एवं भाहरी क्षेत्र में स्थानीय निकाय।

7. **दत्तक पुत्री शिक्षा योजना :–** बालिका शिक्षा को बढावा देने हेतु समाज में जागरूकता पैदा करने तथा बालिका शिक्षा में समात की सहभागिता हेतु यह योजना चलाई जा रही है।

संपर्क :– आंगनबाड़ीकार्यकर्ता/सह.म.बा.वि विस्तार अधिकारी अथवा विभागीय अधिकारी।

8. **विपत्ति ग्रस्त महिला को कानूनी सहायता :–**

विपत्तिग्रस्त महिला और बच्चों को स्वयं सेवी संस्थानों के जरिये कानूनी सलाह और सहायता देने का प्रावधान है। यह सहायता जिला विधिक सहायता अधिकारी के माध्यम से भी दी जा सकती है। इस तारतम्य में दहेज प्रताडित महिलाओं

को भी कानूनी मदद दिलाई जाती है। इसके लिए खंड स्तर पर स.म.बाल. विस्तार अधिकारी तथा जिला स्तर पर कार्यक्रम अधिकारी महिला वाल विकास से संपर्क किया जा सकता है।

9. **जाबाली योजना :–** परम्परागत रूप से वे यावृत्ति व्यवसाय में संलग्न महिलाओं और उनके बच्चों को पुनर्वास, स्वास्थ्य, जॉच तथा उपचार हेतु योजना संचालित की गयी है। 13 वर्ष से अधिक उम्र की बालिकाओं के लिए शिक्षा प्रशिक्षण व अनुरक्षण की सुविधा दी जाती है अधिक जानकारी के लिए जिला कार्यक्रम अधिकारी, महिला बालविकास से संपर्क किया जा सकता है।

10. **शौक्षणिक संस्थाएं :–** शालेय शिक्षा के अन्तर्गत 89 आदिवासी विकास खण्डो में विभाग द्वारा संपूर्ण शैक्षणिक संस्थओं का संचालन किया जा रहा है। वर्तमान में विभाग द्वारा 12683 प्रथमिक शालाएं 4369 माध्यमिक शालाऐ 510 हाई स्कूल एंव 476 उच्चतर माध्यमिक शालाओं का संचालन किया जा रहा है इसके अतिरिक्त 14 क्रीडा परिसर 9 आदर्श उच्चतर माध्यमिक वि।ालय तथा 3 कन्या शिक्षा परिसर भी संचालित हो रहे है।

11. **आवासीय संस्थायें :–** अनुसूचित जनतातिय में साक्षरता व शिक्षा के प्रति रूचि जाग्रत करने शाला छोंडने की प्रवृत्ति पर अंकुश लगाने व वि।ार्थीयो के मध्य उत्तम स्पर्धा की भावना में वृद्धि के उद्देश्य से आदिवासी विकास विभाग द्वारा छात्रावास एवं आश्राम संचालित किये जा राहे है। वर्तमान में 1166 पूर्वमाध्यमिक छात्रावास 86 मैट्रिकोउत्तर छात्रावास तथा 725 आश्रम शालाये संचालित है जिनमें छात्र/छात्राओं को निशुल्क आवासीय सुविधाये उपलब्ध हें

छात्रावास एवं आश्रम में रहने वाले प्रत्येक वि।र्थी को छात्रवृत्ति प्रदान की जाती है वर्ष 2003–04 में छात्रावासो में प्रवेश लेने वाले प्रत्येक 34.09 हजार वि।र्थी को 1010. 40 लाख रूपये एवं आश्रम शालाओं में प्रवेश लेने वाले 31. 34 हजार वि।।र्थीयों के 934.36 लाख रूपये की राशि छात्रवृत्ति के रूप में परिवर्तित की गयी वर्ष 2004–05 में लगभग 36.77 हजार वि।र्थीयो को छात्रावास एवे 34.12 हजार वि।र्थीयो को आश्रम छात्रावृत्ति देने प्रस्ताव रखा गया ।

12. **छात्र गृह योजना :–** अनुसूचित जनजाति के जिन विद्यार्थीयो को छात्रावास में प्रवेश नही मिल पाता है उन्हे आवासीय सुविधा उपलब्ध कराने के निए प्रदेश में आदिवासी विकास विभाग द्वारा छात्र गृहयोग संचालित की जा रही है योजनानुसार कक्षा 11 वी और उपर की कक्षाओ में अध्ययनरत अनुसूचित जनजाति के वि।र्थीयो को आवासीय सुविधा उपलब्ध कराई जा रही है। एक छात्रगृह के लिए कम से कम 5 वि।र्थी होना आवश्यक है। योजनान्तर्गत वर्ष 2003–04 में 45.00 लाख रूपये के प्रवधान में 30.76 लाख रूपय की राशि व्यय की गयी जिससे 4.12 हजार वि।र्थी लाभान्वित हुए वर्ष 2004–05 में 5 हजार वि।र्थीयो को लाभान्वित करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया।

13. **उत्कृष्ट केन्द्रों की स्थापना :–** राज्य में प्रतिभाशाली अनुसूचित जनजाति के 60 प्रतिशत या उससे अधिक अंक पाने वाले वि।र्थीयो को उत्कृष्ट स्तर की शिक्षा प्राप्त करने के उद्वेश्य से प्रदेश के सभी जिलो में उत्कृष्ट शिक्षा

केन्द्रो की स्थापना की गई है। इन केन्द्रों में वि।र्थियो को आवासीय सुविधा देने के साथ 500 रूपये छात्रवृत्ति देने का भी प्रावधान है वर्ष 2003–2004 में 284.34 लाख रूपये व्यय कर 1.4 हजार वि।र्थियो को लाभान्वित किया गया इसी अवधि में 20 विकास खंड मुख्यालयो में एक बालक एवं एक कन्या प्रीमैट्रिक छात्रावास को उत्कृष्ट शिक्षा केन्द्र में परिवर्तित किया गया वर्ष 2004–05 में 307 हजार वि।र्थियो को लाभान्वित करने का लक्ष्य रखा गया तथा 20 विकास खण्डो में एक बालक तथा एक कन्या छात्रावास को उत्कृष्ट शिक्षा केन्द्र के रूप में परिवर्तित करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया ।

14. **स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण :–** अनुसूचित जनजातियो की अधिक संख्या वाले पिछडे ग्रामीण क्षेत्रो में रहने वाले लोगो को सेवाएं प्रदान करने के लिए राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीती में उच्च प्राथमिकता प्रदान की गयी है अनुसूचित जनजाति बाहुल्य क्षेत्रो की कीटनाशक दवाओ का छिडकाव, मलेरिया रोधी दवाये प्रदान की जाती है। इन क्षेत्रो में 20.769 उपकेन्द्र व 3286 प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र व 541 सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र स्थापित किये गये है।

15. **महिला शिशु विकास :–** नौवीं योजना के अंत तक कार्य कर रही 4608 परियोजनाओ में से 758 जनजातियो परियोजनायें थी। जिनके माध्यम से 48 लाख बच्चे व 96 लाख माताओं को सेवाए प्रदान की जाती हैं वर्ष 2002–03 के विभिन्न योजनाओं के लिए 1090 करोड रूपये व्यय करने का प्रावधान था।

कुपोषण –अधिकांश भारतीय आदिवासियों के भोजन मे चाहें वह गरीब हो या अमीर, वृद्व हो या युवा, स्त्री हो या पुरूष, गर्भवती माता हो या धात्री किसी न किसी पौष्टिक तत्वों की अधिकता या कमी रहती ही है। विशेषकर गरीब किसान, मजदूर तथा निम्न आर्थिक वर्ग के लोगो का भोजन गुणात्मक तथा परिणामात्मक दोनो ही दृष्टि से अपर्याप्त होता है।

भारत की अधिकांश गरीब आदिवासी जनता को प्रतिदिन सुबह शाम भरपेट दाल रोटी भी नसीब होती है। अतः वे प्रोटीन–कैलोरी कुपोषित से भयंकर रूप से पीड़ित होते है। कुछ गरीब आदिवासी परिवार के बालको को भरपेट अनाज भी नही मिलता है, परिणामत, उनके शरीर मे ऊर्जा उत्पादक भोज्य तत्वो को भी कमी होती है तथा वे निर्बल, कमजोर, निशक्त एवं थके–थके दिखाई देते है। गर्भवती तथा धात्री माता की दशा भी कम दयनीय नही है।

कुपोषित की परिभाषा – ''यह पोषण की वह स्थिति है जिसके कारण व्यक्ति के स्वास्थ्य मे गिरावट आने लगती है। यह एक या एक से अधिक तत्वों की कमी या अधिकता या असंतुलन के कारण होती है, जिसके कारण शरीर रोगग्रस्त हो जाता है।''

आदिवासी में कुपोषण

गरीब तबके में रहने वाले ये आदिवासी अपने स्वास्थ्य की ओर ध्यान नहीं देते हैं गरीबी के चलते हुए यह दो वक्त का भोजन ही अत्याधिक मुश्किल से प्राप्त कर पाते हैं इसी कारण से इनमें कुपोषण देखा जाता है। इसीलिए इनकी और विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है यूनीसेफ द्वारा कुपोषण चुनौती विषय पर अंर्तराष्ट्रीय गोष्ठी में बताया कि भारत में 50 प्रतिशत किशोरियां एवं महिलाएं किसी न किसी प्रकार के कुपोषण की शिकार है।

आदिवासियों में कुपोषण का मुख्य कारण भोजन संबंधी आदतों में परिवर्तन हो जाना, सामाजिक मान्यताएं, उपेक्षा पूर्ण व्यवहार इत्यादि हैं। पौष्टिक भोजन न मिलने से कुपोषण की स्थिति में थकान, शारीरिक कमजोरी, बीमारी आदि से ग्रसित हो जाते हैं। एक सर्वेक्षण के अनुसार ग्रामीणों एवं आदिवासियों को प्रतिदिन 500–600 कैलोरी ऊर्जा कम मिलती है।

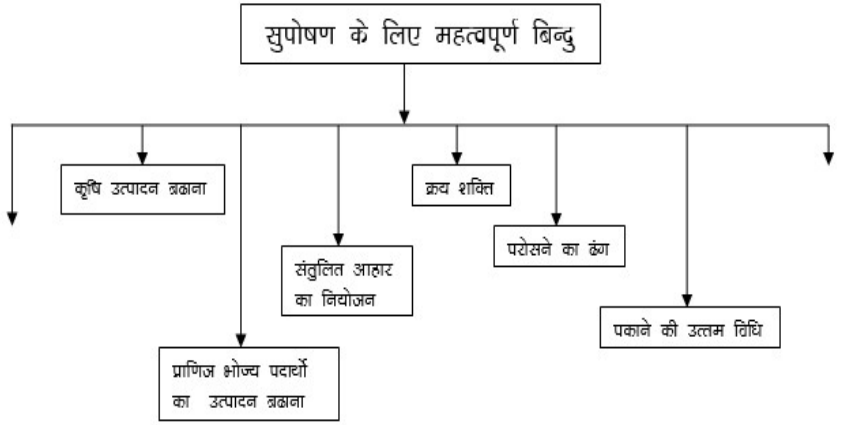

शारीरिक लक्षण	शारीरिक क्रियाओं पर प्रभाव	आसन पर प्रभाव (पेट बाहर की ओर निकला हुआ)	व्यवहार में परिवर्तन
लम्बाई – कम(बौनापन)	भार – कम या अधिक(अल्प भार, अतिभार, मोटापा)	निद्रा–कम	बैचेनी
चेहरा– निस्तेज, थकान भरा, आकर्षणहीन	समय पर मलमूल का नही निष्कासन होना		चिड़चिडापन
ऑखें– निस्तेज, चमकहीन, रतौधी	अंधापन	थकान	क्रोध

बाल– शुष्क, रूखे, बेजान, चमकहीन	शीघ्र टूटनेवाले	शारीरिक क्रियाकलाप	आलस्य
होंठ– कटे होंठ, किनारे पर घाव	भूख की कमी		भय
जीभ– जीभ पर छाले, बैगनी रंग,	छोटे–छोटे उभार	प्यास की कमी	अधिकता तनाव
मुँह– छाले एवं घाव	पाचन संबंधी गड़बडियॉ		उद्विग्नता
त्वचा– पीला, झुरियॉ पडना, निस्तेज,	चमकहीन	रूखी–सूखी एवं बेजान	काम मे मन ने लगाना
नाखून– पीलापन लिये हुए	चम्मच जैसा आकार		आत्महत्या जैसा भाव उत्पन्न होना
हाथ–पैर – सूजन एवं झुर्रियॉ			

कुपोषित महिला/किशोरियों के लक्षण

कुपोषण का प्रभाव न केवल व्यक्ति के शरीरिक विकास पर पडता है बल्कि इसके कारण

मानसिक, सामाजिक तथा बोद्विक विकास भी प्रभावित होता है। कुपोषित का वजन 40 किलोग्राम से कम होता है जो कुपोषित होते है उनमें खून की कमी अत्यधिक देखी जाती है। जिससे उनके नाखून व होंठ का रंग पीला हो जाता है। अत्यधिक थकान महसूस होती है धड़कन भी तेज हो जाती है। चेहरे में सूजन आ जाती है, यह सभी लक्षण लौह तत्व और फोलिक एसिड की कमी से दिखाई देते हैं। प्रसव समय में अधिक रक्त स्त्राव की संभावना भी होती है। यह सभी लक्षण लौह तत्व और फालिक एसिड की कमी से दिखाई देते हैं। प्रसव समय में अधिक रक्त स्त्राव की संभावना भी होती है कुपोषित में सामान्यतः विटामिन ए की कमी होने की संभावना होती है। इसकी कमी से रंतौधी रोग हो जाता है। कुछ को प्रायः कमर और पिडलियों में दर्द होता है जो कैल्शियम और विटामिन बी

काम्पलेक्स से होता है। जिनमें अक्सर खून बहने लगता है यह लक्षण विटामिन सी की कमी से होता है। विटामिन बी की कमी से प्रायः जीभ पर कटी–फटी सी धारियां और मुंह के दोनों कोनों पर कटाफटा सा पाया जाता है।

कुपोषण के कारण

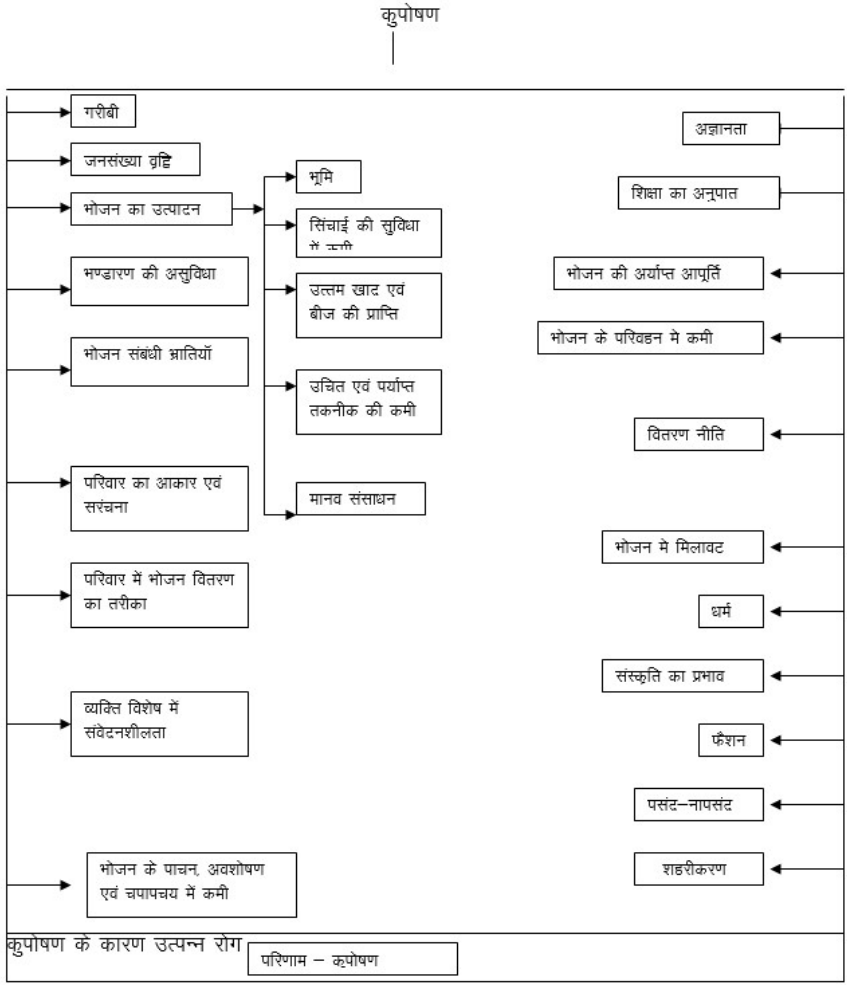

1. प्रोटीन कैलोरी कुपोषण

2. विटामिन की कमी के कारण रोग

निम्नांकित विटामिनो की कमी से कुपोषण हो जाता है–

- विटामिन ए की कमी
- विटामिन बी की कमी
- विटामिन बी 2 की कमी
- विटामिन सी की कमी
- फोलिक अम्ल की कमी
- विटामिन डी की कमी
- ' नियासिन' की कमी

3. कैलोरी की अधिकता से उत्पन्न रोग

4. विटामिन ए तथा डी की अधिकता से उत्पन्न रोग

5. खनिज लवणों की कमी से उत्पन्न रोग

- लोहे की कमी – रक्त अल्पता

पोषक तत्व	किशोरी
कैलरी	2200
प्रोटीन	50
कैलशियम	0.5–0.6
लोहतत्व (मि.ग्रा.)	35
विटामिन 'ए' (माइक्रो ग्रा.)	750
या कैरोटीन (माइक्रो ग्रा)	3000

थायमिन (मि.ग्रा.)	1
राइबोक्लेविन (मि.ग्रा.)	1.2
निकोटिनिक एसिड (मि.ग्रा.)	14
विटामिन 'सी' (मि.ग्रा)	30–50
कोलिक एसिड (माइक्रोग्रा.)	50–100
विटामिन बी 12 (माइक्रोग्रा.)	0.5–1.0
विटामिन डी (अ.ई.)	200
मैगनीशियम (मि.ग्रा.)	300

- आयोडीन की कमी – गॉयटर
- केल्सियम की कमी – अस्थियो एवं दॉतो के रोग

पोषक तत्व आवश्यकता

कुपोषण के परिणाम

1. कुपोषित जल्दी थक जाते है, वे अपनी देखभाल ठीक से नहीं कर पाते है।
2. कुपोषण से लम्बाई भी प्रभावित होती है, जिसमें गर्भावस्था के समय प्रसव कठिनाई से होता है।
3. किशोरावस्था में कुपोषित होने से शारीरिक एवं मानिसक विकास पर कुप्रभाव पड़ता है।
4. जिनमें शारीरिक वृद्धि अपूर्ण रह जाती है उन्हे बाद में भी कुपोषण का सामना करना पड़ता है। जैसे – कुपोषित किशोरियां गर्भावस्था के दौरान कुपोषण का सामना करती है

उन्हें कम वजन के बच्चे होने की संभावना अधिक हो जाती है।

आदिवासी किशोरियों एवं महिलाओं में कुपोषण की रोकथाम के उपाय

कुपोषित किशोरी/महिला में खून की कमी की रोकथाम के लिए प्रतिदिन आहार में लौह लवण युक्त पदार्थ शामिल करना चाहिए जैसे हरी पत्ते वाली सब्जियां गुड अंकुरित दाले आदी का प्रयोग कर यदि गर्भवस्था के दौरान खून की कमी को रोकने के लिए आयरन फोलिक एसिड की एक गोली कम से कम 100 दिन तक अवश्य लेना चाहिये और ये गोलियां स्वास्थ्य केन्द्र आदि पर मुफ्त मिलती है। पेट में क्रमी या फोड़े होने पर खून की कमी होती है अतः स्वास्थ्य केन्द्र अस्पताल में उपचार कराना चाहिए कुपोषित किशोरियों/महिलाओं को विटामिन ए की कमी को दूर करने के लिए विटामिन 'ए' युक्त भोजन जैसे हरे पत्तेदार सब्जीयां पीले फल एवं अन्य सब्जियां शामिल करना चाहिये दूध से बने पदार्थ अंडा आदि शामिल करना चाहिए।

कुपोषित महिलाओं में दो बच्चों के बीच 3 साल का अंतर अवश्य होना चाहिये। जिससे मां अपना स्वास्थ्य पुनः प्राप्त कर पाने से पहले ही पुनः गर्भवती होने से कुपोषण की शिकार हो जाती है। कुपोषण से बचने के लिये आदिवासी को बच्चों के बीच अंतर रखने के लिए परिवार नियोजन के तरीको की सलाह दी जाती है।

आदिवासियों को उचित मात्रा में भोजन की आवश्यकता होती है क्योंकि की यह अवस्था तीव्र वृद्धि की होती है यदि पर्याप्त पोषण नहीं मिलता है तो वृद्धि रूक जाती है। बीस वर्ष से गर्भधारण करने से बचना चाहिए। विशेष रूप से 18 वर्ष के पहले क्योंकि

यह लम्बाई में हो रही वृद्धि को कम कर देते है और हाड्डियों का विकास पूर्ण रूप से न होने के कारण प्रसव में कठिनाई आती है 20 वर्ष के बाद बनने वाली माताएं स्वयं का व बच्चे का पूर्ण रूप से देखभाल व ध्यान रख पाती हैं। साथ ही साथ कम वजन के बच्चे के जन्म की संभावना कम होती ळें

कम कीमत में संतुलित आहार

खाद्य पदार्थ	शाकाहारी	मांसाहारी
अनाज	350	350
दालें	70	50
हरी पत्तियों वाली सब्जियां	150	150
अन्य सब्जियां	75	75
कन्द और मूल	75	75
फल	30	30
दूध	250	150
वसा एवं तेल	35	40
मांस मछली	—	30
अण्डा	—	30
शक्कर और गुड़	30	30
मूंगफली	—	—

आदिवासी जनजातियां अभी भी सुदूर वन क्षेत्रों में अपनी छोटी दुनिया में रह रहे हैं इस समाज के सदस्य पर्वतीय एवं वन्य क्षेत्रों में निवास करती हुई सभ्यता की चकाचौंध से कोसों मील दूर रहकर अपनी संस्कृति को बचाए हुए हैं। दूसरे शब्दों में पर्वतीय वन्य क्षेत्र तथा दुर्गम स्थानों में अनेक मानव समुह अपनी परम्परागत संस्कृति के मध्य निवास करते है इनकी अपनी परम्पराएं रीति–रिवाज, खानपान, वेशभूषा, रहन–सहन, भाषा, बोली तथा विवाह पद्धतियां आदि हैं। जिन्हें जनजातीय समाज कहा जाता है। भारतीय संविधान के द्वारा डॉ. धुरिये के प्रस्तावित नाम को स्वीकार किया गया है अर्थात संवैधानिक रूप से इन्हें अनुसूचित जनजाति कहा गया है।

पोषण स्तर पोषण स्तर को इस प्रकार से परिभाषित कर सकते हैं कि पोषण के स्तर को स्वास्थ्य परिक्षण तथा व्यक्ति के द्वारा लिये जा रहे आहार की गणन से ज्ञात किया जा सकता है। पोषण स्तर को बहुत सारी बाते जैसे अंधविश्वास, भोजन संबंधी आदतें, रूढ़ीवादी परम्परायें आदि प्रभावित करते हैं इस प्रकार किसी देश के निवासियों का पोषण स्तर उपरोक्त बातों के साथ–साथ देश की जनसंख्या कृषि उपज एवं प्रति व्यक्ति खद्य एवं आय वितरण से भी प्रभावित होता है।

पोषणिक स्तर शरीर द्वारा उपयोग किये पोषक तत्वों द्वारा प्रभावित होता है। जिसमें कुपोषण एक स्वास्थ्य समस्या है ये पोषक तत्वों की कमी का प्रभाव है।

रिवर्स के मतानुसार :– ''जनजाति एक ऐसा सरल प्रकार का सामाजिक समूह है जिसके सदस्य एक सामान्य भाषा का प्रयोग

करते है तथा युद्ध आदि सामान्य उद्देश्यों के लिए सम्मिलित रूप से कार्य करते है।''

आदिवासी विद्रोह

18 वीं शताब्दी

1766–72 – राजा जगन्नाथ सिंह के नेतृत्व में चुआर विद्रोह।

1770–1787 – चट्टग्राम पहाड़ी क्षेत्र में चकमा विद्रोह।

1771–1809 – जंगल महलों की भूमिज जनजातियों द्वारा चुआर विद्रोह।

1774–1779: ब्रिटिश सेनाओं और मराठों के खिलाफ बस्तर राज्य में हलबी जनजातियों द्वारा हलबा डोंगर।

1778: अंग्रेजों के खिलाफ छोटा नागपुर के पहाड़िया सरदारों का विद्रोह।

1784–1785: महाराष्ट्र में महादेव कोली जनजाति और संताल जनजाति के तिलका मांझी का विद्रोह।

1789: अंग्रेजों के खिलाफ छोटानागपुर के तामार का विद्रोह।

1794–1795: तामारों ने फिर से विद्रोह किया।

1798: छोटानागपुर में पंचेट एस्टेट की बिक्री के खिलाफ आदिवासियों का विद्रोह।

19 वीं शताब्दी

1812: वायनाडी में कुरिचियार और कुरुम्बर का विद्रोह।

1825: सिंगफो ने असम के सादिया में ब्रिटिश पत्रिका पर हमला किया और आग लगा दी।

1833: गंगा नारायण सिंह के नेतृत्व में बीरभूम में भूमिज विद्रोह।

1843: सिंगफो प्रमुख निरंग फिदु ने ब्रिटिश गैरीसन पर हमला किया और कई सैनिकों को मार डाला।

1849: कदमा सिंगफो ने असम में ब्रिटिश गांवों पर हमला किया और कब्जा कर लिया गया।

1850: प्रमुख बिसोई के नेतृत्व में खोंड जनजाति ने उड़ीसा की सहायक नदियों में विद्रोह किया।

1855: सिद्धू और कान्हू के नेतृत्व में राजमहल हिल्स में अंग्रेजों के खिलाफ संथाल समुदाय द्वारा संताल हुल।

1857: 1857 के व्यापक विद्रोह के हिस्से के रूप में छोटा नागपुर में चेरो और खारवार विद्रोह ।

1857–1858: भील ने 1857 के विद्रोह के हिस्से के रूप में भगोजी नाइक और काजर सिंह के नेतृत्व में विंध्य और सतपुड़ा पर्वतमाला के बीच विद्रोह किया।

1859: एबरडीन की लड़ाई में अंडमानी।

1860: मिजो ने त्रिपुरा राज्य पर छापा मारा और 186 ब्रिटिश विषयों को मार डाला।

1860–1862: पूर्वी बंगाल और असम में जयंतिया पहाड़ियों में सिंटेंग विद्रोह।

1861: जुआंग समुदाय ने उड़ीसा में विद्रोह किया।

1862: कोया समुदाय ने गोदावरी जिले में मुत्तादेर्स के खिलाफ विद्रोह किया।

1869–1870: संथालों ने एक स्थानीय सम्राट के खिलाफ धनबाद में विद्रोह किया। विवाद सुलझाने के लिए अंग्रेजों ने की मध्यस्थता।

1879: नागा ने असम में विद्रोह किया।

1879: कोया ने तमंदोरा के नेतृत्व में विशाखापत्तनम हिल ट्रैक्ट एजेंसी के मलकानगिरी में विद्रोह किया।

1883: हिंद महासागर में अंडमान और निकोबार द्वीप समूह के प्रहरी आदिवासी लोगों ने अंग्रेजों पर हमला किया।

1889: मुंडा द्वारा छोटा नागपुर में अंग्रेजों के खिलाफ जन आंदोलन।

1891: एंग्लो–मणिपुरी युद्ध जहां अंग्रेजों ने मणिपुर राज्य पर विजय प्राप्त की।

1892: लुशाई लोगों ने बार–बार अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह किया।

1899–1900: बिरसा मुंडा के नेतृत्व में मुंडा आदिवासी समुदाय द्वारा विद्रोह।

20 वीं शताब्दी

1910: बस्तर के मध्य प्रांत के बस्तर राज्य में बस्तर विद्रोह।

1913–1914: बिहार में ताना भगत आंदोलन।

1913: अरावली रेंज की मानगढ़ पहाड़ियों में भीलों का विद्रोह।

1917–1919: मणिपुर में ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के खिलाफ उनके सरदारों के नेतृत्व में कुकी विद्रोह जिसे हाओस कहा जाता है।

1920–1921: ताना भगत आंदोलन फिर हुआ।

1922: अल्लूरी सीताराम राजू के नेतृत्व में कोया आदिवासी समुदाय ने गोदावरी एजेंसी में अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह किया।

1932: मणिपुर में 14 वर्षीय रानी गैडिंल्यू के नेतृत्व में नागाओं ने विद्रोह किया।

1941: हैदराबाद राज्य के आदिलाबाद जिले में ब्रिटिश सरकार के खिलाफ सहयोग से गोंड और कोलम ने विद्रोह किया।

1942: जयपोर राज्य के कोरापुट में लक्ष्मण नाइक के नेतृत्व में आदिवासी विद्रोह।

1942–1945: अंडमान और निकोबार द्वीप समूह की जनजातियों ने द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान जापानी सैनिकों द्वारा अपने द्वीपों पर कब्जे के खिलाफ विद्रोह किया।

ईश्वर का पूर्व–प्रबंध आदिवासियों के मन में –ढ धारणा है की परमसत्ता अपने पूर्व – प्रबंध और भलेपन के तहत मनुष्यों से पशुओं तथा पक्षियों के माध्यम से बात करता है। उदाहर्ण के लिए यदि कोई आदिवासियों का समूह वधु देखने के लिए जा रहा है और एक सियार पार होता है अथवा एक 'सूइया' (एक छोटी काली चिड़िया) रास्ते को काटते हुए उड़कर पार होती है तो यह चिन्ह है कि परमसत्ता इस विवाह संबंध की अनुमति नहीं देते हैं। पुनः यदि कोई आदिवासी अपने संबंधी, अथवा मित्र के यहाँ

जाताध्जाती है और रास्ते में उसे पीयू चिड़िया की आवाज सुनाई देती है तो यह चिन्ह है कि परमसत्ता इस विवाह संबंध की अनुमति नहीं देते हैं। पुनः यदि कोई आदिवासी अपने सम्बधि, अथवा मित्र के यहाँ जाताध्जाती है और रास्ते में उसे पीयू चिड़िया की आवाज सुनाई देती है तो यह हाथ पसार कर स्वागत किये जाने तथा चावल की हंडियां के प्रचुर मात्रा में दिए जाने का संकेत है (कैम्पियनः

चेतावनी परमतसत्ता मनुष्यों को कुछ खतरों से आगाह करते और उन्हें सर्तक रहने की चेतावनी देते हैं। उदाहरण के लिए यदि कोई "फिकार" (पागल सियार) किसी गाँव के निकट चिल्ला रहा हो तो यह गाँव में किसी की मृत्यु का संदेश है। यदि बिना किसी प्रत्येक्ष कारण के कोई पेड़ अथवा डाली आसपास गिर जाए तो इसका अर्थ है कि वह किसी बड़े दुर्भाग्य से पीड़ित होने वाला है। इस दुर्भाग्य से पीड़ित होने वाला है। इस दुर्भाग्य से बचाव के लिए पेड़ की डाली को लाठी अथवा कुल्हाड़ी से एक साँस में 1 से 5 अथवा 1 से 7 बार मारना चाहिए।

स्वप्न स्वप्न में गूंगू पहनना, नये घड़े उठाकर ले जाना बाघ से मारे जाने की पूर्वसूचना होती है, यदि कोई दुसरे दिन जंगल जाता है। यदि कोई लकड़ी का गट्ठर अथवा कुन्दा स्वप्न में उठाकर जा रहा है तो यह चिन्ह है कि कोई प्रिय मित्र अथवा कोई सगा– संबंधी शीघ्र ही मर जायेगा। यदि कोई स्वप्न में मछली मारने. खुखड़ी चुनने,खेत का बांध बनाने, भवन बनाने के इन किसी भी कार्य में व्यस्त है तो यह किसी मृत्यु संदेश की पूर्व सूचना है । इस दुर्भाग्य से बचाव के लिए सुबह जागते ही जितनी जल्दी हो सके अपना स्वप्न दूसरों को बता देना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति स्वप्न दूसरों को बता देना चाहिए। यदि कोई

व्यक्ति स्वप्न में धुआंधार वर्षा में भींगता है तो इसका अर्थ है कि वह व्यक्ति किसी दुर्भाग्य के कारण आँसू बहाने वाला है अथवा किसी अनापेक्षित आनंद के लिए आंसू बहाएगा, वगैरह।

जनजातीय जीवन की आधारशिला

1- भूमिका
2- पर्व त्यौहार
3- पूजा – पद्धति
4- मृत्यु – संस्कार
5- विवाह संबंध
6- अखरा, मेला, जतरा
7- युवा गृह

पर्व त्यौहार

आदिवासी प्राकृतिकपूजक होते हैं। प्रकृति उनका परिवेश भी है, आलम्बन भी, उद्दीपन भी। प्रकृतिक से वे अन्न और औषधि तो ग्रहण करते ही हैं, श्रृंगारके उपकरण और त्यौहार भी लेते हैं। प्रकृति सभी अर्थों में आदिम जातियों की सहचरी बनी हुई है। उनके नृत्य–संगीत, गृह सज्जा, मनोरंजन और कलाभिरूची को सँवारने का काम भी प्रकृति ही करती है। स्वभाविक है कि उनके त्योहार भी प्रकृति से जुड़े हों।

पूजा और त्योहार सहधर्मी अनुष्ठान हैं। छोटानागपुर पठार की जनजातियों के दो बड़े त्योहार करमा और सरहुल हैं। इनमें प्रकृ ति की उपसना होती है। अन्य त्योहारों में भी प्रकृति को सर्वोपरि स्थान दिया जाता है। उरांवो के बीच बारह वर्षों में एक बार मनाया जाने वाला जनी शिकार मूलतः प्रकृति और मनुष्य की अंतरंगता को ही उदघाटित करता है। करमा भाईचारे के पर्व के

रूप में भी जाना– जाता है। यह भादो महीने के शुक्लपक्ष की एकादशी को उल्ल्सपूर्वक मनाया जाता है। करमा पर्व में आदिवासी और सदान दोनों समुदाओं के लिए समान रूप से महत्वपूर्ण है। सरहुल जनजातीय वसन्तोत्सव के रूप में माना जाता है जिसे झारखण्ड की विभिन्न जनजातियों ज्येष्ठ मास में मनाती हैं। मुंडा, हो असुर और बिरहोर इसे सारजोम बा या बा परोब कहते हैं, संताल इसे बाहा परब और खड़िया जोंकोर की संज्ञा देते हैं। विभिन्न, जनजातियों में इस त्योहार की पूजा– विधि और नृत्य – संगीत में अंतर पाया जाता है, किन्तु उत्सव की मूल भावना समान होती है।

सोहराई लक्ष्मी पूजन का त्योहार है। विभिन्न जनजातियाँ अपने–अपने परंपरागत विधान से इसे मनाती हैं। संतालों को सोहराई पर्व पांच दिनों तक चलता है जिसे बांधा पर्व भी कहते हैं। इन मुख्य पर्वों के अतिरिक्त कई त्योहार ऐसे भी हैं जो अलग–अलग जनजातियों में अलग–अलग महत्त्व रखते हैं। जैसे मुंडा समाज में बुरू, माघे, फागु, उरांव समाज में माघे, चौड़ी, फागु, जतरा, माल पहाड़िया में आड़या, घाघरा पूजा और संतालों में ऐरोक, जापाड़, सकारात, भागसिम तथा हो समाज में डभूरी, कोलोम, छठ। इस प्रकार, जनजातीय समुदायों में पर्वों– त्योहारों की विविध भंगिमाएँ और छवियाँ वि।मान हैं। नामकरण, शादी– ब्याह, गोत्र बंधन जैसे उत्सव भी प्रकृति से प्रेरित होते हैं। वृक्ष, लता– कुंज, पशु– पक्षी, दिन– नक्षत्र, चाँद– तारे और सूर्य के सान्निध्य के बिना आदिवासी मन की कल्पना भी नहीं के जा सकती है। नामकरण के बाद गोत्र के महत्व के पीछे भी प्रकृति की प्रेरणा वि।मान है।

आदिवासी सेनानियों की वीर गाथा

आदिवासी सेनानियों की वीर गाथा जो कभी मुख्यधारा में ना आ सकी

जब हम आजादी की बात करते हैं तो किसके चेहरे हमारे सामने आते हैं? गाँधी, नेहरू, भगत सिंह, सरदार पटेल, सरोजिनी नायडू, बोसय ये नाम हमारी याददाश्त में सबसे आगे हैं। स्कूल, कॉलेज, यहां तक की राष्ट्रपति भवन और संसद में भी इन्हीं लोगों की तस्वीरें लगाई गई हैं। तो आईए याद करते हैं ऐसे वीर आदिवासी स्त्री और पुरूषों को, जिनकी आजादी की जंग और बलिदान अपने आप में एक मिसाल हैं। जिस इतिहास को लोग भूल रहे हैं, उसे उजागर करते हैं। आदिवासी वीरों का जब नाम लिया जाता है तो भगवान बिरसा मुंडा का नाम सबसे ऊंचा है। 19वीं सदी में, 24 वर्ष की आयु में ही ब्रिटिशों के खिलाफ किया गया उनका उलगुलान उन्हें एक अलग पायदान पर खड़ा करता है। साथ–साथ 1784 में ब्रिटिशों और जमींदारों के खिलाफ तिलका मांझी के विरोध और बलिदान को कौन भूल सकता है? तो चलिए कुछ ऐसे ही वीरों की बात करते हैं, जिनके बारे में कम ही लोग जानते हैं।

संथाल विद्रोह – शुरुआत करते हैं संथाल विद्रोह से। इस विद्रोह की अगुवाई सिदो, कान्हू, चांद, भैरव, उनकी बहन फूलो और झानो मुर्मू ने 1855 में की। यह विद्रोह आज के झारखंड और बंगाल राज्य के पुरुलिया और बांकुरा में हुआ था। अंग्रेजों और जमींदारों के खिलाफ यह विद्रोह हुआ था। जब आदिवासी

खेती करते, तो जमींदार उन्हें इतने ऊंचे स्तर पर ब्याज देते कि वे उसे कभी चुका नहीं पाते। इसके बाद उन्हें बंधुवा श्रम (बोंडेड लेबर) की तरह रखते। इसी के खिलाफ यह विद्रोह किया गया था। जब 1855 में विद्रोह की चिंगारी भड़की, तब 20,000 आदिवासियों ने आजादी के लिए संघर्ष किया।

रानी गाइदिन्ल्यू – अब जानते हैं नागालैंड की महानायिका रानी गाइदिन्ल्यू के बारे में । 1932 में अंग्रेजों के खिलाफ आंदोलन में नागालैंड की रानी गाइदिन्ल्यू ने मात्र 13 साल की आयु में संघर्ष शुरू किया था। महिला सेनानियों में उन्होंने सबसे लंबी जेल सजा भुगती। नेहरू ने उनके बारे में लिखा था,

उस बहादुर लड़की ने अपने देश भक्ति के जोश में एक विशाल साम्राज्य को चुनौती दी है, मगर उसे कितनी यातना और कितनी पीड़ा सहनी पड़ रही है। अफसोस यह है कि भारत आज अपने इस बहादुर बिटिया के बारे में कम ही जनता है।

1931 में जब उनके छोटे भाई को अंग्रेजों ने फांसी दी, तब रानी कबीले की मुखिया बनी। अंग्रेजों की फौज और असम राइफल से उनकी और उनके लोगों की कई मुठभेड़ हुई। जिसके बाद रानी गाइदिनल्यू को गिरफ्तार कर लिया गया। 1946 में जब अंतरिम सरकार का गठन हुआ, तब प्रधानमंत्री नेहरु के निर्देश पर रानी गाइदिनल्यू को जेल से रिहा कर दिया गया। तब तक यह दिलेर लड़की 14 साल जेल में काट चुकी थी।

ताना भगत आंदोलन – अब जानते हैं ताना भगत आंदोलन के बारे में। इसका नेतृत्व 24 साल के युवा जतरा ओराओं ने गुमला जिले के चिंगरी नवटोली गांव से किया था। यह फिर पूरे छोटा नागपुर क्षेत्र में फैल गया। वे अंग्रेजों द्वारा लगाए कर (टैक्स) का विद्रोह कर रहे थे। साथ ही वे जमींदारों और बनियों के

खिलाफ भी थे, जिन्होंने उनकी भूमि पर अवैध कब्जा कर उनसे पैसा वसूल रहे थे। आंदोलनकारियों का मूल मंत्र था,

खिंचाई को स्थानीय भाषा में ताना कहते हैं और इस प्रकार आंदोलन को इसका नाम मिला। यह आंदोलन भूत–प्रेत, जादू–टोना, बलि प्रथा और अन्धविश्वास को खत्म करने की मुहिम भी थी ।

रम्पा आंदोलन – अब जानते हैं रम्पा आंदोलन के बारे में। अल्लुरी सीतारमण राजू ने रम्पा आंदोलन की शुरुआत की। 1882 में अंग्रेज सरकार द्वारा जो मद्रास फॉरेस्ट एक्ट लागू किया गया था, उसी के खिलाफ यह आंदोलन था। इस एक्ट के अनुसार आदिवासियों का जंगल में प्रवेश और जंगल की चीजों का इस्तेमाल वर्जित था। यह आंदोलन पूर्वी गोदावरी, विशाखापत्तनम और मद्रास के इलाकों में फैला था। स्थानीय लोग राजू को ''मन्यम वीरूडू'' कहते थे जिसका मतलब है, ''जंगल का नायक"। इस विद्रोह का प्रमुख कारण मनसबदारों की मनमानी, उनका भ्रष्टाचार और समाज में जंगल कानून का व्याप्त होना था।

सुरेन्द्र साए – ऐसे ही एक और महानायक रहे हैं सुरेन्द्र साए। 23 जनवरी, 1809 को जन्में सुरेन्द्र साए भारत के पहले स्वतंत्रता सेनानी और आदिवासी अगुवाओं में गिने जाते हैं। ओडिशा के सम्भलपुर से 21 किलोमीटर दूर उनका गांव था। राजा मधुकर साए के देहांत के बाद, सुरेन्द्र साए सही वंशज थे लेकिन अंग्रेजों ने यह पद चौहान वंश के नारायण सिंह को दिया। सुरेन्द्र साए ने इसका विद्रोह किया जिसमें गाँव और राज्य के लोगों ने समर्थन दिया। 1837 में सुरेन्द्र साय, उदन्त साय, बलराम सिंह तथा लखनपुर के जमींदार बलभद्र देव मिलकर कुछ विचार–विमर्श कर

रहे थे कि अंग्रेजों ने वहां अचानक धावा बोल दिया। उन्होंने बलभद्र देव की वहीं निर्ममता से हत्या कर दीय पर बाकी तीनों लोग बचने में सफल हो गए। इसके बाद लगातार साए को पकड़ने की कोशिशें चलती रहीं। 1840 में साए अंग्रेजों के गिरफ्त में आ भी गए लेकिन इनके समर्थक शान्त नहीं बैठे। 1857 को हजारों क्रान्तिवीरों ने हजारीबाग जेल पर धावा बोला और सुरेन्द्र साए सहित 32 साथियों को छुड़ा कर ले गए। इसके बाद सुरेन्द्र साए वापस सम्भलपुर पहुंचे और अपने राज्य को अंग्रेजों से मुक्त कराने के लिए सशस्त्र संग्राम शुरू कर दिया। 23 जनवरी, 1864 को जब सुरेन्द्र साए अपने परिवार के साथ सो रहे थे, तब अंग्रेजों ने छापा मारकर उन्हें पकड़ लिया और नागपुर के असीरगढ़ जेल में बन्द कर दिया। जेल में भरपूर शारीरिक और मानसिक उत्पीड़न के बाद भी सुरेन्द्र ने विदेशी शासन के आगे झुकना स्वीकार नहीं किया। अपने जीवन के 37 साल जेल में बिताने वाले उस वीर ने 28 फरवरी, 1884 को असीरगढ़ किले की जेल में ही अन्तिम सांस ली। आज भी उनकी बहादुरी उन्हें लोगों के दिल में जिंदा रखती है।

द्रौपदी मुर्मू – द्रौपदी मुर्मू (जन्म रू २० जून १९५८) एक भारतीय महिला राजनेत्री हैं। भारत के सत्तारूढ़ राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन ने भारत के अगले राष्ट्रपति के लिये उनको अपना प्रत्याशी घोषित किया हैं। इसके पहले 2015 से 2021 तक वे झारखण्ड की राज्यपाल थीं। उनका जन्म ओड़िशा के मयूरभंज जिले के बैदापोसी गांव में एक संथाल परिवार में हुआ था।

व्यक्तिगत जीवन – द्रौपदी मुर्मू का जन्म २० जून १९५८ को ओड़िशा के मयूरभंज जिले के बैदापोसी गांव में एक संथाल परिवार में हुआ था। उनके पिता का नाम बिरंचि नारायण टुडु

था। उनके दादा और उनके पिता दोनों ही उनके गाँव के प्रधान रहे।

उन्होंने श्याम चरण मुर्मू से विवाह किया। उनके दो बेटे और एक बेटी हुए। दुर्भाग्यवश दोनों बेटों और उनके पति तीनों की अलग–अलग समय पर अकाल मृत्यु हो गयी। उनकी पुत्री विवाहिता हैं और भुवनेश्वर में रहतीं हैं।

द्रौपदी मुर्मू ने एक अध्यापिका के रूप में अपना व्यावसायिक जीवन आरम्भ किया। उसके बाद धीरे–धीरे राजनीति में आ गयीं।

राजनीतिक जीवन – द्रौपदी मुर्मू ने साल 1997 में राइरंगपुर नगर पंचायत के पार्षद चुनाव में जीत दर्ज कर अपने राजनीतिक जीवन का आरंभ किया था।

उन्होंने भाजपा के अनुसूचित जनजाति मोर्चा के उपाध्यक्ष के रूप में कार्य किया है। साथ ही वह भाजपा की आदिवासी मोर्चा की राष्ट्रीय कार्यकारिणी की सदस्य भी रहीं है।

द्रौपदी मुर्मू ओडिशा के मयूरभंज जिले की रायरंगपुर सीट से 2000 और 2009 में भाजपा के टिकट पर दो बार जीती और विधायक बनीं। ओडिशा में नवीन पटनायक के बीजू जनता दल और भाजपा गठबंधन की सरकार में द्रौपदी मुर्मू को 2000 और 2004 के बीच वाणिज्य, परिवहन और बाद में मत्स्य और पशु संसाधन विभाग में मंत्री बनाया गया था

द्रौपदी मुर्मू मई 2015 में झारखंड की 9वीं राज्यपाल बनाई गई थीं। उन्होंने सैयद अहमद की जगह ली थी। झारखंड उच्च न्यायालय के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश वीरेंद्र सिंह ने द्रौपदी मुर्मू को राज्यपाल पद की शपथ दिलाई थी।

झारखंड की पहली महिला राज्यपाल बनने का खिताब भी द्रौपदी मुर्मू के नाम रहा। साथ ही वह किसी भी भारतीय राज्य की राज्यपाल बनने वाली पहली आदिवासी भी हैं।

द्रौपदी मुर्मू ने 24 जून 2022 में अपना नामांकन किया, उनके नामांकन में पी.एम मोदी प्रस्तावक और राजनाथ सिंह अनुमोदक

द्रौपदी मुर्मू एक आदिवासी महिला नेता है, जो कि मोदी सरकार के द्वारा राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार के रूप में पहली पसंद है. वर्तमान में वे झारखंड की पहली महिला आदिवासी राज्यपाल के पद पर नियुक्त है. भाजपा अध्यक्ष जेपी नड्डा ने कहा कि "इस बार पार्टी नेताओं के बीच राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार के लिए 20 नामों पर चर्चा हुई और द्रौपदी मुर्मू के काम को देखते हुए उनको भाजपा की ओर से राष्ट्रपति पद के लिए चुना गया है. वह अगर चुनाव जीतती हैं, तो वे राष्ट्रपति बनने वाली पहली आदिवासी महिला राष्ट्रपति होगी. द्रौपदी मुर्मू को भारत सरकार के द्वारा सुरक्षा प्राप्त है.

द्रौपदी मुर्मू ने भाजपा में रहते हुए कई प्रमुख भूमिकाएँ निभाईं है, उन्होंने एसटी मोर्चा पर राज्य अध्यक्ष और मयूरभान के भाजपा जिलाध्यक्ष के रूप में कार्य किया है. साल 2007 में मुर्मू को ओडिशा विधानसभा द्वारा वर्ष का सर्वश्रेष्ठ विधायक होने के लिए "नीलकंठ पुरस्कार" से सम्मानित किया गया था. मई 2015 में, भारतीय जनता पार्टी ने उन्हें झारखंड के राज्यपाल के रूप में चुना. वह झारखंड की पहली महिला राज्यपाल हैं. वह ओडिशा की पहली महिला और आदिवासी नेता भी हैं, जिन्हें ओडिशा राज्य में राज्यपाल के रूप में नियुक्त किया गया था.

वह काफी बड़े–बड़े पद पर रह चुकी है, लेकिन उनके अंदर किसी भी प्रकार का अहंकार नहीं है. एक समय जब वह शिव

मंदिर गई थी तब मंदिर में अच्छी तरह से साफ–सफाई नहीं होने पर उन्होंने खुद ही मंदिर में झाड़ू लगाई और उसके बाद उन्होंने दर्शन किये।

आदिवासी लोक कला अकादमी

आदिवासी लोक कला अकादमी मध्य प्रदेश सरकार द्वारा 1980 में स्थापित की गई एक सांस्कृतिक संस्था है, जिसका उद्देश्य आदिवासी कलाओं को प्रोत्साहित, संरक्षण और विकास करना है।

यह सर्वेक्षण करता है, कार्यक्रमों का आयोजन करता है और आदिवासी लोक कलाओं पर ग्रंथों और सामग्रियों को प्रकाशित करता है। यह आदिवासी कला और लोक रंगमंच से जुड़े कई त्योहारों का आयोजन भी करता है, जिनमें से लोक रंग, राम लीला मेला, निमाड़ उत्सव, संपाड़ा और श्रुति समरोह आदि मुख्य हैं।ख्2, अकादमी ने आदिवासी और लोक कलाओं पर आदिवर्त संग्रहालय और ओरछा में रामायण कला संग्रहालय की स्थापना की है। यह संत तुलसीदास से संबंधित त्योहारों – तुलसी उत्सव, तुलसी जयंती समरोह और मंगलाचरण का भी आयोजन करता है।

आदिवासी कला सन् अस्सी के आस–पास 'भारत भवन' के निर्माण की परिकल्पना चल रही थी. तब यह अनुमान लगा पाना मुश्किल था कि आनेवाले दिनों में आदिवासी चित्रकला समकालीन भारतीय चित्रकला को अपनी आ। शैली और भाव–भंगिमाओं से समृद्ध करनेवाली है. यद्यपि इससे बहुत पहले महाराष्ट्र के जीव सोमा माशे वारली आदिवासी समुदाय की 'वारली चित्रकला' को स्थापित कर चुके थे. भोपाल में निर्मित भारत भवन का उद्घाटन 1982 ई में तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने किया था. उस समय भारत भवन के 'रूपंकर' (ललित कला संभाग) के निदेशक

थे मशहूर चित्रकार, कवि और कला समीक्षक जगदीश स्वामीनाथन. आदिवासी कला की समकालीनता पर विचार करते वक्त भारत भवन और जगदीश स्वामीनाथन का उल्लेख स्वाभाविक है. जब भारत भवन का निर्माण कार्य चल रहा था, तो वहां आदिवासी मजदूर भी जाते थे. उन्हीं में से एक थीं भूरी बाई. भारत भवन के निदेशक जगदीश स्वामीनाथन ने भूरी बाई और उनके साथ काम करनेवाली महिलाओं से कहा कि वे जैसे अपने घर की दीवारों पर चित्र बनाती हैं वैसा ही चित्र कागज पर बना कर दिखायें. भूरी बाई को छोड़कर दूसरी महिलाएं तैयार नहीं हुईं. भूरी बाई ने चित्रों को कागज पर उकेरना शुरू कर दिया. यह समकालीन भारतीय चित्रकला की अभूतपूर्व घटना थी.भूरी बाई भील चित्रकला (पिथौरा कला) को कागज और कैनवास पर उकेरने वाली इतिहास की पहली व्यक्ति हैं. उन्होंने आ। शैली और भंगिमाओं से भारतीय कला का संवर्धन किया।

कुछ दिन पहले ही महामहिम राष्ट्रपति रामनाथ कोविंद ने उन्हें पद्मश्री सम्मान से सम्मानित किया है. यह आदिवासी कला के देय का सम्मान है।

जगदीश स्वामीनाथन ने गोंड चित्रकला के सबसे लोकप्रिय कलाकार जनगढ़ सिंह श्याम की भी खोज की. भारत भवन में 'रूपंकर' के प्रथम निदेशक रहते हुए उन्होंने समकालीन कला कृतियों के अलावा लोक आदिवासी कलाओं की विशिष्ट प्रदर्शनी को स्थापित किया. जीव सोमा माशे, भूरी बाई और जनगढ़ सिंह श्याम आदिवासी चित्रकला के ऐसे कलाकार हैं जिन्होंने आदिवासी कला को समकालीन बनाया। आदिवासी समाज की कला की अभिव्यक्ति को पारंपरिक माध्यमों से बाहर निकाल कर उन्होंने कागज और कैनवास तक पहुंचाया. उन्होंने कथाओं, गीतों,

स्मृतियों में मौजूद आदिवासी जीवन को दुनिया के सामने प्रस्तुत किया है। जीव सोमा की वारली पेंटिंग्स में सहज ही आदिवासी जीवन के दर्शन को देखा जा सकता है. उनके चित्र ही इस सामंती मिथ्या को तोड़ने के लिए काफी हैं कि आदिवासी समाज की कोई सामाजिक व्यवस्था नहीं होती है।

जनगढ़ सिंह श्याम ने गोंड आदिवासी समाज की गीति परंपरा में मौजूद कथाओं से पात्रों और रंगों को खोज निकाला. इनके चित्रों में आनेवाले पेड़, पहाड़ और जीवचर आदिवासी जीवन के चरित्र हैं. विशाल नाग के फन पर उगा विशाल वृक्ष हो या केकड़े के शरीर पर हाथी का सिर हो या उलटा लटका बाघ हो आदि सभी आदिवासी दुनिया के मिथकों को सामने लाते हैं.।

जीव सोमा माशे, भूरी बाई और जनगढ़ सिंह श्याम आदिवासी चित्रकला के ऐसे कलाकार हैं जिन्होंने आदिवासी कला को समकालीन बनाया. आदिवासी समाज की कला की अभिव्यक्ति को पारंपरिक माध्यमों से बाहर निकाल कर उन्होंने कागज और कैनवास तक पहुंचाया. उन्होंने कथाओं, गीतों, स्मृतियों में मौजूद आदिवासी जीवन को दुनिया के सामने प्रस्तुत किया है. जीव सोमा की वारली पेंटिंग्स में सहज ही आदिवासी जीवन के दर्शन को देखा जा सकता है. उनके चित्र ही इस सामंती मिथ को तोड़ने के लिए काफी हैं कि आदिवासी समाज की कोई सामाजिक व्यवस्था नहीं होती है, उन्हें कथित सभ्य लोगों के मार्गदर्शन की जरूरत होती है. जनगढ़ सिंह श्याम ने गोंड आदिवासी समाज की गीति परंपरा में मौजूद कथाओं से पात्रों और रंगों को खोज निकाला. इनके चित्रों में आनेवाले पेड़, पहाड़ और जीवचर आदिवासी जीवन के मिथकीय चरित्र हैं. विशाल नाग के फन पर उगा विशाल वृक्ष हो या केकड़े के शरीर पर

हाथी का सिर हो या उलटा लटका बाघ हो आदि सभी आदिवासी दुनिया के मिथकों को सामने लाते हैं.

आदिवासी और लोक कला का राज्य संग्रहालय खजुराहो का एक प्रसिद्ध पर्यटन स्थल है। यह खजुराहो के चंदेल सांस्कृतिक परिसर के अंदर स्थित है। यह संग्रहालय बहुत बड़ा नहीं है लेकिन इसका कलेक्शन बहुत समृद्ध है। इस संग्रहालय में भारतीय लाइफस्टाइल, उसकी परंपराओं और संस्कृति तथा व्यापार अज्ञेर अन्य स्रोतों के माध्यम से विदेशी संस्कृति के साथ इस देशी संस्कृति का मिश्रण दर्शाया गया है। इस संग्रहालय में पास के जंगलों में रहने वाली जनजाति और लोककला का एक समृद्ध और अद्वितीय संग्रह है। आदिवासी जीवन की अनेक कलाकृतियाँ इस संग्रहालय में संरक्षित हैं। इस जगह आदिवासी जीवन की परंपराओं और रिवाजों का एक संक्षिप्त इतिहास मौजूद है। इस संग्रहालय की गैलरियों में टेराकोटा, वुड क्राफ्ट, मेटल क्राफ्ट, लोकचित्र आदि का एक बड़ा कलेक्शन है। खजुराहो आने पर आप इस संग्रहालय में जरूर आएं।

तीजन बाई

तीजनबाई (जन्म– २४ अप्रैल १९५६) भारत के छत्तीसगढ़ राज्य के पंडवानी लोक गीत–नाट्य की पहली महिला कलाकार हैं। देश–विदेश में अपनी कला का प्रदर्शन करने वाली तीजनबाई को बिलासपुर विश्ववि॥लय द्वारा डी लिट की मानद उपाधि से सम्मानित किया गया है। वे सन १९८९ में भारत सरकार द्वारा पद्मश्री और २००३ में कला के क्षेत्र में पद्म भूषण सेख्1, अलंकृत की गयीं। उन्हें १९९५ में संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार तथा २००७ में नृत्य शिरोमणि से भी सम्मानित किया जा चुका है।

भिलाई के गाँव गनियारी में जन्मी इस कलाकार के पिता का नाम हुनुकलाल परधा और माता का नाम सुखवती था। नन्हीं तीजन अपने नाना ब्रजलाल को महाभारत की कहानियाँ गाते सुनाते देखतीं और धीरे धीरे उन्हें ये कहानियाँ याद होने लगीं। उनकी अद्भुत लगन और प्रतिभा को देखकर उमेद सिंह देशमुख ने उन्हें अनौपचारिक प्रशिक्षण भी दिया। १३ वर्ष की उम्र में उन्होंने अपना पहला मंच प्रदर्शन किया। उस समय में महिला पंडवानी गायिकाएँ केवल बैठकर गा सकती थीं जिसे वेदमती शैली कहा जाता है। पुरुष खड़े होकर कापालिक शैली में गाते थे। तीजनबाई वे पहली महिला थीं जो जिन्होंने कापालिक शैली में पंडवानी का प्रदर्शन किया।ख्3, एक दिन ऐसा भी आया जब प्रसिद्ध रंगकर्मी हबीब तनवीर ने उन्हें सुना और तबसे तीजनबाई का जीवन बदल गया। तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी से लेकर अनेक अतिविशिष्ट लोगों के सामने देश–विदेश में उन्होंने अपनी कला का प्रदर्शन किया।

प्रदेश और देश की सरकारी व गैरसरकारी अनेक संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत तीजनबाई मंच पर सम्मोहित कर देनेवाले अद्‌भुत नृत्य नाट्य का प्रदर्शन करती हैं। ज्यों ही प्रदर्शन आरंभ होता है, उनका रंगीन फुँदनों वाला तानपूरा अभिव्यक्ति के अलग अलग रूप ले लेता है। कभी दुःशासन की बाँह, कभी अर्जुन का रथ, कभी भीम की गदा तो कभी द्रौपदी के बाल में बदलकर यह तानपूरा श्रोताओं को इतिहास के उस समय में पहुँचा देता है जहाँ वे तीजन के साथ–साथ जोश, होश, क्रोध, दर्द, उत्साह, उमंग और छल–कपट की ऐतिहासिक संवेदना को महसूस करते हैं। उनकी ठोस लोकनाट्य वाली आवाज और अभिनय, नृत्य और संवाद उनकी कला के विशेष अंग हैं।

पंडवानी छत्तीसगढ़ और उसके पड़ोसी राज्यों के आदिवासी क्षेत्रों की एक कथात्मक कला शैली है। पंडवानी मनोरंजन की एक लोकप्रिय शैली है और इसमें गीत, आशुरचनाएं और महाभारत की गाथाओं का कथन सम्मिलित हैं। कलाकार एकतारे या तंबुरे और कभी–कभी करताल के साथ अभिनय करता है और गाता है। तीजन बाई (१९५६–) का जन्म छत्तीसगढ़ के सुदूर गाँव गनियारी में पारधी जनजाति में हुआ था।

भुरी बाई

भूरी बाई भारत के मध्य प्रदेश की एक भील कलाकार हैं। मध्य प्रदेश में झाबुआ जिले के पिटोल गाँव में जन्मी भूरी बाई भारत के सबसे बड़े आदिवासी समूह भीलों के समुदाय से हैं। उन्होंने मध्य प्रदेश सरकार, शिखर सम्मान द्वारा कलाकारों को दिए गए सर्वोच्च राजकीय सम्मान सहित कई पुरस्कार जीते हैं।ख1, उन्हें 2021 में भारत के चौथे सर्वोच्च नागरिक पुरस्कार ख्ख्पद्म श्री, से सम्मानित किया गया।

प्रारंभिक जीवन

पितौल की भूरी बाई अपनी चित्रकारी के लिए कागज तथा कैनवास का इस्तेमाल करने वाली प्रथम भील कलाकार थी। भारत भवन के तत्कालीन निदेशक जे. स्वामीनाथन ने उन्हें कागज पर चित्र बनाने के लिए कहा। इस तरह भूरी बाई ने अपना सफर एक भील कलाकार के रूप में शुरू किया। उस दिन भूरी बाई ने अपने परिवार के पैतृक घोड़े की चित्रकारी की और वह उजले कागज पर पोस्टर रंग के स्पर्श से उत्पन्न प्रभाव को देखकर रोमांचित हो उठी। ''गांव में हमें पौधों तथा गीली मिट्टी से रंग निकालने के लिए काफी मेहनत करनी होती थी। और यहां, मुझे रंग की इतनी सारी छटाएं तथा बना–बनाया ब्रश दिया गया।'' शुरू में भूरी बाई को बैठकर चित्रकारी करना थोड़ा अजीब लगा। किंतु चित्रकारी का जादू शीघ्र ही उन में समा गया।

भूरी बाई अब भोपाल में आदिवासी लोककला अकादमी में एक कलाकार के तौर पर काम करती हैं। सरकार से शिखर सम्मान

(1986–87) प्राप्त हो चुका है। 1998 में मध्यप्रदेश सरकार ने उन्हें अहिल्या सम्मान से विभूषित किया।

भूरी बाई का कहना है कि हरेक बार जब भी वह चित्र बनाना शुरू करती हैं तो वह अपना ध्यान भील जीवन और संस्कृति के विभिन्न पहलुओं पर पुनः केंद्रित करती हैं और जब कोई विशेष विषय–वस्तु प्रबल हो जाती है तो वह अपने कैनवास पर उसे उतारती हैं और उनके चित्रों में जंगल में जानवर, वन और इसके वृक्षों की शांति तथा गाटला (स्मारक स्तंभ), भील देवी–देवताएं, पोशाक, गहने तथा गुदना (टैटू), झोपडियां तथा अन्नागार, हाट, उत्सव तथा नृत्य और मौखिक कथाओं सहित भील के जीवन के प्रत्येक पहलू को समाहित किया गया है। भूरी बाई ने हाल ही में वृक्षों तथा जानवरों के साथ–साथ वायुयान, टेलीविजन, कार तथा बसों का चित्र बनाना शुरू किया है। वे एक दूसरे के साथ सहज स्थिति में प्रतीत हो रहे हैं। वह पहली आदिवासी महिला कलाकार हैं, जिन्होंने मध्य प्रदेश के झाबुआ में अपने गाँव की झोपड़ियों की दीवारों से परे पारंपरिक पिथोरा चित्रों को एक मामूली सुधार के साथ लेने का साहस किया। उन्होंने मिट्टी की दीवारों से लेकर विशाल कैनवस और कागज पर लोक कला को हस्तांतरित किया।

श्रीमती भूरी बाई जी पहली आदिवासी महिला हैं जिन्होंने गांव में घर की दीवारों पर पिथौरा पेंटिंग करने का साहस किया है। पिटोल की भील कलाकार भूरी बाई की खास बात यह है कि वह ठीक से हिंदी भी नहीं बोल पाती थीं। वह केवल स्थानीय भीली बोली जानती थी। वह अपने चित्रों के लिए कागज और कैनवास का उपयोग करने वाली पहली भील कलाकार हैं। भूरी बाई ने एक समकालीन भील कलाकार के रूप में अपनी यात्रा शुरू की।

वह छह संतानों की माँ हैं। उन्होंने अपनी कला को अपने बच्चों को भी सिखाया हैय उनकी दो बेटियाँ, छोटा बेटा और उनकी बहू इस कला का अभ्यास करते हैं।

बस्तर की आदिवासी एवं लोक चित्रकला – छत्तीसगढ़ का बस्तर क्षेत्र अपनी कला विरासत के लिए प्रसिद्ध है। यहां आदिवासी एवं गैर आदिवासी संस्कृति का मिलाजुला अध्भुत आंचलिक स्वरूप देखने को मिलता है। संस्कृति के इस आंचलिक स्वरूप के दर्शन यहाँ की आदिवासी–लोक कलाओं में स्पष्ट परिलक्षित होते हैं। यहाँ की कला परम्परा में आदिवासी तथा लोक तत्व इतने घुल–मिल गए हैं कि उन्हें पृथक देख पाना संभव प्रतीत नहीं होता। यहाँ के गोंड आदिवासी चित्रकार शिव–पार्वती के चित्र बना रहे हैं और वैष्णव चित्रकार गोंडिन देवी के।

अपने परम्परागत स्वरूप में आदिवासी कला, क्षेत्र विशेष के किसी आदिवासी समुदाय द्वारा किया गया कलाकर्म है जो अवसर विशेष से जुड़े अनुष्ठान एवं आवश्यकताओं को सम्पन्न करने हेतु किया जाता है। बस्तर के यदि कुछ विशेष अनुष्ठानिक कलारूपों को छोड़ दे तो अधिकांश आदिवासी कला समुदायगत होकर भी क्षेत्रीय अथवा आंचलिक प्रतीत होती है। साथ ही हिन्दु समुदाय से बढ़ती निरंतर निकटता से भी अनेक ऐसे मोटिफ जो ग्रामीण लोककलारूपों मे बनाए जाते थे अब कहीं.कहीं आदिवासी समुदायों में भी प्रचलन में आ गए हैं। मोटिफों का यह आदान प्रदान वास्तव में क्या स्वरूप रखता है कहना मुश्किल है ।

पिछले कुछ वर्षो में आदिवासी कला परिदृश्य में भी अभूतपूर्व परिवर्तन आया है। बढ़ती हुई शहरीकरण एवं व्यवसायीकरण की प्रक्रिया से परम्परागत सामाजिक आर्थिक ढांचा टूटा है। आदिवासी कलाओं का एक बहुत बड़ा बाजार देशी, विदेशी शहरों

में बना है, अनेक बिचौलिए, व्यापारी एवं डिजायनर अस्तित्व में आए हैं। जिनसे इन कलाओं पर बाजारी दबाव एवं बाहरी हस्ताक्षेप निरन्तर बढ़ता जा रहा है। अब समूह से व्यक्ति का उदय हो रहा है, सामूहिक चेतना में व्यक्तिगत प्रतिभा सामाजिक स्तर पर मान्य होने लगी है। बस्तर की वर्तमान चित्रकला इसी प्रक्रिया का परिणाम है।

बस्तर के आदिवासियों में अनुष्ठानिक चित्रों की कोई परम्परा थी नहीं, मुरिया घोटुलों में चित्र बनाये जाने का उल्लेख है पर अब घोटुल व्यवस्था समाप्त हो चुकी है। गैर आदिवासियों में जगार अनुष्ठानिक लोक चित्र बनाने का प्रचलन था जो अब अवसान पर है। इस बीच सन १९७० के आस–पास माड़िया मृतक स्तम्भों पर चित्रकारी की नई पहल आरम्भ हुई है। यहाँ यह तथ्य महत्वपूर्ण है की माड़िया जनजाति द्वारा प्रयुक्त किये जाने वाले इन अनुष्ठानिक मृतक स्तम्भों पर लोहार, बढ़ई या अन्य गैर आदिवासी समुदाय के लोग चित्रकारी कर रहे हैं। इसके साथ ही अनेक मुरिया युवकों ने अपनी व्यक्तिगत प्रतिभा और पारम्परिक सौंदर्य बोध के बल पर चित्रकारी की बस्तर शैली के विकास के प्रयास किये हैं। इन सभी का विवरण यहाँ प्रस्तुत है।

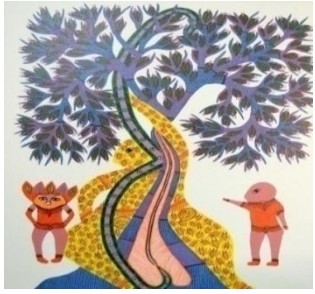

वर्तमान में जो आदिवासी चित्रकार बस्तर में कार्यरत हैं वे हैंकृबेलगूर मुरिया, पंडी मुरिया,सगराम मरकाम, विनोद मुरिया, नारायण कोराम, बुधराम मरकाम, संतोष सोरी, बलदेव मुरिया, सरिता मंडावी, मुकेश पुजारी हल्बा,अनिल नेताम, माधव मुरिया और चिरका राम धुर्वा। इनमे चिरका राम माड़िया मृतक स्तम्भ पर चित्रकारी करता है।

बस्तर के गैर आदिवासी लोक चित्रकार हैंकृखेम वैष्णव, रिंकी वैष्णव, लतिका वैष्णव, महेश विश्वकर्मा, उलेचंद माली और नंदू माली।

गोंड आदिवासी समुदाय से आए राम सिंह उर्वेती की यह गोंड पेंटिंग.

आदिवासी समुदायों में लोक कलाओं की एक शानदार परम्परा रही है. देश के विभिन्न क्षेत्रों की कलाएं अपने इलाके के नाम पर जानी जाती हैं.

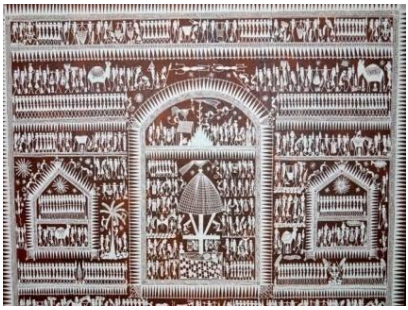

इस कला को और निखारने के लिए भोपाल में इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मानव संग्रहालय में आदिवासी कलाकारों की एक वर्कशॉप आयोजित की गई.

ललित कला अकादमी, नई दिल्ली और भारत भवन, भोपाल के सहयोग से आयोजित इस वर्कशॉप में देश के कोने–कोने से आदिवासी कलाकारों ने हिस्सा लिया.

वर्ली आर्ट महाराष्ट्र की एक खबसूरत पेंटिंग विधा है. शिविर के दौरान तैयार किया गया वर्ली आर्ट का एक नमूना.

ये हैं पार्वती बाई. वो छत्तीसगढ़ के सरगुजा से आई हैं. इन कलाकृतियों में आदिवासी संस्कृति की झलक साफ देखी जा सकती है.

पेमा फत्या

पेमा फत्या का 31 मार्च 2020 की रात को निधन हो गया वे लगभग 15 सालों से पैरालाइसिस के शिकार थे।

- पेमा फत्या को देश के बड़े कलाकारों में शामिल किया जाता था उन्होंने पिथौरा बनाने का कार्य वंशानुगत परंपरा से सीखा
- पेमा फत्या झाबुआ जिले के रहने वाले थे
- पिथौरा पेंटिंग को पिठोरा के नाम से भी जाना जाता है, जो कि भील जनजाति की एक विशिष्ट कला है इसमें ध्वनि सुनना एवं उसे आकृति के रूप में उकेरने अद्भुत कला का प्रदर्शन किया जाता है।
- यह कला भारत में एकमात्र ऐसी कला है जिसमें विशिष्ट ध्वनि सुनना उसे समझना और लेखन से चित्र रूप प्रदान करना आदि प्रमुख है
- भील आदिवासियों के समाज में पिथौरा सजावट के लिए चित्र ही नहीं है यह विशिष्ट धार्मिक अनुष्ठान है

जिसमें चित्रकार अपने मन से कोई रूपांकन नहीं करता है यह उर्वरता और समृद्धि के देवों के आहवाहन और उनको समर्पित छवियां हैं जिनमें सौंदर्य था का उतना महत्व नहीं जितना कि विधान का है

- जो स्वामीनाथन ने पेमा के पिथौरा में शामिल रूपों की पहचान इस तरह की है– बाबा गणेश, काठी घोड़ा ,चंदा बाबा, सूरज बाबा, तारे ,आकाश ,जामि माता, ग्राम में देवता, पिथौरा बाप जी, रानी काजल , हग राजा कुंवर, मेघनी घोड़ी, नाहर, हाथी, पानी वाली, बावड़ी, सांप, बिच्छू, भिश्ती, बंदर और पोपट के साथ ही चिन्नाला एकटंगया, सुपारकन्या
- घोड़ा पिठोरा (पिथौरा) के केंद्र में होता है
- झाबुआ के कलेक्टर रहे जी गोपालकृष्णन ने पहली बार जब प्रेमा के चित्र देखें तो वह इससे काफी प्रभावित हुए और पेमा की पेंटिंग को उन्होंने प्रदर्शनी में भेज दिया और इसे राज्य स्तर के दो पुरस्कार भी मिले।
- पेमा को प्रदेश सरकार ने वर्ष 1986 में शिखर सम्मान से नवाजा था और वर्ष 2017 में मध्यप्रदेश शासन संस्कृति विभाग द्वारा आदिवासी लोक व पारंपरिक कलाओं के क्षेत्र में वार्षिक तुलसी सम्मान से भोपाल के जनजातीय संग्रहालय में सम्मानित किया।
- पेमा के परिवार में पत्नी और दो बेटे दिलीप और पंकज हैं।

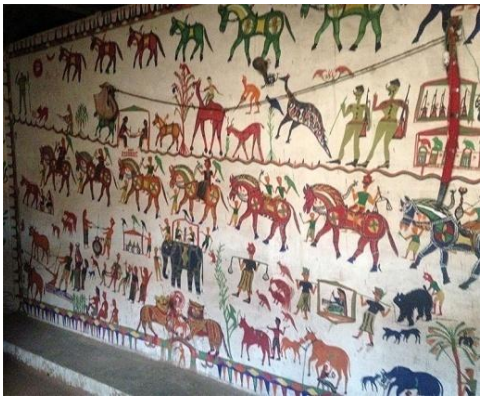

भील जनजाति की एक विशिष्ट कला है 'पिथौरा पेंटिंग' कोरकू जनजाति, पिठोरा (पिथौरा), पेमा फत्या, भील, भील आदिवासि भोपाल। भील जनजाति की कला 'पिथौरा पेंटिंग' के उस्ताद और अंतर्राष्ट्रीय कलाकार पेमा फत्या का गत वर्ष निधन हो गया। मध्यप्रदेश के झाबुआ जिले के रहने वाले पेमा फत्या को देश के बड़े कलाकारों में गिना जाता था। कोरोना वायरस की खबरों के बीच उनके इस दुनिया से चले जाने की खबर दबी रह गई। उन्होंने पिथौरा बनाने का कार्य वंशानुगत परम्परा से सीखा।

पिथौरा पेंटिंग जिसे पिठोरा भी कहा जाता है, भील जनजाति की एक विशिष्ट कला है। इसमें ध्वनि सुनना एवं उसे आकृति के रूप में उकेरने की अद्‌भुत कला का प्रदर्शन किया जाता है। यह कला भारत में एक मात्र ऐसी कला है, जिसमें विशिष्ट ध्वनि सुनना, उसे समझना और लेखन से चित्र रूप प्रदान करना प्रमुख है।

भीलों का विश्व प्रसिद्ध चित्र 'पिथौरा' है और श्री पेमा फत्या थे उसके श्रेष्ठ कलाकार। भील मृत्युपरांत जीवन में विश्वास करते हैं। कोरकू जनजाति राजपूतों को अपना पूर्वज मानते हैं तथा शिव एवं चंद्रमा की पूजा करते हैं।

भील आदिवासियों के समाज में पिठोरा (पिथौरा) सजावट के चित्र नहीं हैं, यह विशिष्ट धार्मिक अनुष्ठान है, जिसमें चित्रकार अपने मन से कोई रूपांकन नहीं करता। यह उर्वरता और समृद्धि के देवों के आह्वान और उनको समर्पित छवियां हैं जिनमें सौंदर्य का उतना महत्व नहीं, जितना कि विधान का।

गांव के पुजारी या बड़वा के चित्रांकन देखकर संतुष्ट होने के बाद ही इसे पूरा माना जाता है। जे.स्वामीनाथन ने पेमा के हवाले पिठोरा में शामिल रूपों की पहचान इस तरह की है दृ बाबा गणेश, काठिया घोड़ा, चंदा बाबा, सूरज बाबा, तारे, सरग (आकाश), जामी माता, ग्राम्य देवता, पिठोरा बाप जी, रानी काजल, हघराजा कुंवर, मेघनी घोड़ी, नाहर, हाथी, पानी वाली, बावड़ी, सांप, बिच्छू, भिश्ती, बंदर और पोपट के साथ ही चिन्नाला, एकटांग्या, सुपारकन्या।

आयताकार रेखाओं के घेरे में बायें हाथ पर सबसे नीचे हुक्का पीते हुए काले रंग की जो छवि बनाते हैं, वही बाबा गणेश हैं, इनकी और गणेश की प्रचलित छवि में कोई समानता नहीं होती, हां, भील आख्यानों में खूब जगह पाने वाला घोड़ा पिठोरा (पिथौरा) के केंद्र में होता ही है।

पेमा ने अपने पिता से चित्र बनाना सीखा मगर शार्गिद रामलाल छेदला के हुए। भील समाज की परम्परा में पिठोरा चित्रांकन का कौशल विरासत में नहीं मिलता यानी जरूरी नहीं कि यह हुनर लिखंदरा के बेटे को ही मिले। जैसे रामलाल लिखंदरा ने उन्हें सिखाया, वैसे ही पेमा ने अपने भतीजे थावर सिंह को सिखाया। पेमा के दोनों बेटे पंकज और दिलीप मजदूरी करते हैं। दो बार फालिज का शिकार होने के बाद भी पेमा ने अपनी इच्छा शक्ति के बूते खुद को इस लायक बनाया कि चित्र बनाते रह सकें। चित्रों ने उन्हें खूब शोहरत दिलाई।

पिथोरा चित्रकला

पिथोरा चित्रकला एक प्रकार की चित्रकला है। जो भील जनजाति के सबसे बड़े त्यौहार पिठौरा पर घर की दीवारों पर बनायी जाती है।मध्य प्रदेश के पिथोरा क्षेत्र मे इस कला का उद्‌गम स्थल माना जाता है। इस कला के विकास में भील जनजाति के लोगों का योगदान उल्लेखनीय है। इस कला में पारम्परिक रंगों का प्रयोग किया जाता था। प्रायः घरों की दीवारों पर यह चित्रकारी की जाती थी परन्तु अ।तन समय में यह कागजों, केन्वस, कपड़ों आदि पर की जाने लगी है। यह चित्रकला बड़ोदा से ६० किलोमीटर पर स्थित तेजगढ़ ग्राम (मध्य गुजरात) में रहने वाली राठवा, भील व नायक जनजाति के लोगों द्वारा दीवारों पर बनाई जाती है।

इसके अतिरिक्त बड़ोदा जिले के तेजगढ़ व छोटा नागपुर ताल्लुक के आसपास भी पिथोरा चित्रकला घरों की तीन भीतरी दीवारों में काफी संख्या में वहां रहने वाले जनजातीय लोगों के घरों में देखी जा सकती हैं। पिथोरा चित्रकला का इन जनजातीय लोगों के जीवन में विशेष महत्व है तथा उनका यह मानना है कि इस

चित्रकला को घरों की दीवारों पर चित्रित करने से घर में शान्ति, खुशहाली व सौहार्द का विकास होता ळें

पिथोरा चित्रकला का चित्रण राठवा जाति के लोग ही सबसे अधिक करते हैं तथा अत्यन्त ही साधारण स्तर के किन्तु धार्मिक लोग होते हैं। इनके लिए पिथोरा बाबा अति विशिष्ठ व पूजनीय होते हैं। इस चित्रकला के चित्रण में ये लोग बहुत धन लगाते हैं तथा जो अपने घर में अधिकाधिक पिथोरा चित्र रखते हैं वे समाज में अति सम्माननीय होते हैं। पिथोरा चित्रकार को लखाड़ा कहा जाता है तथा जो इन चित्रकलाओं का खाता रखते हैं उन्हें झोखरा कहा जाता है। सर्वोच्च पद पर आसीन जो पुजारी धार्मिक अनुष्ठान करवाता है उसे बडवा या अध्यक्ष पुजारी कहते हैं। सामान्यतः लखाड़ा किसान होते हैं। इस् चित्रकला का चित्रण केवल पुरुष ही कर सकते हैं। खातों की देखरेख के अतिरिक्त लखाड़ा सामान्य चित्रण जैसे रंग भरने का कार्य ही पिथोरा चित्रकारों में शामिल होकर कर सकते हैं। वरिष्ठ कलाकारों के मार्गदर्शन में लखाड़ा अच्छे चित्रकार बन जाते हैं। महिलाओं के लिए पिथोरा चित्रण निषेध है।

सामाजिक महत्व – पिथोरा भित्ती चित्रकार द्वारा बनाई गई चित्रकला

पिथोरा चित्रकला धार्मिक अनुष्ठानों से अधिक प्रभावित रहती है। इस जनजाति के धार्मिक अनुष्ठानों का आयोजन ईश्वर को धन्यवाद स्वरूप् या किसी की इच्छापूर्ति आदि प्रदान करने हेतु किए जाते हैं। इस प्रक्रिया में बडवा या शीर्ष पुजारी को ही बुलाया जाता है जो उनकी समस्याओं का निराकरण इन अनुष्ठानों द्वारा करवाते हैं। यह समस्याएं चाहे किसी पशु–गाय, घोड़ा, हिरण, बैल, हाथी आदि की अप्राकृतिक मृत्यु अथवा घर के बच्चों की बीमारी से सम्बन्धित हो सकती हैं जिसका समाधान बडवा द्वारा दे दिया जाता है व पूजा पाठ व पिथोरा चित्रकला बनाने का परामर्श स्वरूप उन्हें बडवा द्वारा दे दिया जाता है। पिथोरा बाबा की उपस्थिति को ही सबकी समस्याओं का एकमात्र समाधान माना जाता है। पिथोरा चित्रकला सदैव घर के प्रवेश या ओसरी जो कि प्रथम कक्ष के सामने की दीवार या उसकी भीतरी दीवार पर की जाती है। इन दीवारों को विभिन्न आकृतियों द्वारा पूरी तरह चित्रित कर दिया जाता ळें

पिथोरा चित्रकार

रंग बनाने के लिए रंगीन पाउडर को दूध व महुआ (एक प्रकार की शराब) का प्रयोग किया जाता है जो कि महुआ के दिव्य वृक्ष

से तैयार की जाती है तथा फूलों द्वारा किण्वित करके यह मदिरा बनाई जाती है व इसके बीजों द्वारा खा। तेल निकाला जाता है। किन्तु आजकल चूंकि कपड़ों के रंग (फब्रिक कलर) स्थानीय दुकानों में उपलब्ध हैं अतः इनका ही प्रयोग लोगों द्वारा किया जाता है। चित्रण हेतु मुख्यतः पीले, नारंगी, हरे, नीले, सिन्दूरी, लाल, आसमानी, काले व चांदनी रंगों का प्रयोग किया जाता है। ब्रूश बनाने के लिए बेंत या टहनी के किनारों को कूटा जाता है परंतु आज इनका स्थान बाजार में उपलब्ध ब्रूशों ने ले लिया है।

चित्रण हेतु सामने की दीवार बगल की दो दीवारों को तैयार किया जाता है तथा सामने की दीवार साथ वाली दीवारों से लगभग दुगनी होती है। इन दीवारों को पहले गाय के गोबार के घोल से दो बार लीपा जाता है व इसके ऊपर सफेद चॉक पाउडर से लीपकर चित्रण की सतह तैयार की जाती है। इस प्रक्रिया को लीपना कहा जाता है। मुख्य दीवार या बरामदे व रसोईघर का स्थान बहुत ही पवित्र माना जाता है। इस बरामदे की बगल की दो दीवारों का चित्रण भी सामान्य देवताओं, भूत–प्रेत व पूर्वजों की आकृतियां बनाकर किया जाता है।

लखाड़ा जब चित्रकारी करता है, बड़वा व उसके साथी पारम्परिक गीत गाते रहते हैं। पिथोरा चित्रकला में अधिकतर चित्रण इनके द्वारा किए जाने वाले धार्मिक अनुष्ठानों के समय का होता है। इसमें बीच में एक छोटा आयाताकार बनाया जाता है जिसमें नारंगी बिन्दु अंगुलियों से बनाए जाते हैं जिसे टीपना कहा जाता है तथा यह धार्मिक अनुष्ठान के अंत में चित्रकला के पूर्ण होने पर किया जाता है। टीपना के बगल में पिथोरा बाबा व पिथोरी (पिथोरा की पत्नी) का चित्र बनाया जाता है। सबसे ऊपर चंद्रमा, सूर्य, बंदरों आदि पशुओं के चित्र बनाए जाते हैं।

निजी जनजातीय समूहों का विकास

World Tribal Day : भारत में जनजातीय आबादी का 1951 में 5.6: से बढ़कर 2011 में 8.6 प्रतिशत है। केंद्रीय स्तर कई कल्याणकारी योजनाएं पहले से ही संचालित हैं। इन योजनाओं का मकसद आदिवासी हितों की रक्षा के साथ शिक्षा, आर्थिक कल्याण और सामुदायिक उत्थान को बढ़ावा देना ळें

World Tribal Day : आज विश्व आदिवासी दिवस है। इस अवसर पर देशभर में बड़े पैमाने पर आदिवासी कल्याण से संबंधित कार्यक्रम आयोजित किए जाएंगे। केंद्र सरकार भी विभिन्न योजनाओं के माध्यम से आजादी के बाद से ही आदिवासी उत्थान को लेकर प्रयासरत है। इन कल्याण योजनाओं में अनुसूचित जनजाति के छात्रों को सशक्त बनाने वाली योजनाओं से लेकर, दीर्घकालिक और आसान ऋण देकर परिवारों की सहायता करना शामिल भी हैं। रियायती ब्याज दर पर ऋण की सुविधा सहित पहले की तुलना में 2021–22 के बजट में 36.62 प्रतिशत की वृद्धि भी शामिल है।

आदिवासियों के अधिकारों का संरक्षण और प्रवर्तन के लिए विधिक सेवाऐं योजना

हालाँकि 2011 की जनगणना के अनुसार अनुसूचित जनजातियों की कुल जनसंख्या 10,42,81,034 है, जो कि देश की जनसंख्या की 8.6 प्रतिशत है, भारत में जनजातीय समुदाय अत्यंत विविध् एवं विजातीय है। बोली जाने वाली भाषाओं, जनसंख्या का आकार, रहन–सहन के ढंग को लेकर इनमें बहुत प्रकार की विविधताएँ हैं। भारत में वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार अनुसूचित जातियों के रूप में अधिसूचित विशिष्ट समूहों की संख्या 705 है। उत्तर–पूर्वी राज्य अपनी स्वयं की विविधताओं के कारण सजातीय खंड नहीं हैं। वहां लगभग 220 जातीय समूह है तथा उतनी ही संख्या में भाषा एवं बोलियाँ हैं। यह समूह मोटे तौर पर तिब्बती–बर्मन, माँन–खमेर तथा भारतीय–यूरोपी नामक तीन मुख्य समूहों में वर्गीकृत किये जा सकते है।

जनजातीय समूहों में कुछ जनजातियाँ अपनी अत्यधिक दुर्बलता के कारणवश विशेष रूप से अति संवेदनशील जनजातीय समूह पी. वी. टी. जीद्ध पहले प्राचीन जनजातीय समूह के रूप में जाने जाने वालीद्ध की श्रेणी में रखी गई हैं। वर्तमान में पी.वी.टी.जी. में 75 जनजातीय समूह शामिल हैं जिनकी पहचान इस रूप में निम्नलिखित मानदंडों के आधार पर की गयी है। 1)वन आश्रित

आजीविका, 2) कृषि पूर्व जीवन स्तर, 3) स्थिर एवं घटती जनसंख्या, 4)निम्न साक्षरता दर तथा 5) जीविका आधरित अर्थ व्यवस्था। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार इन 75 पी. वी. टी. जी. की कुल जनसंख्या का अधिकांश भाग छह राज्यों महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ, उड़ीसा, आन्ध्रप्रदेश एवं तमिलनाडू में रहता है। जनजातियों में पी.वी.टी.जीस. पर उनकी संवेदनशीलता के कारण मुख्य रूप से ध्यान देने की आवश्यकता है।

स्वतंत्रता तक जनजातीय जनसंख्या राष्ट्रीय परिदृश्य से अपेक्षाकृत एकांत में रही तथा सुदूर व विषम जंगली क्षेत्रों में प्रायः आत्मनिर्भर जीवन व्यतीत किया। भारत में उप निवेशक प्रशासनिक तंत्र का जनजातियों से संपर्क मुख्य रूप से अधिकार वादी व शोषक प्रकृति के रूप में हुआ। वे उनको पृथक छोड़ने में तथा राष्ट्रीय जीवन की मुख्य धारा से न जोड़ने में विशेष रूप से रुचि थे।

स्वतंत्रता के पश्चात, भारतीय संविधान ने जनजातीय लोगों को विशेष दर्जा देने के लिए बहुत से प्रावधान अपनाया तथा संसद में विभिन्न रक्षात्मक कानून बनाकर उनके हितों को सुरक्षित रखने हेतु सजग प्रयास किये। राष्ट्रीय योजना आयोग ने विकास हेतु कदम उठाते हुए जनजातीय उप योजना पद्धति को अपनाया तथा पंचायती राज संस्था के अंतर्गत पंचायत पंचायत के प्रावधान (अनुसूचित क्षेत्रों में विस्तार) अधिनियम, 1966 (पेसा) (पी.ई.एस ए.) कानून बनाया।

जनजातियों की सामाजिक आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए किये गए इन सभी प्रयासों के बावजूद भी यह एक सत्य है कि अनुसूचित जनजातियों का जीवन–स्तरों में केवल मामूली सुधार आया है। अनुसूचित जनजाति का मानव विकास सूचकांक (एच.

डी. आई.) बाकी जनसंख्या की तुलना में बहुत कम है। साक्षरता दर में अंतर अधिक है। गरीबी रेखा के नीचे अन्य समुदायों की अपेक्षा अनुसूचित जनजातीय परिवार अधिक हैं। आरक्षण के प्रावधान के बावजूद सरकारी नौकरियों में उनका प्रतिशत उनकी जनसंख्या के अनुपात में नहीं है । इस प्रकार उनकी दशा बाकी जनसंख्या की अपेक्षा बहुत खराब है तथा वे विकास के परिकल्पित स्तर पर पहुँचने में अक्षम हैं जहाँ से वे तेजी से बढती अर्थ व्यवस्था द्वारा उपलब्ध कराये जा रहे अवसरों का लाभ उठा सकें।

इसी पृष्ठभूमि में नालसा ने जनजातीय लोगों के लिए योजना बनाने की आवश्यकता महसूस की। इसे सरल बनाने हेतु, मामले का अध्ययन करने के लिए व सुझाव प्रस्तुत करने के लिए एक समिति गठित की गयी थी। समिति ने दिनांक 09.08.2015 को विश्व जनजातीय दिवस पर माननीय कार्यपालक अध्यक्ष, नालसा को एक विस्तृत रिपोर्ट सौंपी। यह योजना उसी रिपोर्ट पर आधरित है।

यह योजना नालसा (आदिवासियों के अधिकारों का संरक्षण और प्रवर्तन के लिए विधिक सेवाऐं) योजना, 2015 कहलाएगी।

योजना का उद्देश्य

योजना का लक्ष्य भारत में जनजातियों तक न्याय की पहुँच को सुनिश्चित करना है। न्याय तक पहुँच की अपने तमाम अर्थो में अर्थात अधिकारों तक पहुँच, लाभ, विधिक सहायता, अन्य विधिक सेवाएँ, इत्यादि को सुगम बनाता है ताकि संविधान के सामाजिक आर्थिक एवं राजनैतिक एवं न्याय को सुनिश्चित करने के वचन का देश में जनजातियों द्वारा भी अर्थ पूर्ण रूप से अनुभव कर सके ५ जनजातियों को कई विधिक अधिकार दिए गए है –

अनुसूचित जनजाति और अन्य परम्परागत वन निवासी (वन अधिकारों की मान्यता) अधिनियम, 2006

अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, अधिनियम,1989

निःशुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा (आरटीई) अधिनियम, 2009

भूमि अर्जन, पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन में उचित प्रतिकर और पारदर्शिता अधिकार अधिनियम, 2013

पंचायत के प्रावधान अनुसूची क्षेत्रों में विस्तारद्ध अधिनियम, 1996

भारतीय संविधान की पांचवी एवं छठी अनूसूची।

ये प्रावधान कठोरतापूर्वक लागू नहीं किये जाते, जिसके चलते उनके विधिक अधिकार का उल्लंघन होता है। ऐसे उल्लंघन जनजातियों के पिछड़ेपन का मुख्य कारण है। इस योजना का आशय यह है कि इन विधिक अधिकारों का उल्लंघन नही हो।

जनजातियों की समस्याओं का संक्षिप्त विवरण

समस्याएँ – जनजातियों में साक्षरता की कमी एक मुख्य समस्या है। परिणाम स्वरूप जनजातियाँ अपने मौलिक विधिक एवं संवैधानिक अधिकारों से अवगत नही रहतीं। वे अपने कल्याण हेतु सरकार द्वारा चलाये गए कल्याणकारी योजनाओं का ज्ञान भी नहीं रखते जिसके चलते वे उनमें शामिल भी नहीं होते।

समस्याओं के समाधन हेतु सरकार द्वारा लायी गयी योजनाओं का लागू नही किया जाना एक अन्य बड़ी चिंता का विषय है। तथापि

जनजातियों के कल्याण हेतु कार्यकलापों का लागू न किया जाना जनजातीय लोगों में हुनरमंद लोगो की कमी के कारण भी है।

कई सशस्त्र विवाद भी समकालीन भारत में केन्द्रीय क्षेत्र से लेकर उत्तर–पूर्व तक जनजाति क्षेत्रों के बड़े भागों को प्रभावित करते है जिसके चलते विधिक एवं लाभकारी योजनाओं को लागू करने में जटिल समस्याएँ उत्पन्न होतीं है।

तत्कालीन वर्षो में राज्य पुलिस एवं अर्ध्–सैनिक बल पर जनजातीय क्षेत्रों में कथित झूठे मुठभेड़ एवं बलात्कार को सम्मलित करते हुए गंभीर मानव अधिकारों के उल्लंघन का आरोप लगे हैं।

बहुत सारे जनजातीय लोग कथित रूप से नक्सली कहकर जेल के अंदर डाले गये हैं। कई मामले ऐसे हुए हैं जिनमें कई दिनों तक लोग जेलों में रहे हैं और चालान में उनका नाम भी नही रहा है। जमानत नही दी जाती क्योंकि मुकदमें गंभीर होते हैं जैसे भारत के विरुद्ध युद्ध छेड़ना, राजद्रोह और इसी प्रकार के ।

अपरिचित न्यायिक कार्यवाहियां जनजातियों को न्यायालय से भयभीत करती हैं यद्यपि वो स्वयं अराजकता से पीड़ित रहते हैं। वो महसूस करते हैं कि अनुसूचित जाति एवं जनजाति (अत्याचार निवारण अधिनियम), 1989 जैसा कानून जनजातियों की सुरक्षा हेतु नही होतीं।

प्रवासी जनजातियाँ सरकार द्वारा चलायी गयी कल्याणकारी योजनाओं तक पहुँचने में कठिनाइयाँ झेलती हैं। कुछ तो पूर्ण रूप से बिल्कुल पहुँच ही नहीं रखते।

ऐसे पी.वी.टी.जी की आदिमता एवं पिछड़ेपन के सन्दर्भ में ये पूर्व परिकल्पित भ्रम अथवा धरणाएँ होतीं हैं। सरकारी निकायों के लिए

यह आवश्यक है कि वह जनजातियों के पिछड़ेपन एवं बरबरियत तथा इन समुदायों की परम्पराओं और संस्कृति के अवमूल्यन की धरणाओं को दूर करें।

कई पी.वी.टी.जी एवं अनुसूचित जनजातियाँ वनवासी होतीं हैं और अपने जीवन हेतु भूमि एवं वन संसाधन पर अधिकांशतः निर्भर होतीं हैं। समय के साथ–साथ उनके निवास आरक्षित वन, सुरक्षित वन घोषित कर दिए गये हैं और उन्हें बिना मुआवजा वहां से हटा दिया जाता है और बेदखल कर दिया जाता है।

पी.वी.टी.जी. की सूची में समस्त जनजातियाँ अनुसूचित जनजातियों का दर्जा नही प्राप्त कर सकी हैं जिसके चलते इन जनजातियों की दुर्बलता बढ़ गई है और उन्हें पांचवी अनुसूची एवं पंचायत के प्रावधान (अनुसूची क्षेत्रों में विस्तार) अधिनियम, 1996 के प्रावधानों द्वारा दिए गये अधिकार एवं सुरक्षा नही मिलते।

पी.वी.टी.जी. हेतु एफ.आर.ए. बहुत कमजोर अंदाज में लागू किया गया है क्योंकि उनके पास अधिकार स्पष्ट रूप सेवन विभाग द्वारा परिभाषित नहीं हैं और समझे नही जाते। पी. वी.टी.जी. के अधिकार हेतु प्रावधानों को लागू करने और विशेष रूप से एफ. आर.ए. के अंतर्गत वास अधिकार पर कोई अलग–अलग सूचना एवं आंकड़े राष्ट्रीय स्तर पर उपलब्ध नहीं हैं।

उत्तरी–पूर्वी राज्य भूटान, चीन, बर्मा एवं बांग्लादेश जैसे पड़ोसी देशों के साथ अंतर्राष्ट्रीय सीमा के बड़े क्षेत्र रखते है जिसके चलते वहां सीमा पार आतंकवाद, ड्रग तस्करी, शस्त्रा–तस्करी, घुसपैठ, इत्यादि हेतु बहुत उचित बन जाता है।

अन्य समस्या जो गंभीर चिंता का विषय है वह मानव तस्करी है। मध्य भारत एवं असम की जनजातियाँ विशेष रूप से तस्करी से ग्रस्त प्रतीत होती हैं।

अन्य समस्या यह है कि अभी तक कार्य पालिका एवं न्याय पालिका का विभाजन नहीं हो सका है। छठी अनुसूची के अंतर्गत स्थापित संस्थाएं पारंपरिक विधियों को लागू करती है जिनकी अपनी समस्याएँ होती हैं क्योकि वो संहिताबद्ध नही हैं ।

उत्तर पूर्व में विद्रोह एवं कानून–व्यवस्था समस्याओं के चलते व्यवस्था पर से विश्वास उठ गया है। जनसमूह में विधि को अपने हाथों में लेने की रूचि पाई जाती है जिसके चलते भीड़–न्याय होती है जिसके कारणवश संदिग्ध् ६ आरोपी व्यक्तियों के घर नष्टध्बर्बाद कर दिए जाते हैं और उनके परिवार को समाज से अलग कर दिया जाता है जिससे गंभीर सामाजिक समस्याएँ पैदा होती है। रोगियों के इलाज में अपनी कथित लापरवाही के लिए चिकित्सक एवं अस्पताल को भी नही बक्शा जाता है।

दूर–दराज के क्षेत्रों में एवं गाँव में जनजातियों की बड़ी संख्या अभी तक डायन प्रथा में विश्वास रखती है।

जनजातियों के साथ सम्मानजनक व्यवहार नहीं किया जाता जिसके चलते वो स्वयं को मुख्य धारा से कटे हुए समझते है। उदाहरण स्वरुप अंडमान द्वीप में जरावा जनजातियों से पर्यटकों द्वारा जानवरों जैसा व्यवहार किया जाता है उन्हें ऐसे छेड़ा जाता है और कष्ट दिया जाता है मानो वो बन्दर या जानवर हों तथा उनकी क्रोधजनक प्रतिक्रिया से आनंद लिया जाता है। ऐसे ही अनुभव बस्तर में भी पूर्व में आम थे जहाँ पर सांस्कृतिक महत्व को कभी नही समझा गया।

भूमि संबंधी समस्याएँ – वन एवं पहाड़ियाँ जनजातीय पहचान के मुख्य स्रोत है। इसी संदर्भ में वन तक नहीं पहुँचने एवं उनकी अपनी भूमि से जबरदस्ती हटा दिए जाने के कारण जनजातियों के जीवन की क्षति समझी जानी चाहिए। जन जातीय समुदायों को उनकी भूमि, वास, जीविका,राजनैतिक व्यवस्था, सांस्कृतिक, मूल्यों एवं पहचान से वंचित करके प्रत्यक्ष रूप से भी बेदखली होती है एवं विकास के लाभों और उनके अधिकारों को न देने के रूप में अप्रत्यक्ष रूप से भी होती है।

पुनर्वास एवं पुनुरुद्धार (पी.आर.ए.आर) कार्यक्रम के अंतर्गत भूमि नहीं बदली जाती और पुनः जीविका न्यूनतम ही लगाई जाती है। लगभग समस्त आर एवं आर कालोनियां उचित स्वास्थ्य सुविधाओं, सुरक्षित पीने के पानी, बाजार, वि।ालय एवं यातायात के साधनों से वंचित होती हैं।

अदल–बदल की खेती बाड़ी, फल और फूल, छोटे शिकार, दवा हेतु कंद, चारा, खाना, घर बनाने के लिए सामग्री, पारंपरिक कला, हुनर के लिए खाम सामग्री, जलावन, पत्ता तश्तरी, फल इत्यादि की बिक्री से आय के रूप में वन निर्भरता महतवपूर्ण है। इस कमी कि क्षतिपूर्ति बेदखली के कारण नही हो पाती और ये खा। सुरक्षा को भी प्रभावित करती है।

भूमि का एक बड़ा भाग वन क्षेत्रों में आता है। दूर–दराज क्षेत्र की अधिकतर जनजातियाँ उन जमीनों में बिना किसी अधिकार, हक, एवं हित के वन भूमि पर रहती हैं और उन बेघर जनजातियों हेतु अनुसूचित जनजाति और अन्य परम्परागत वन निवासी (वन अधिकारों की मान्यता) अधिनियम, 2006 के अंतर्गत उनके अधिकारों की सुरक्षा एवं प्रवृति हेतु कोई विधिक प्रावधान नहीं है।

जनजातियों के साथ एक अन्य बड़ी समस्या विकास परियोजनों अर्थात बाँधें का बनाना, वन्य शरण स्थान, खान्य कार्यकलाप, इत्यादि का परिणाम है। यह विकास जन जातियों से भिन्न लोगों की इन क्षेत्रों में रोजगार हेतु आवागमन बढा देता है व परिणाम स्वरूप वो जनजातियों को वहां से निकल जाने पर मजबूर करते है। इस प्रकार जनजातियाँ विकास परियोजनाओं का लाभ नही उठा सकी हैं।

भूमि वियोजन एवं जनजातियों की बेदखली हेतु बड़े महत्वपूर्ण कारणों में से एक बढ़ती हुई ऋण ग्रस्तता है। जनजातियों की ऋणग्रस्तता (वो अधिकतर अत्यधिक ब्याज के साथ ऋण स्वीकार करने के लिए बहकाए जाते हैं) अधिकतर उन्हें बंधुआ मजदूरी की परिस्थितियों में धकेल देती है।

आगे, पी.ई.एस.ए. (पेसा) के उल्लंघन भी हुए हैं जो ग्राम सभा को अनुसूचित क्षेत्रों में भूमि वियोजन रोकने एवं अनुसूचित जनजातियों की अवैध वियोजित भूमि को लौटाने हेतु अर्थात कार्य करने की शक्ति से सशक्ति करती है। वन भूमि के अभिग्रहण के मामले में, प्रभावित क्षेत्र की ग्राम सभा से परामर्श करना एवं उनकी स्वतंत्र सहमति प्राप्त करना आवश्यक है। तथापि, अधिकतर ग्राम सभाओं को न तो परामर्श हेतु नोटिस भेजा जाता है व न ही उनकी सहमती हेतु हस्ताक्षर लिए जाते है।

भूमि अभिग्रहण, पुनरुद्वार एवं पुनर्वास में उचित मुआवजे एवं पारदर्शिता अधिकार अधिनियम, 2013 के अंतर्गत जनजातियों को दिया गया मुआवजा कम होता है एवं पुनर्वास पर प्रदान की गयी जीवन परिस्थितियां बहुत घटिया होती हैं।

जनजातियों के साथ एक अन्य समस्या यह है कि भूमि में एकल अधिकार की जगह वो समुदाय अधिकार में विश्वास रखते है

और इस प्रकार भूमि संबंधित मुकदमेबाजी के मामलो में उनके पास स्वामितव का लिखित प्रमाण उपलब्ध नही होता। इस सन्दर्भ में जनजातियों के दावे अधिकतर मौखिक साक्ष्य पर आधरित होते हैं परिणाम स्वरूप उनके वैयक्तिक अधिकार स्थापित करने में कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं।

विधिक समस्याएँ – जनजातियों द्वारा झेली गई विधिक समस्याएँ निम्न हैं –

संरक्षित क्षेत्रों से विस्थापन से पूर्व जनजातियों के अधिकारों की मान्यतापूर्ण नही होती। जनजातियाँ एफ.आर.ए. के अंतर्गत प्रमाणीकरण एवं दावे के निपटारे से पूर्व ही बेदखल कर दी जाती हैं। इसके चलते उनकी आर्थिक स्थिति और उनके पारंपरिक वन प्रथाओं में कमी आई है।

एफ.आर.ए. के सन्दर्भ में वन विभाग द्वारा असत्य धरणाएं उनको विधिक अधिकारों के उल्लंघन तक पहुंचाती हैं। उदाहरण स्वरुप, कुछ वन विभाग एफ.आर.ए. की धारा 4(2) के प्रावधानों के विरुद्ध ये विश्वास करते हैं कि संरक्षित क्षेत्रों (पी.ए.एस) में अधिकारों का दावा एफ.आर.ए. के अंतर्गत नहीं किया जा सकता और यह कि एफ.आर.ए. सिंह अभ्यारण्य में लागू नही होता।

वास अधिकारों का दावा करने में जनजातीय समुदायों के समक्ष जो समस्याएँ पैदा होती है उनमे से कुछ निम्न प्रकार हैं –

अंतनिर्हित वास अधिकार की परिभाषा एवं स्पष्टीकरण में स्पष्टता की कमी,

वास का अर्थ समझने में बहुल्यता, विशेष रूप से जब उसी विशेष क्षेत्र में शामिल अन्य पी.बी.टी.जी. समूह से अन्य लोगों के प्रयोग अधिकार उसमे शामिल हो,

यदि पी.बी.टी.जीस. की पारंपारिक वास सीमाएँ वन जीवन वास से मिलते जुलते हो, एवं

ऐसे समुदायों में जागरूकता की कमी कि किन शब्दों में ऐसे दावों को व्यक्त करें।

महिलाओं के अंदर दावा करने, प्रामाणिकता और उससे संबंधित एफ.आर.ए. के अंतर्गत दिए गये प्रावधान से संबंधित नियमों के विषय में जागरूकता लाने में स्पष्ट रूप से बहुत कम प्रयास किया गया है।

एफ.आर.ए. के अंतर्गत जनजातियों द्वारा दाखिल किये गए दावे बिना किसी कारण बताए रद्द कर दिए जाते हैं अथवा अन्य पारम्पारिक वनवासी (व्ज्थ्क्) की परिभाषा एवं निर्भरता खंड के गलत स्पष्टीकरण पर आधरित हैं, अथवा केवल साक्ष्य की कमी के कारणवश अथवा जी.पी.एस. सर्वेक्षण की अनुपस्थति के कारणवश (एक कमी जिससे केवल यह अपेक्षित होता है कि दावा निम्न स्तरीय निकाय को वापिस निर्देशित कर दिया जाये) अथवा इस कारण कि भूमि गलत ढंग से गैर वन्य भूमि समझी जाती है अथवा केवल इसलिए कि वन अपराध पावती ही केवल पर्याप्त साक्ष्य समझी जाती है।
दावेदारों को रद्द किये जाने की सूचना नहीं दी जाती और उनके अपील करने का अधिकार उन्हें नहीं समझाया जाता और न ही इसका प्रयोग किया जाता है। (जनजातियों के बीच जागरूकता की आवश्यकता है ताकि वे ऐसी कार्य प्रणालियों के विरुद्ध अपने विधिक अधिकारों को सुरक्षित कर सकें)।

विकास परियोजनाओं के चलते बिना किसी उचित मुआवजे के अवैध रूप से स्थानांतरित अथवा बेदखल किये गये लोगों के

अधिकार के सन्दर्भ में एफ.आर.ए. की धारा (31) (एम) बिल्कुल ही लागू नहीं की गयी है।

ग्राम सभाओं से प्रभावी परामर्श एवं खेती हर उपज में उनको मालिकाना अधिकार की मान्यता की कमी।

अन्य विधिक समस्याएँ – जनजातियों और कुछ स्थितियों में भूमि ग्रहण और इस प्रकार विकास–जनक परियोजनाओं की स्थापना के विरुद्ध विरोध करने वाले अन्य लोगों के विरुद्ध भी छल–कपट के साथ अपराधिक आरोप लगाये जाते हैं। यह पाया गया है कि 2005 व 2012 के बीच 95ः से अधिक मुकदमें बेबुनियाद थे और दोषमुक्ति में समाप्त हुए।

अभ्यासिक अपराधी अधिनियम, 2000 के कारणवश गैर–अधिसूचित जनजातियों से संबंध रखने वाले लोग निरंतर पक्षपात, हिंसा एवं पुलिस अत्याचार का अनुभव करते है।

अंडमान निकोबार में, जरावा जनजाति यौन–शौषण की घटनाएँ भी झेलती है। यहां तक कि जनजाति के लोगों से डी.एन.ए. टेस्टिंग के लिए ब्लड सैंपल बिना उनकी सूचित सहमति के देने के लिए कहा जा चुका है।

योजना आयोग के एक अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ है कि 43.6ः पुनरुद्धारित बंधुआ मजदूर अनुसूचित जनजाति वर्ग से हैं। ये इसका संकेत देता है कि कई जनजातीय परिवार बंधुआ मजदूरी में फंसाएं जाते है। बंधुआ मजदूरी का मुख्य कारण जो बताया गया है ऋण ग्रस्तता एवं आहार है।

शिक्षा से संबंधित समस्याएँ –भारत में जनजातियों से संबंधित शिक्षा की परिस्थिति भारत में सुधरी है परन्तु कुछ समस्याएँ अभी तक हैं। शिक्षा से संबंधित समस्याएँ निम्न प्रकार हैं :–

बड़ी संख्या में वि।ालय हैं जिनमे न्यूनतम सुविधा यें भी नहीं हैं।

जहाँ न्याय संगत आधार संरचना एवं वि।ार्थी पंजीकरण भी है वहां भी दूरी एवं निर्धनता के कारण जनजाति क्षेत्रों में वि।ालयों में निरंतर उपस्थिति की समस्या है।

शिक्षकों की अनुपस्थिति भी बहुत है।

वि।ार्थियों के सीखने का स्तर बहुत निम्न है एवं कक्षा 10 तक पहुँचते–पहुँचते छोड़ने की दर बहुत अधिक है। इसका एक संभव स्पष्टीकरण परिस्थितियों का सामना कर पाने मे जनजातीय वि।ार्थियों की विफलता भी है।

यहाँ पर उल्लेखनीय लैगिंक अंतर है। लड़कियों की शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए अधिक ध्यान केन्द्रित करने और सामाजिक एकजुटता की आवश्यकता है।

जब कभी जनजातीय छात्रा दाखिला लेने में सफल हो जाते हैं उन्हें वो भिन्न प्रकार से शर्मिंदा किये जाते हैं और उनका मनोबल तोड़ा जाता है। इसके कारणवश वि।ालय छोड़ने की दर बहुत बढ़ जाती है। उत्तर–पूर्व के जनजातीय छात्रों को अपमानजनक नाम दिया जाना सर्वविदित है।

जनजातीय बालिकाओं हेतु आवासीय वि।ालय हैं जो अपने भ्रष्टता, घटिया देखरेख सुविधाओं एवं आवास करने वाली बालिकाओं के यौन शौषण के कारण अधिकतर समाचार में रहते हैं।

अधिकतर जनजातियाँ खानाबदोश होती हैं, उनके बच्चे सरकार द्वारा उपलब्ध कराई जाने वाली शिक्षा से वंचित रह जाते हैं।

भारत में अधिकतर जनजातीय समुदायों अपनी मातृभाषा रखते है परन्तु अधिकतर राज्यों में सरकारीध्क्षेत्रीय भाषाएँ क्लास–रूम शिक्षा हेतु प्रयोग की जाती हैं जो जनजातीय बच्चों द्वारा विशेष रूप से शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर समझी नहीं जाती हैं।

उन शिक्षकों को जो जनजातीय बच्चों को शिक्षा प्रदान करते है उन्हें स्वयं जनजातीय संस्कृति एवं भाषा से अवगत कराये जाने की आवश्यकता है, ताकि शिक्षा प्राप्त करना सरल हो सके। उदाहरणस्वरुप अधिकतर जिला अधिकारी गण बाहर के होने के कारणवश लोगों की भाषाएँ नहीं समझते हैं जैसे गोंडी एवं हलबी। वि।ालयों के शिक्षकगण भी इन भाषाओं को नहीं समझते है।

जनजातीय बच्चे संरचनात्मक वि।ालय कक्षों में अपनी प्रकृति से नजदीकी के कारण सहजता का आभास नहीं करते और इसके कारणवश तत्काल उपलब्ध कराई जाने वाली औपचारिक शिक्षा में उनकी रुचि समाप्त हो जाती है।

जनजातीय लोगो में निरक्षरता का एक मुख्य कारण माता–पिता एवं समुदाय का जनजातीय बच्चों की शिक्षा में कम रुचि लेना एवं जनजातीय क्षेत्रों में घटिया स्तर के वि।ालयों का होना है। जनजातीय समुदाय अधिकतर शिक्षा के लाभों से अवगत नहीं होते।

स्वास्थ्य समस्याएँ

जनजातियों को न्याय दिलाने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है। राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण को (सै।) जनजातीय समुदायों एवं सरकार तथा न्याय पालिका के बीच के फासले को खत्म

करना है। राज्य विधिक प्राधिकरण को यह सुनिश्चित करना है कि विधि का शासन कायम हो।

राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण के ध्यान योग्य कदम

जनजातीय लोगों के मध्य विधि व्यवस्था में विश्वास की पुनः स्थापना एवं विधि के नियम की प्रभावकारिता मुख्य महत्वपूर्ण तत्त्व है। एस.एल..एस.ए. को इन क्षेत्रों में गतिविधियों की खोज अवश्य करनी चाहिए। एस.एल.एस.ए. निम्नांकित कदम अवश्य उठाये –

मुकदमेबाजी से संबंधित

उन्हें जनजातीय समुदायों से अधिवक्ताओं के एक अनन्य पैनल का गठन करना चाहिए जिनको अच्छी फीस का भुगतान किया जाना चाहिए।

जनजातीय लोगों को मुकदमेबाजी में योग्य विधिक सहायता दी जानी चाहिए एवं उपयुक्त मुकदमों में उनके पक्ष में वरिष्ठ अधिवक्ताओं को नियुक्त किया जाना चाहिए यहाँ तक कि विशेष फीस के भुगतान पर, ताकि जनजातीय लोगों के अधिकार एवं हित सुरक्षित किये जा सकें।

निर्धन जनजातीय लोगों को उनके समुदाय से बाहरी अधिवक्ताओं एवं न्यायाधीशों के भरोसे छोड़ कर न्याय पालिका हिंदी एवं अंग्रेजी में कार्य करती है। ये लोग वे हैं जिनकी न्याय तक पहुँच आवश्यक है एवं इसमे एस.एल.एस.ए. के द्वारा समर्थन दिया जाना चाहिए।

पैनल के अधिवक्तागण जनजातीय लोगों को प्रक्रिया एवं विधि को स्पष्ट करते हुए उनका न्यायालयों में ईमानदारी से प्रतिनिधित्व अवश्य करें। ताकि व्यवस्था का अविश्वास समाप्त

किया जा सके एवं न्यायालय की प्रक्रियाओं की बेहतर समझ पैदा हो।

पैनल के अधिवक्तागण जनजातीय लोगों को भ्रम के क्षेत्रों अथवा सामान्य न्यायालयों एवं ग्राम स्तर पर पारम्परिक ग्राम प्राधिकरण न्यायालयों के क्षेत्राधिकार की अति व्याप्तता को स्पष्ट करते हुए अवश्य सहायता करे एवं न्याय व्यवस्था की सरल कार्य प्रणाली में लोगों की सहायता करें।

पैनल अधिवक्तागण कारागारों में अवश्य जाएँ एवं बिना जमानत दीर्घ अवधि की कैद से निपटने के लिए कारागारों में विधिक सेवा क्लिनिक की स्थापना करें एवं उन मुकदमों पर नजर रखें जहाँ आरोप सि(न हो पाये होता कि कैद से जल्दी रिहाई हो सके।

पैनल अधिवक्तागण अर्ध् विधिक स्वयंसेवकों की सहायता से जनजातीय लोगों को उनकी अध्गिृहित जमीन का मुआवजा दिलाना आसान बनाएं एवं उनके पुनर्वास हेतु उनकी सहायता करें।

पी.एल.वी. की सहायता से जनजातीय क्षेत्रों में मुद्दों, आवश्यकताओं, विधिक जरूरत एवं शैक्षिक एवं स्वास्थ्य सुविधाओं की उपलब्ध्ता की अवश्य पहचान की जानी चाहिए एवं उपयुक्त मामलो में न्यायिक निवारण की कार्यवाही की जानी चाहिए। ताकि उनकी समस्याओं एवं आवश्यकताओं की पहचान की जा सके एवं उनको विश्वास दिलाने के लिए उनको उनके वास्तविक विधिक एवं अन्य आवश्कताओं एवं अधिकारों हेतु योग्य सहायता एवं सेवाए दी जा सके।

जहाँ कोई जनजातीय व्यक्ति किसी विधि के न्यायालय में अभियोजन का सामना कर रहा है वहां उसकी पहचान की जानी चाहिए एवं उसके विरुद्ध कार्रवाई के आरम्भ से विधिक सेवा प्राधिकरण के द्वारा समुचित विधिक सहायता दी जानी चाहिए अर्थात उसके विरुद्ध पूछताछ के समय से।

एस.एल.एस.ए. विधिक सेवा क्लिनिक अवश्य खोले जहां कि जनजातीय अधिवक्तागण का सुविधा पूर्वक जाना सुगम हो।

एस.एल.एस.ए.बहु उपयोगी वाहन का अवश्य प्रयोग करें ताकि कम आबादी वाले क्षेत्रों में पंहुचा जा सके अर्थात न केवल जानकारी फैलाने के लिए बल्कि जनजातीय लोगों को शीघ्र विधिक सहायता उपलब्ध करने के लिए जिनके अपराधिक , दीवानी, राजस्व अथवा वन अधिकारों के मुद्दे हो सकते हैं।

एस.एल.एस.ए. वन विभाग जैसे सरकारी विभागों से समन्वय स्थापित करे ताकि प्राकृतिक वास दावों एवं मुआवजा दावों का मोबाइल लोक अदालतों के द्वारा निपटारा किया जा सके।

दीवानी एवं फौजदारी मामलों में उच्च न्यायालय की उसकी रिट क्षेत्राधिकारके अंतर्गत उच्च न्यायालय जाने हेतु जनजातीय लोगों को शीघ्र विधिक सहायता दी जानी चाहिए। उच्च न्यायालय विधिक सेवा समितियां उन समर्पित अधिवक्तागणों को अवश्य पैनल पर रखे जो स्वयं जनजातीय हैं अथवा जिन्हें जनजातीय मुद्दों की अच्छी समझ हैं एवं जो जनजातीय लोगो से व्यक्तिगत रूप से बातचीत कर सकते हैं।

जब भी आवश्यकता हो माननीय कार्यकारी चेयरमैन एस.एल.एस. ए. के अनुमोदन से सामाजिक न्याय मुकदमे आरम्भ किये जाएँ।

अर्धविधिक स्वयंसेवक (पी.एल.वी.)

प्रत्येक जिला विधिक सेवा प्राधिकरण सांखयकीय एवं अन्य सरकारी विभागों की सहायता से जिलों के उन क्षेत्रों की पहचान करें जहाँ जनजातीय आबादी हैं एवं अर्धविधिक स्वयंसेवकों के द्वारा उन तक पहुंचें।

जनजातीय लोगों का विश्वास प्राप्त करने के लिए, प्रत्येक ऐसे समुदाय की समस्याएं जानने हेतु एवं जानकारी कार्यक्रमों के दौरान प्रभावकारी तरीके से उनसे सम्पर्क स्थापित करने के लिए यह आवश्यक हैं कि अर्धविधिक स्वयंसेवकों का ऐसे जनजातीय लोगों के मध्य से ही चयन किया जाए। एस.एल.एस.ए., डी.एल. एस.ए. के पूर्णकालिक सचिव के सीधे अनुभवी परामर्श एवं नियंत्रण के अंतर्गत ऐसे समुदायों से अर्धविधिक स्वयंसेवकों (पी. एल.वी.) के अनन्य पैनल अवश्य तैयार करे।

ऐसे पी.एल.वी. को उनकी भूमिका के लिए उचित विधि से प्रशिक्षण दिया जाए ताकि वे अग्र सक्रिय रूप से जनजातीय लोगों तक पहुँच सकें एवं वे उन जनजातीय समुदायों में हर समय एक हिताभिलाषी के रूप में पहचाना जाए जिनकी सेवा हेतु उनको कार्य सौंपा गया हैं।

एस.एल.एस.ए., पी.एल.वी.के द्वारा अनपढ जनजातीय लोगों को सरकार के द्वारा चलाई जा रही विभिन्न योजनाओं का लाभ प्राप्त करने हेतु पफार्म भरने एवं आवेदन प्रस्तुत करने के लिए विधिक सहायता सहित उनकी ऐसे लाभ प्राप्त करने में सहायता करें।

विधिक सेवा प्राधिकरण जनजातीय समुदायों के बीच अर्ध् विधिक स्वयंसेवकों की सहायता से स्वास्थ्य सहायता उपलब्ध कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।अर्धविधिक स्वयंसेवकों एवं स्थानीय विधिक सेवा प्राधिकरण की सहायता से जरूरतमंद व्यक्तियों की पहचान की जा सकती है। ऐसे जनजातीय लोगो को

उचित स्वास्थ्य योजनाओं के लाभों के साथ–साथ स्वास्थ्य सहायता एवं दवाएं उपलब्ध करने में आसानी लाई जाये।

जब भी वि।ालयों, अध्यापकों की अनुपस्थिति एवं जनजातीय बच्चों की प्रताड़ना जैसे मुद्दे हों, जैसाकि इस योजना के भाग–1 में सूचित है तो पी.एल.वी. सम्बन्धित प्राधिकरणों को सूचित करने में जनजातीय लोगों की आवाज बने।

पी.एल.वी., तस्करी के पीड़ितों की पहचान हेतु मानव तस्करी के मामलों में एवं पीड़ित मुआवजा प्राप्त करने हेतु उचित कार्रवाई करने में एवं विभिन्न पुनर्वास योजनाओं तक पहुँच बनाने में उपयोगी बन सकते हैं।

पी.एल.वी., तस्करी किये गये बच्चों की अवश्य सहायता करें जब उनको बचाया जाता है एवं शिशु कल्याण समितियों सी.डब्लू.सी.द्ध के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। वे पीड़ितों के परिवारों को खोजने में सी.डब्लू.सी. की अवश्य सहायता करे।

जब पीड़ितों की न्यायालय में गवाही हो तो पी.एल.वी.पीड़ितों का साथी के रूप में सहयोग करें।

पी.एल.वी. को जनजातीय लोगों एवं पैनल अधिवक्ताओं के मध्य एक मध्यस्थ का काम करना चाहिए एवं जनजातीय लोगों एवं अधिवक्ताओं दोनों की सहायता करनी चाहिये ताकि पीड़ितों का केस न्यायालय के द्वारा प्रभावकारी तरीके से समझा एवं सुना जा सके।

पी.एल.वी. सरकारी विभागों एवं जनजातीय लोगो से भी अवश्य जुडे रहें ताकि जनजातीय लोगों के लिए राशन एवं भोजन, उन तक पहुंचना सुनिश्चित हो सके यहाँ तक कि जब वे राज्यों में दूर–दराज एवं कम आबादी वाले क्षेत्रों में रहते हों।

जनजातीय लोगों के पास अधिकतर भूमि का दस्तावेजी सबूत उपलब्ध नहीं होता। ऐसे मामलो में जनजातीय लोगों को उचित मुआवजा एवं पुनर्वास प्राप्त करने के लिए विधिक सहायता की आवश्कता होती है। पी.एल.वी. समस्त दस्तावेजों एवं सबूतों को एकत्रा करने में जनजातीय लोगों की सहायता करे ताकि विस्थापित जनजातीय लोग उचित रूप से पुनर्वासित किये जा सके।

पी.एल.वी. कारागार जाएँ एवं बंदियों से उनके मुकदमों के बारे में बात करें एवं डी.एल. एस.ए. के पूर्णकालिक सचिव को उनके बारे में रिपोर्ट करें ताकि उनको जमानत पर छुडवाने अथवा उनके मुकदमों की जल्दी सुनवाई के लिए तुरंत कार्यवाही की जा सके।

जानकारी – जनजातीय क्षेत्रों में विधिक जानकारी साधरण तरीके की जानकारी कार्यक्रमों से भिन्न होनी चाहिए। इस संबंध में दृश्य–श्रव्य साध्न अधिक उपयोगी होंगे। नृत्य नाटक इत्यादि जैसे सांस्कृतिक कार्यक्रम के आयोजन के द्वारा जिसमें जनजातीय लोग भी शामिल हों जानकारी को दिया जाना सुनिश्चित किया जाना चाहिये। उनको प्रभावकारी तरीके से सन्देश देने के लिए ऐसे जनजातीय लोगों के लोक गीतों एवं नृत्यों का उपयोग किया जा सकता है। जनजातीय लोगों में जानकारी कार्यक्रम उन व्यक्तियों के द्वारा चलाये जाने चाहिए जिनको उनकी समस्याओं एवं समाधन के बारे में पूरी जानकारी हो।

जनजातीय समुदाय को सूचित किया जाना चाहिए कि उनके बच्चों की शिक्षा, उनका भविष्य सुरक्षित कर सकती है क्योंकि ऐसे बच्चे लोक अथवा प्राइवेट नौकरी पा सकते हैं जहाँ आरक्षण लागू है।

जनजातीय बच्चों तक पहुँचने हेतु जनजातीय वर्चस्व के क्षेत्रों में वि।लय विधिक साक्षरता क्लब आरम्भ किये जाने चाहिए ताकि उनका उत्साह बढाया जा सके कि वे वि।लय में रहे व दूसरी ओर और अन्य वि।र्थियों एवं अध्यापकों को जनजातीय बालकों की विशेष आवश्कता के बारे में संवेदनशील बनाया जा सके।

सरकारी एजेंसियों एवं एन.जी.ओ. की सहायता से एस.एल.एस.ए. दृश्य–श्रव्य विधि के द्वारा एवं उनको खेती के कार्य के लाभ हेतु आधुनिक तकनीक के व्यवहारिक प्रदर्शन दिखाकर भी प्रशिक्षण आयोजित करें।

जनजातीय क्षेत्रों में क्षेत्र में कार्यरत एनजीओ के साथ सुरक्षित पेयजल, पोषण एवं गर्भवती स्त्री की देखभाल के लाभों के बारे में बताने के लिए स्वास्थ्य जानकारी कार्यक्रम आयोजित किये जाने चाहिए।

एस.एल.एस.ए. को भाषायी भेद को कम करने के लिए ग्राम में एक सामुदायिक रेडियो की स्थापना जैसे अन्य कदम उठाने चाहिए।

आदिवासी क्षेत्र में प्रचलित खा। पदार्थो से निर्मित नवीन व्यंजन विधियां

तो, हम यहां झारखण्ड के इन्ही आदिवासियों के खान–पान में विशेष प्रकार के खा।नों का विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं–

1. **बेंग साग–** इसे कच्चा या सुखाकर दोनों रुप में खाने में प्रयोग किया जाता है। इनकी पत्तियों का जूस पीने से कई तरह के रोगों से छुटकारा मिल सकता है। खास तौर पर पीलिया रोग के लिए यह काफी फायदेमन्द है।

2. **फूटकल साग–** यह पेड़ से तोड़ा जाता है। यह पेट के लिए अच्छा होता है,जब पेट गरम हो।

3. **चाकोड़ साग–** चाकोड़, पौधे से फूल लगे पत्तियों को तोड़कर सुखाया जाता है। इसके सेवन से चर्म रोग होने से बचा जा सकता है।

4. **सनई साग–** यह एक प्रकार का फूल है, जिसे साग के रुप में प्रयोग किया जाता है। सनई पौधे के छालों से रस्सी भी बनाई जाती है।

5. **कटई साग–** यह साग जंगलों में कटीले पौधे में पाया जाता है। यह पेट के लिए काफी अच्छा है।

6. **सुनसुनियाँ साग–** यह गर्मी दिनों में नदी किनारे पाया जाता है। यह साग खाने से अनिंद्रा की शिकायत दूर होती है। क्योंकि इसके सेवन से नींद बहुत आती है।

7. **कोइनार साग–** यह गर्मी मौसम में कोइनार पेड़ों के कोमल पत्तियों को तोड़ा जाता है। इस साग के अधिक सेवन से पेट गरम भी हो सकता है, इसलिए बड़े–बूढ़े इसमें फूटकल साग मिला के पकाते हैं।

8. **टुम्पा साग–** यह कोइनार का फूल है। इसका स्वाद थोड़ा कसैला होता है, जो पेट के लिए काफी अच्छा है।

9. **जिरहूल फूल–** यह फूल ठण्डे दिनों में पेड़ पर खिलते हैं। जिसे तोड़कर सुखाया भी जाता है।

10. **अन्य साग–** झारखण्ड में सागों के रुप में आलू की पत्तियाँ, मटर की पत्तियाँ, चने की पत्तियों को भी सब्जी के रुप में प्रयोग होता है। बरसात शुरु होते ही खेतों में कई प्रकार के साग उग आते हैं जैसे– केना–मेना साग, सिलवरी साग, चिमटी साग। उसी प्रकार ठण्ड में आलू,मटर,गेहूँ लगे खेतों में कई साग निकल आते हैं। आदिवासी हर मौसम के सागों को सुखाकर अन्य दिनों के लिए रख लेता है। सागों की तरह ही आदिवासियों का पसंदीदा खा। पदार्थों में से–रुगड़ा (पुट्टू) और खुखड़ी (मशरुम) है। यह बरसात में खेतों और जंगलों में पाया जाता है।

रुगड़ा कई प्रकार का होता है– चंदना रुगड़ा, लेदरा रुगड़ा। उसी प्रकार खुखड़ी के भी कई प्रकार हैं– जामुन खुखड़ी, चिरको खुखड़ी, टेकनस खुखड़ी। ये सारे खा। पदार्थ, झारखण्ड के

आदिवासियों के संस्कृति के साथ–साथ जंगल के जमीनी जुड़ाव को दर्शाता है।

महुआ–मूंगफली व चने के पौष्टिक लड्डू

सामग्रीः– महुआ –200 ग्राम, मूंगफली– 200 ग्राम, चना (भुना हुआ) 100 ग्राम, गुड – 500 ग्राम ।

विधिः– महुआ व मूंगफली को अलग–अलग भून कर कूट लें । भूने चने के छिलके हटा कर उसे भी कूट लें । लड्डू बनाने वाला गुड़ भी कूटकर एकदम बारीक कर लें व इसमें महुआ, मूंगफली व चने का मिश्रण मिलाकर इस मिश्रण से लड्डू बांध लें । मिश्रण को हल्का सा गर्म कर लड्डू बांधा जा सकता है । एक किलोग्राम मिश्रण से करीब 30 लड्डू बनाये जा सकते हैं । चाहें तो इस मिश्रण से चिक्की भी बनाई जा सकती है ।

रागी का शिशु आहार

1 टेबल स्पून तेल लेकर 1 कप अनाज को इसमें भूनकर 2 कप उबला पानी डालें एवं 30 मिनिट तक धीमी आंच पर पकायें । इसमें स्वादानुसार दालचीनी, अदरक, वैनिला साथ ही साथ फल एवं सब्जियां डालकर बच्चों को दी जा सकती हैं।

तिल –मूंगफली व रागी के पौष्टिक लड्डू

सामग्रीः– तिल–200 ग्राम, मूंगफली– 200 ग्राम, रागी (भुना हुआ) 100 ग्राम, गुड – 500 ग्राम ।

विधिः– तिल व मूंगफली को अलग–अलग भून कर कूट लें । भूने रागी को भी कूट लें । लड्डू बनाने वाला गुड़ भी कूटकर एकदम बारीक कर लें व इसमें तिल, मूंगफली व बाजरे का मिश्रण मिलाकर इस मिश्रण से लड्डू बांध लें । मिश्रण को हल्का

सा गर्म कर लड्डू बांधा जा सकता है । एक किलोग्राम मिश्रण से करीब 30 लड्डू बनाये जा सकते हैं ।

पोषण मूल्य प्रति लड्डू – 30 ग्राम – प्रोटीन – 2.35 ग्राम, वसा– 5.17 ग्राम, कार्बोहाइड्रेट – 19.05 ग्राम, ऊर्जा 136 किलो कैलोरी एवं प्रचूर कैल्शियम मिलेगा।

चाहें तो इस मिश्रण से चिक्की भी बनाई जा सकती है । इसके लिए गुड़ को गर्म कर उसमें भूना तिल मूंगफली व रागी मिलाकर उसे चिक्की का रूप दिया जा सकता है ।

ज्वार का हलुआ

सामग्री –1 ग्लास आटा

1.5 ग्लास पानी

1 बडा चम्मच तेल

जीरा, हींग, राई, नमक, हरी धनिया, हरी मिर्च

नोट – जीरा एवं हरी मिर्च को दरदरा पीसना है।

विधि – तेल गर्म करके हींग 1/2 छोटा चम्मच हींग एवं राई का तड़का लगाना , फिर पानी डालकर उसमें जीरा एवं हरी मिर्च डालकर उबालना है नमक भी इसी पानी में डालना है बाद में आटा डालकर चम्मच से जल्दी–जल्दी चलाना है जिससे कि गुठले न पड़ें फिर 5–7 मिनिट तक ढक्कन ढ़ांक कर पकाना है, बाद में हरी धनिया डालें।

ज्वार का उपमा

सामग्री :–

1. ज्वार का खा — 45 ग्राम
2. सिकी मूंगफली — 15 ग्राम
3. तेल — 10 ग्राम
4. प्याज, हरी मिर्च, धनिया, — आवश्यकतानुसार
5. नमक — स्वादानुसार.

विधि :–

कढ़ाही में तेल गर्म करें, जीरा राई प्याज हरीमिर्च डालकर भूनें। ज्वार का खा डालकर भूस होने तक भूने। फिर पानी और सिकी मूंगफली मिलाकर उपमा बनने तक पकायें।

मिश्रित (ज्वार,कोदो) उपमा

सामग्री :–

1. ज्वार का रवा — 45 ग्राम
2. सिकी मूंगफली — 15 ग्राम
3. कोदो — 15 ग्राम
4. तेल — 10 ग्राम
5. प्यार हरी मिर्च, धनिया,
   नमक स्वादानुसार.

विधि :–

कढ़ाही में तेल गर्म करें, जीरा राई प्याज हरीमिर्च डालकर भूनें। ज्वार का रवा एवं कोदो डालकर भूरा होने तक भूने। फिर पानी और सिकी मूंगफली मिलाकर उपमा बनने तक पकायें।

बाजरे की खिचड़ी

सामग्री :–

1. बाजरा — 40 ग्राम
2. हरी दाल — 25 ग्राम
3. गाजर अन्य सब्जियां — 100 ग्राम
4. तेल — 10 ग्राम
5. मसाले — आवश्यकतानुसार

विधि :–

सर्वप्रथम तेल गर्म करें, आवश्यकतानुसार मसाले डालकर बधार लगायें। बाजरा, दाल और सब्जियों को घोकर डालें। आवश्यकतानुसार पानी डालकर खिचड़ी पकने तक उबालें।

बाजरे का हलुआ

सामग्री :–

1. बाजरे का सिका आटा – 30 ग्राम
2. मूंगफली का सिका पाउडर – 10 ग्राम
3. हरी दाल का सिका पाउडर – 15 ग्राम
4. पालक – 30 ग्राम
5. शक्कर – 30 ग्राम,
6. घी – 10 ग्राम

विधि :–

सर्वप्रथम बाजरा, मूंगफली और हरी दाल को सेंक लें। इसके पश्चात उन्हे दरदरा पीसकर पाउडर बना लें। पानी में पालक उबालकर छान लें। वर्तन में पानी गर्म करें इसमें शक्कर और पालक सूप मिलायें। उबाल आने पर पाउडर डालकर हलवा बनने तक पकायें।

बाजरे का सत्तू

सामग्री :–

1. बाजरा सिका हुआ – 45 ग्राम
2. चना दाल सिंकी हुयी – 20 ग्राम
3. शक्कर – 50 ग्राम

विधि :–

बाजरा और दाल को अलग–अलग भूनकर पीस कर रख लें। आवश्यकता पड़ने पर पानी में शक्कर घालकर, पिसा हुआ पाउडर मिलायें और सत्तू के रूप में उपयोग में लायें।

मक्के का उपमा

सामग्री –

1. मक्के का रवा – 45 ग्राम
2. सिकी मूंगफली – 10 ग्राम
3. तेल – 10 ग्राम
4. प्याज, हरीमिर्च, धनिया, नमक, स्वादानुसार.

विधि :–

कढ़ाही में तेल गर्म करें, जीरा राई, प्याज हरी मिर्च डालकर भूने। मक्के का रवा डालकर भूरा होने तक भूने। फिर पानी और सिकी मूंगफली मिलाकर उपमा बनने तक पकायें।

मक्के का सत्तू

सामग्री –

1. मक्का भुना हुआ – 35 ग्राम
2. चना – 25 ग्राम

3. शक्कर — 25 ग्राम

विधि :–

मक्के और चने को अच्छी तरह भूनकर पीसकर पावडर बना लें। पानी में शक्कर घोलकर मक्के और चने का पावडर मिलाकर सत्तू के रूप में प्रयुक्त करें।

गेहूं, रागी पौष्टिक हलवा

सामग्री :–

1. गेहूं का सिका हुआ आटा — 20 ग्राम
2. चने का सिका आटा — 10 ग्राम
3. मूंगफली का सिका हआ पाउडर — 10 ग्राम
4. रागी का आटा — 10 ग्राम
5. शक्कर — 30 ग्राम
6. पालक — 30 ग्राम या कोई पत्तेदार हरी सब्जी
7. घी — 10 ग्राम.

विधि :–

सर्वप्रथम गेहूं, चना, रागी और मूंगफली को सेंक लें। इसके पश्चात् उन्हे पीसकर पाउडर बनाकर रख लें। पानी में घुली हुई पालक डालकर नरम होने तक उबालें तथा उसे पतले कपड़े से छान लें। पानी में शक्कर डालकर गरम करें छने हुए पालक के सूप को उसमें मिलायें, उबाल आने पर गेहूं चना और मूंगफली का पाउडर और घी डालकर हलवा बनने तक पकायें।

इस पाउडर को ठंडे पानी और शक्कर के साथ घोलकर सत्तू के रूप में भी प्रयुक्त किया जा सकता है।

पौष्टिक मिश्रित आटा

पौष्टिक आटा बनाने की प्रविधि सरल है। इसके अंतर्गत आवश्यकत अनुपात में सारे आटे मिलाकर जैसे (गेंहूँ का आटा, ज्वार का आटा) बाजरा का आटा, सोयाबीन का आटा, मक्के का आटा, चने का आटा, चावल का आटा आदि को भूनकर मिक्सर या चक्की पर पिसा कर इसकी रोटियां बनाकर खायें । अत्यधिक पौष्टिक व स्वाद वाली लगेगी ।

मिश्रित अनाज दलिया (मल्टी पर्पज फूड)

यह एक संपूरक आहार है । यह प्रोटीन कैलोरी अर्धपोषण के शिकार वर्ग विशेष रूप से छोटे बच्चों के लिए लाभकारी है । गेंहूँ, बाजरा, रागी, चना, मूंगफली का आटा गुड़ जैसी स्थानीय सामग्रियों को विभिन्न अनुपात में मिलाकर बिटामिन और खनिज मिश्रण से संतुष्ट करके यह शक्तिदायी आधार बनाया जाता है । इसकी उत्पादन प्रक्रिया बहुत सरल है । कच्चा माल साफ करना उन्हें भूनकर अलग–अलग पीसना उपयुक्त । छलनियों से छानना इन पावडरों को निर्धारित अनुपात में मिलाना आदि काम शामिल है।

अंकुरित गेंहूँ की बर्फी

सामग्रीः– गेंहूँ– आधा किलों, घी– 50 ग्राम, शक्कर– 150 ग्राम, दूध – 01 कप ।

विधिः– गेहूँ को 36 घंटे तक भिगोकर रखें । 2–3 बार पानी बदल लें ताकि खराब गंध न आये । फिर छलनी में फैलाकर तीन दिन तक अंकुरित कर लें । अंकुरित गेहूँ को थोड़ा पानी डालकर बारीक पीस ले । इस पेस्ट को पतले कपड़े की थैली से छानकर दूधनुमा पदार्थ अलग करें ।

एक दो घंटे तक छने पदार्थ को रख छोड़ें । ऊपर पानी अलग से दिखने लगेगा । इसे चाहें तो अलग कर दें । गाढ़े बचे हुए पदार्थ में शक्कर दूध घी डालकर गाढ़ा होने तक लगातार पकायें व चलाते जायें । थाली में जमाकर ठंडा होने पर बर्फी की आकृति में काट लें।

सजहन के फूल की खिचड़ी

सामग्री :–

1. चावल — 50 ग्राम
2. मूंगदाल — 25 ग्राम
3. सहजन के फूल — 100 ग्राम
4. तेल — 10 ग्राम
5. मसाले — स्वादानुसार.

विधि :–

कढ़ाही में तेल गर्म करके आवश्यकतानुसार मसाले डालकर बघार लगायें। फिर चावल और मूंगदाल धोकर डालें। पानी डालकर नरम होने तक पकायें। हल्के से उबले हुए सहजन के फूल डालकर पकायें। हरा धनिया डालकर उतार लें।

सहजन की फली की कढ़ी

सामग्री :

1. बेसन — 100 ग्राम

2. दही/मठा — 1 लीटर
3. सहजन की फलियां — 100 ग्राम
4. तेल — 10 ग्राम
5. हींग, राई, जीरा, मिर्च पाउडर, हल्दी, नमक

विधि :–

छाछ में बेसन और नमक मिलाकर घोल बनायें। तेल गर्म करें इसमें हींग, राई, जीरे से बघार लगाकर मसाला मिलायें, मसाला सिंकने पर बेसन का घोल डालकर चलायें। सहजन की फलियों को छीलकर काट लें और उबलती हुयी कढ़ी में डालकर मकायें कढ़ी पकने पर धनिया डालकर उतार लें।

सहजन(मुनगा) फूल की सब्जी

सामग्री :–

1- सहजन के फूल — 100 ग्राम
2- तेल — 10 ग्राम
3- मसाले — आवश्यकतानुसार

विधि :–

सर्वप्रथम सहजन के फूलों को हल्का सा उबालकर दबाकर पानी निथार दें। कढ़ाई में तेल गर्म करें राई जीरे व प्याज से बघार लगाकर मसाले मिलायें मसाला सिकंने पर फूलों को डालकर नमक मिलायें कुछ देर पकायें। धनिया डालकर उतार लें।

अंकुरित मूंग पकौडे

सामग्री 1 कप अंकुरित मूंग, 1/2 कप सोयाबीन का आटा, 1/4 कप बेसन, 1 कप लंबा कटा प्याज, 1 प्याला पालक कटा, 1 आलू बारीक कटा, 2.3 हरीमिर्च बारीक कटी 1 शिमला मिर्च

बारीक कटी 1/2 चम्मच लालमिर्च पाउडर, तलने के लिए तेल, नमक स्वादानुसार

विधि :– मूंग को अंकुरित कर बारीक पीस ले बाकी सारी सामग्री इसमे अच्छी तरह सभी सामग्री मिला कर फेट ले गरम तेल में गोल–गोल पकौडे तले तथा चटनी के साथ परोसे, चाहे तो सब्जियों को अलग–अलग रखे आटा व बेसन घोल कर उस में सब्जियें को डुबो कर पकौडे तल ले।

अंकुरित सोयाबीन

सामग्री :– सोयाबीन, टमाटर, आलू, मिर्च हल्दी, प्याज, तेल, नमक, जीरा, कालीमिर्च पाउडर गरम मसाला।

विधि – सर्वप्रथम कढही में तेल गर्म किया जीरा व राई मिर्च डालकर थ्तल किया प्याज, आलू, टमाटर डालकर सुनहरा होने तक तला। सभी मसाले व सोयाबीन डालकर सर्व करें।

सोया, कुटकी पोषक लड्डू

सोयाबीन कुटकी

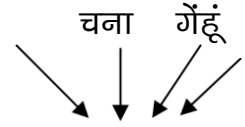

सामग्री

गेंहूँ – 1 किलो

चना – 400 ग्राम

सोयाबीन – 200 ग्राम

सफाई

↓

भिगोना (आधे घंटे)

↓

कुटकी – 100 ग्राम

शक्कर पिसी – 1.5 कि.ग्रा.

घी – 500 ग्राम

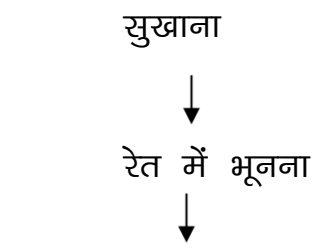

विधिः

- गेंहूँ, चना और सोयाबीन को आधा घंटा भिगों दिया फिर सूखा लिजिए।
- हल्की नमी रहने पर उन्हें अलग अलग रेत में भून लें और रगड़ कर छिलका निकाल लें।
- गेंहूँ, चना और सोयाबीन को पीस पीस लें और मिला लें।

उपयोग

- इसे स्वादानुसार शक्कर मिलाकर प्रयोग में ला सकतें है या फिर इसकी रोटी बनाकर बच्चों को दे सकते है।
- पहले बताई हुई विधि से पाषक बना लें। गैस पर कढ़ाही रखकर उसमें घी गर्म करें और पाषक को हल्का गुलाबी होने तक भूनें।

- अब इसमें पिसी शक्कर मिलाये और गर्म गर्म के लड्डू बांध लें।
- पौष्टिक पोषक लड्डू तैयार हैं।

बेर के शरबत

पके बेर	–	1 किलोग्राम
शक्कर	–	1 किलोग्राम
रंग	–	5 मिली (2 प्रतिशत घोल)
साइट्रिक एसिड	–	10 ग्राम
बोतल / पाउच	–	4 संख्या
कुल उत्पादन	–	4 लीटर

बनाने की विधि

बेर का शरबत बनाने के लिए सर्वप्रथम बेरों का चयन कर लेते हैं। तत्पश्चात् उनको घोलकर डंठल अलग कर लिया जाता है। उसके उपरांत बेरों को पानी के साथ पकाया जाता है, ठंडा होने पर मसल लिया जाता है, उसके बाद पानी मिलाकर पतले कपड़े से छान लिया जाता है, तत्पश्चात् इसमें शक्कर तथा साइट्रिक एसिड और आवश्यकतानुसार पानी मिलाकार डिग्री ब्रिक्स तथा एसिडिटी का परिक्षण कर लिया जाता है जो कि 20 डिग्री ब्रिक्स तथा 0.3 प्रतिशत एसिडिटी होना चाहिए। उसके बाद उसे बोतल या पाउच में भर लिया जाता है। बाजार में विपणन के लिए उपलब्ध कराते हैं।

बेर का शरबत बनाने की विधि

पके विकसित बेरों का चयन करना

पानी में धोना

↓

बेरों के डंठल अलग करना

↓

प्रेशर कुकर में एक अनुपात एक (1:1) में बेर तथा पानी को लेना

↓

बेरों को पकाना (2 सीटी आने तक)

↓

ठंडा होने पर बेरों को पानी में मसलना

↓

पनी डालकर छानना

↓

छने हुये भाग को शक्कर के साथ मिलाना

(1 लीटर में 250 ग्राम शक्कर)

↓

साइट्रिक एसिड तथा सोडियम बेन्जॉइट मिलाना

↓

पतले कपड़े से छानना

↓

परीक्षण (एसिडिटी तथा डिग्री ब्रिक्स)

↓

पाउच/बोतलों में भरना

↓

भण्डारण एवं विपणन

सूखा बेर

बेर– उमरान, बागवान, काठा और छुहारा आदि किस्में सुखाने के लिए उत्तम होती है। फलों का रंग सुनहरा–पीला से लालिमा लिए हुए भूरा हो जाए तब उपयोग मे लाना चाहिए। बेर में ब्लांचिंग करना आवश्यक है, जबकि सामान्य फलों में ऐसा नहीं किया जाता है। किस्मों के अनुसार इलायची 2 मिनट, बागवान और छुहारा 4 मिनट, काठा और उमरान 6 मिनट ब्लांचिंग करना आवश्यक है। गंधक का धुऑ देने के लिए 150 ग्राम गंधक प्रति 8 किलो फल का उपयोग 3 घंटा पर्याप्त है। धूप में या शोषक में सुखा सकते हैं।

कैथा की चटनी

आवश्यक सामग्री

कैथे का गूदा	1 किलो	शक्कर	1.25 किलो
नमक	75 ग्रा.	बड़ी इलायची	10 ग्रा
दालचीनी	10 ग्रा.	जीरा	10 ग्रा
धनिया	20 ग्रा.	लाल मिर्च	15 ग्रा
लहसुन	25 ग्रा.	प्याज	50 ग्रा
अदरक	100 ग्रा.	सिरका	100 मिली

पूर्णतया पके हुए कैथे लीजिए। कैथे को फोड़कर गूदा अलग कर दीजिए। गूदे में शक्कर मिलाकर एक घंटे के लिए रख दीजिये। इसके पश्चात् उसमें मसालों की पोटली डालकर मंद आंच में पका लीजिए। सिरका भी मिला दीजिये।

केरी की लौंजी

सामग्री :–

कच्ची केरी – 250 ग्राम

गुड़/या शक्कर – 100 ग्राम

जीरा, नमक, – स्वादानुसार

तेल – 10 ग्राम

विधि :–

सर्वप्रथम केरी को छीलकर टुकड़ों में काट लें कढ़ाही में तेल गर्म करें, जीरा और राई का बघार लगाकर केरी डालें, नमक, मिर्च और चीनी डालकर पानी डालें। केरी पकने तक उबालें।

अमरूद की सब्जी

अमरूद होशंगाबाद जिले के बाबई क्षेत्र में सर्वाधिक मात्रा में उपलब्ध हैं। अमरूद विटा. 6 की प्राप्ति का अच्छा स्त्रोत है। अमरूद आसानी से उपलब्ध होने वाला सस्ता फल है। इसे कच्चा खाने के अलावा विभिन्न रूपों में प्रयुक्त किया जा सकता है।

सामग्री अमरूद 1/2 किलो (कच्चा)
प्याज, लहसुन, लाल मिर्च, धनिया, हल्दी नमक, जीरा।

विधि :–

अमरूद को साफ धोकर छोटे–छोटे टुकड़ों में काट लें। जीरा प्याज और लहसुन का बघार लगाकर अन्य मसाले डालकर भूने। अमरूद के कटे हुए टुकड़े डालकर धीमी आंच पर पकायें।

इसके अलावा अमरूद की चटनी के रूप में भी प्रयुक्त किया जा सकता है।

इमली की चटनी

सामग्री –

बीज रहित इमली – 1 पाव
गुड – 75 ग्राम

लाल मिर्च, हरी मिर्च, हरी धनिया, जीरा, काला नमक, सफेद नमक, सौंफ स्वादानुसार, 1–2 कली लहसुन, 15 ग्राम अदरक

विधि – इमली को कुछ घंटे पानी में भिगोकर रखें, फिर इसे मसलकर गूदा अलग कर छान लें। शेष सामग्री को पीसकर इमली के गूदे में मिला दें।

भील शब्दावली

तकनीकि शब्दावली

भील जनजाति की अपने खुद की भाषा है

भोपा – झाड़ – फूंक करने वाला

गमेती – गांव का मुखिया

अटक – भीलों का गोत्र है ।

टापरा –भीलों के एक घर को टापरा कहते हैं।

ढालिया – घर के बरामदे को ढालिया कहते हैं।

कू – घरों कू कहते हैं।

फल्ला – बहुत सारे झोपड़े से बने छोटे गांव या मोहल्ले को फल्ला या खेड़ा कहते हैं।

पाल – फला खेड़ा से बड़े गांव को पाल कहते है।

पालवी – पाल का मुख्य पालवी होता है ,गांव का मुख्य गमेती कहलाता है ,तो एक ही वंशज के भील गांव का मुखिया तदवी वसाओ कहलाता है।

रावत – बांसवाड़ा जिले में भील जनजाति के गांव का मुखिया रावत कहलाता है ,

डाहल – भीलो के गांव का सबसे बुजुर्ग व्यक्ति कहलाता है ।

' वसावा–भील'

पोयरो–पोयरी – लडका–लडकी

बाहको – पिताजी

याहकी – माता

काकोह–काकीही – चाचा–चाची

पावुह–बोअही – भाई–बहन

आजलोह–आजलीह – दादा–दादी

कोअवालो–कोअवाली – घरवाला–घरवाली

मामोह–फुयेह – मामा–बुआ

हालोह–हालीह – साला–साली

जोवाह–वोवळीह – दामाद–बहू